



Saurashtra University

Re – Accredited Grade 'B' by NAAC
(CGPA 2.93)

Rathod, Dayabhai M., 2011, *श्रीलाल शुक्ल की औपन्यासिक सृष्टि: एक समीक्षात्मक अध्ययन*, thesis PhD, Saurashtra University

<http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/eprint/177>

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study, without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title, awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service
<http://etheses.saurashtrauniversity.edu>
repository@sauuni.ernet.in

**“श्रीलाल शुक्ल की औपन्यासिक सृष्टि :
एक समीक्षात्मक अध्ययन”**

**(THE NOVELIC WORLD OF SHRILAL
SHUKLA : A CRITICAL STUDY)**

**(सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिन्दी)
की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया जानेवाला
शोध-प्रबंध)**

:: प्रस्तुतकर्ता ::

प्रा.डी.एम.राठोड
व्याख्याता : हिन्दी विभाग,
श्रीमती जे.सी.धाणक
विनयन एवं वाणिज्य महाविद्यालय
बगसरा - ३६५४४०

:: मार्गदर्शक ::

डॉ. कपिलभाई एम. त्रिवेदी
(हिन्दी विभागाध्यक्ष)
श्रीमती जे.सी. धाणक
विनयन एवं वाणिज्य महाविद्यालय
बगसरा - जि.अमरेली
वर्ष - २०११

प्रमाणपत्र

प्रमाणित किया जाता है कि प्रो.डी.एम.राठोड ने सौराष्ट्र विश्व विद्यालय की पीएच.डी. उपाधि हेतु “श्रीलाल शुक्ल की औपन्यासिक सृष्टि : एक समीक्षात्मक अध्ययन” शीर्षक के अंतर्गत शोध-प्रबंध मेरे निर्देशन में तैयार किया है। प्रो.डी.एम.राठोड ने मौलिक ढंग से विषय का सांगोपांग विवेचन प्रतिपादित किया है।

साथ ही यह शोध-प्रबंध या इसका कोई अंश अब-तक न तो प्रकाशित हुआ है और न ही इसका कहीं कोई उपयोग हुआ है।

निर्देशक

दिनांक :

स्थान : बगसरा

डॉ. कपिलभाई एम. त्रिवेदी

हिन्दी विभागाध्यक्ष

श्रीमती जे.सी.धाणक महा विद्यालय

बगसरा

:: अनुक्रमणिका ::

❖ प्रस्तावना	पृष्ठ क्रमांक I - VIII
❖ प्रथम अध्याय : हिन्दी गद्य के समीक्षात्मक आधार एवं उपन्यास	१ - ४८
❖ द्वितीय अध्याय : हिन्दी की औपन्यासिक परम्परा एवं श्रीलाल शुक्ल	४९ - १०४
❖ तृतीय अध्याय : श्रीलाल शुक्ल का जीवन विकास : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	१०५ - १५३
❖ चतुर्थ अध्याय : श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों की कथ्यगत समीक्षा एवं विशेषताएँ	१५४ - २०६
❖ पंचम् अध्याय : श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में चरित्र-योजना	२०७ - २५८
❖ षष्ठ अध्याय : श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों का शिल्पगत वैशिष्ट्य	२५९ - ३०१
❖ सप्तम् अध्याय : श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में देशकाल एवं परिवेश	३०२ - ३४५
❖ उपसंहार :	३४६ - ३५३
❖ वर्णानुक्रमिक संदर्भग्रंथ सूची :	३५४ - ३६३

:: प्राक्कथन ::

प्रस्तावना :

‘साहित्य’ समाज की चेतना में साँस लेता है। यह समाज का वह परिधान है जो जनता के अस्तित्व के सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, आकर्षण-विकर्षण के ताने-बाने से बुना जाता है। उसमें विशाल मानव-जाति की आत्मा का स्पन्दन ध्वनित होता है। वह अस्तित्व की परिभाषा करता है, इसी से उसमें अस्तित्व देन का सामर्थ्य आता है। वह मनुष्य को, उसके अस्तित्व को लेकर ही जीवित है, इसलिए वह पूर्णतः मानव आधारित है। साहित्य उसी मानव की अनुभूतियों, भावनाओं और कलाओं का साक्षात् रूप है और मानव सामाजिक प्राणी है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। साहित्यकार समाज एवं समाज में घटित घटनाओं से प्रभावित होकर उसका चित्रण साहित्य में करता है। एक प्रकार से देखा जाय तो सभी विधाएँ समाज से प्रभावित होती हैं, लेकिन उनमें से एक विधा समाज से अधिक अपनापन रखती है और वह है उपन्यास ! इसमें समाज एवं व्यक्ति की परछाई चमकती है। हिन्दी उपन्यास साहित्य की बात करें तो वह आधुनिक युग की देन है, उनका विकास नये युग में हुआ, लेकिन सात्विक साहित्य होने के नाते आज वह सबसे आगे है। आज वह व्यक्ति के रहस्यों को लोगों के सामने रखकर रफतार से विकसित हो रही है। व्यक्ति में संवेदना का अभाव है, उपन्यास साहित्य ने उसमें संवेदना भर दी है। तभी प्रेमचन्द के शब्दों में “उपन्यास- ‘मानव-चरित्र का चित्र’ मात्र है और मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।” उपन्यास एक ऐसी विधा है जो समूचे जीवित मनुष्य को भावविभोर कर सकती है। उपन्यास में मनुष्य के अस्तित्व की कहानी समग्रता से चित्रित की जा सकती है। मानव अस्तित्व और समाज का चित्रण और उनकी समीक्षा उपन्यास से ही प्रकट होती है। हिन्दी उपन्यास-साहित्य विकास के सोपानों को पार करता हुआ वर्तमान समय में महत्वपूर्ण पृष्ठभूमि पर पहुँच गया है। उपन्यास का आयाम विस्तृत होने के कारण उसमें साहित्यकार को पूर्ण स्वतंत्रता मिलती है। इस बात को लेकर इसमें अस्तित्व के तमाम हिस्सों का बखूबी चित्र देखने को

मिलता है। इसमें जीवनदर्शन को भी अधिक मात्रा में आलेखित किया जा सकता है। उपन्यास जीवन की समीक्षा है। मानव के बहुआयामी अस्तित्व का कलात्मक चित्रण उपन्यास का प्रधान आशय है। इस आशय की प्राप्ति के लिए उपन्यासकार को वस्तु और कला का सुन्दर संयोजन करना पड़ता है। हिन्दी उपन्यास ने मानवीय रिश्तों एवं सामाजिक सम्बन्धों का सत्यता से परीक्षण किया है। अंत में कहा जाय तो उपन्यास साहित्य ने मानव में मानवता और नीतिमता की स्थापना की है। आज उपन्यास विधा ने अपना स्थान प्राप्त कर लिया है।

हिन्दी उपन्यास परम्परा लाला श्रीनिवासदास से प्रारंभ हुई तथा मुंशी प्रेमचन्द इसमें सबसे आगे रहें। इनके बाद भी यह परम्परा रुकी नहीं है। अनवरत रूप में आगे बढ़ रही इस विधा को कई उपन्यासकारों ने अपनी कलम से बढ़ावा दिया है। उपन्यास की इस परम्परा में हमें एक रचनाकार को अवश्य याद करना पड़ता है और वे हैं, श्रीलाल शुक्ल ! आपने न केवल उपन्यास लिखें, परन्तु उनके साथ ही हास्य-व्यंग्य संग्रह, कहानियाँ, निबंध, स्तम्भ लेखन, जीवनी लेखन, बाल साहित्य, आलोचना, संस्मरण, अनुवाद, आत्मकथा, स्तंभ और रेडियो वार्ता लेखन, संपादित साहित्य आदि विधाओं पर कलम चलायी है। आपका उपन्यासकार का व्यक्ति मुझे अत्यधिक आकृष्ट करता रहा। यही कारण है कि मैं पहले से आपके उपन्यासों को मानने वाला रहा हूँ! हिन्दी उपन्यास साहित्य अधिक समृद्ध है। उपन्यास के प्रति लोगों का अधिक अपनापना रहा है, इसलिए उपन्यास रूपी साहित्य की धारा अविरत बहती ही रहेगी। साहित्यकार श्रीलाल शुक्ल एक संवेदनशील व्यक्ति हैं। उनके उपन्यास साहित्य में सामान्य आदमी की त्रासदी, असहायता, विषमता गरीबी, अभाव ग्रस्तता का करुण पक्ष सफल रूप से उद्घाटित हुआ है। उपन्यास साहित्य एक सफल और प्रभावी विधा मानी जाती है। इस विधा पर कुछ लिखना या कार्य करना गर्व की बात है।

शोध-विषय की प्रेरक भावभूमि एवं विषयचयन :

संशोधन कार्य को लेकर काफी समय से विचार कर रहा था, कि उचित विषय को लेकर शोधकार्य किया जाय। परन्तु मन में एक सोच चल रही थी कि किस प्रकार ये कार्य होगा। लेकिन हमारी कालेज के प्राचार्य डॉ. एस.डी. मोरी साहेब ने शोधकार्य को लेकर काफी सुझाव दिये। बार-बार उन्होंने मुझे प्रेरित किया। मेरे विभागाध्यक्ष डॉ. के.एम. त्रिवेदी साहेब ने भी शोध-कार्य को लेकर

मेरा होसला बढ़ाया और इस कार्य के लिए मार्गदर्शन दिया। प्रा. बी.जे.पटेल साहब ने भी विषयचयन को लेकर मेरी काफी सहायता की।

उपन्यास के प्रति मेरा अधिक अपनापन देखकर इन विद्वतजनों ने उपन्यास विधा को लेकर शोध-कार्य करने का सुझाव दिया। वैसे तो उपन्यास साहित्य के साथ कई उपन्यासकार बंधे हुए हैं। उन्होंने अपनी-अपनी महान रचना भी हिन्दी साहित्य को अर्पण की है। इस उपन्यासकारों में एक अलग ही पहचान बनाने वाले संवेदनशील व्यक्तित्व के प्रति मेरा विशेष अपनापन रहा है, वह नाम हैं श्रीलाल शुक्ल ! मैंने यह बात इन गुरुजनों के सामने रखी। विषय के चुनाव सम्बन्धी आप विद्वानों ने जिन बातों का जिक्र किया, उन पर गहरी सोच प्रक्रिया के बाद शोध-कार्य का नामकरण तय हुआ - “श्रीलाल शुक्ल की औपन्यासिक सृष्टि: एक समीक्षात्मक अध्ययन।” डॉ. के.एम. त्रिवेदी ने मुझे शोध-छात्र के रूप में स्वीकार कर बड़ा उपकृत किया। ऐसे मार्गदर्शक की छात्रछाया में इस शोध-प्रक्रिया से गुजरते हुए शोधार्थी ने जो अनुभव प्राप्त किया है, वह अस्तित्व का अनमोल खजाना है।

शोध-कार्य की उपादेयता एवं प्रासंगिकता :

श्रीलाल शुक्ल ने स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास-साहित्य में नवीनता स्थापित करके पाठकों की औपन्यासिक अभिरुचि को भी नयी राह दी है। आपने उपन्यास साहित्य और व्यंग साहित्य को अधिक विकसित किया है। आपने ‘सूनी घाटी का सूरज’ (सन् १९५७ ई), ‘अज्ञातवास’ (सन् १९६२), ‘रागदरबारी’ (सन् १९६८), ‘आदमी का ज़हर’ (सन् १९७२), ‘सीमाएँ टूटती हैं’ (सन् १९७३), ‘मकान’ (सन् १९७६), ‘पहला पड़ाव’ (सन् १९८७), ‘संजय और विजय’ (सन् १९९४), ‘बिस्त्रामपुर का संत’ (सन् १९८७), ‘राग-विराग’ बब्बरसिंह और उसके साथी- (बाल उपन्यास) जैसे उपन्यासों के माध्यम से हिन्दी साहित्य को आगे बढ़ाया है। शुक्लजी ऐसे व्यंगकार हैं, जिनको जितनी बार पढ़ा जाय एक अलग ही नयी बातों का अहसास होता है।

श्रीलाल शुक्ल प्रगतिशील चेतना के उपन्यासकार हैं। इस शोध-प्रबंध में मैंने शुक्लजी के आधारग्रंथों के अतिरिक्त अन्य विद्वानों के संदर्भ ग्रंथों का भी उचित उपयोग कर शोधपरक तथ्य प्रकट करने का नम्र प्रयत्न किया है। साथ-साथ यथासम्भव मौलिकता का आग्रह रखा है। एक जिज्ञासु शोधार्थी अपने प्रिय

रचनाकार की रचनाओं में हर प्रकार की उपादेयता एवं प्रासंगिकता को देखकर ही उसे चयनित करता है। शुक्ल जी एक ऐसे व्यंगकार हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं में गलत लोग को ताना दिया है। इस शोध-प्रबंध में मैंने शुक्लजी के बहाने ऐसे कई सत्य उद्घाटित किए हैं, जिनकी आज के समय में अधिक आवश्यकता है। श्रीलाल शुक्ल पर अब तक कितना ही शोध-कार्य हो चुका है, वर्तमान में हो रहा है और भविष्य में भी नये-नये दृष्टिकोणों से यह प्रक्रिया चलती रहेगी ! यहाँ मैं एक बात अवश्य करना चाहता हूँ कि अब तक श्रीलाल शुक्लजी पर जितने भी शोध-कार्य हुए हैं, उनमें उनके सभी उपन्यासों को समीक्षात्मक रूप में प्रकट करने का प्रयास नहीं हुआ है, इसलिए मेरा यह शोध-कार्य मेरे सहयोगियों एवं भविष्य के अन्य शोधकर्ताओं के लिए दिशाप्रदान करेगा। एक बात अवश्य है, कुछ साहित्यकारों ने उनके कुछ उपन्यासों पर तात्त्विक निगाहें रखी हैं, लेकिन संपूर्ण औपन्यासिक रचना पर शायद यह मेरा मूलगत प्रयत्न है। लेखक अपने मूलगत उपहार के कारण कभी पुराना नहीं होता। इस आधार पर ही इस शोध-कार्य की उपादेयता और प्रासंगिकता सफल होती है।

सामग्री-संकलन के सूत्र :

यथार्थ सामग्री ही शोध की दिशा है। प्राप्त उपकरण जितना सही, प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक हो, शोध-कार्य उतना ही सात्विक एवं सफल बनता है। शोध-कार्य शुरू करते समय मन में एक अज्ञात डर था कि आधारग्रंथ और संदर्भ ग्रंथ किस तरह से प्राप्त होंगे ? लेकिन प्रसन्नता इस बात की है कि मैंने जहाँ कहीं भी बात की वहाँ से मुझे उपकरण प्राप्त हुआ है। यहाँ उन सबको याद करना मेरा परम कर्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने मेरे इस कार्य में उचित सहायता प्रदान की है। मेरे निर्देशक डॉ.के.एम. त्रिवेदी ने अपने पास प्राप्त ग्रंथों का उपयोग करने की अनुमति अर्पण कर मुझे पूरा सहयोग दिया है। मेरी इच्छा थी कि श्रीलाल शुक्लजी का पूरा साहित्य सही मैं बसा लूँ। मैंने राजकमल प्रकाशन दिल्ली में सिर्फ एक बार किताब और संदर्भ ग्रंथ को लेकर बात की, और सप्ताह में श्रीलाल शुक्ल की सारी किताब आ गई। यहाँ प्रसंगवश जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद, राधाकृष्ण प्रकाशन, अमित प्रकाशन, जोधापुर, साहित्यभंडार इलाहाबाद, ज्योति प्रकाशन पटना, चन्द्रलोक प्रकाशन कानपुर, अशोक

प्रकाशन दिल्ली, नमन प्रकाशन दिल्ली, हिन्दी साहित्य परिषद अहमदाबाद, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, अमय प्रकाशन कानपुर के प्रकाशकों का अन्तर से शुक्रगुजार हूँ, क्योंकि उन्होंने मेरे शोध-कार्य में सहायक ऐसी ग्रंथ सामग्री समय पर मुझे प्राप्त करायी है।

इस आशयपूर्ण कार्य में श्रीमती जे.सी. धानक आर्ट्स व कोमर्स कोलेज, बगसरा ग्रंथालय; श्री जे.एस. परमार आर्ट्स व कोमर्स कोलेज, कोडीनार, ग्रंथालय और बहाउद्दीन आर्ट्स कोलेज-जुनागढ़, ग्रंथालय का भी मुझे महत्वपूर्ण सहयोग मिला है। मैंने अपने शोध-प्रबंध में जहाँ से अपना संबल ढूँढ़ा है उसकी तालिका निम्नलिखित है-

- (१) श्रीलाल शुक्ल के सभी उपन्यास लेखक-श्रीलाल शुक्ल
- (२) हास्य-व्यंग्य संग्रह लेखक-श्रीलाल शुक्ल
- (३) पूर्व प्रकाशित शोध-प्रबंध एवं संदर्भ ग्रंथ
- (४) संस्कृत तथा अंग्रेजी संदर्भ ग्रंथ
- (५) संपादकों द्वारा संपादित व प्रकाशित अन्य ग्रंथ
- (६) विभिन्न शब्दकोश
- (७) पत्र-पत्रिकाएँ

इनका आवश्यक उपयोग कर मैंने अपनी सहजानुभूति के सहारे अपने शोध-प्रबंध को सफल बनाने का प्रयत्न किया है।

शोध-कार्य की परिसीमा :

शोधकर्ता ने जिस विषय को अन्वेषण के लिए लिया है, उसमें कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं को प्रस्तुत करने का सही प्रयत्न किया है। फिर भी साहित्य मूल्यांकन एक गागर में सागर है, जिसमें न जाने कितनी ही बातें भरी पड़ी हैं। यदि मैंने कुछ बातों का स्पर्श किया है, तो भी साहित्य का सागर तो भरा ही रहेगा। वैसे इस दिशा में अलग-अलग दृष्टिकोणों से वर्तमान शोधार्थी अपनी कलम से नवीन विचारबिन्दु प्रकट कर सकते हैं। शोधार्थीने इस शोध-प्रबंध में श्रीलाल शुक्ल के व्यक्तित्व एवं संपूर्ण साहित्य का सात्विक निगाह से संकलन कर उनके संपूर्ण उपन्यास साहित्य का उचित विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है। शुक्लजी के उपन्यासों का तात्विक विश्लेषण प्रकट करने से पहले उपन्यास का उद्भव एवं विकास का संक्षिप्त परिचय देकर उपन्यास साहित्य में उनका स्थान

निर्धारित किया है। साथ में आधुनिक भारतीय जीवन की मूल्यहीनता को सहजता और निर्ममता की बातें, उपन्यास की उद्भविता, कथापक्ष, चरित्र-चित्रण, संवाद, देशकाल तथा वातावरण, अभिव्यंजना शिल्प एवं स्पष्टीकरण पर शोध-कथन प्रस्तुत किये गये हैं। हिन्दी साहित्य के लेखकों के ग्रंथों से भी कई बातें संदर्भ के रूप में हैं। साहित्य एक भंडार है, कई बातें त्यागनी ही पड़ती हैं। लेकिन त्यागी हुई बातें परवर्ती शोध कर्ता पूर्ण करेंगे। साहित्य की शोध में पूर्णता नहीं होती, मेरे शोध-कार्य की भी अवधि हो सकती है, इस बात का मैं स्वीकार करता हूँ।

कृतज्ञता ज्ञापन :

उपस्थित शोध-कार्य के प्रारंभ से लेकर पूर्णता तक अन्वेषक को न जाने कितने संरक्षकों का सहयोग एवं आशीर्वचन मिलता रहा है। उनके प्रति कृतज्ञता का प्रेम प्रकट करते हुए कृतार्थता का प्रत्यक्ष ज्ञान क्यों नहीं होगा ? साथ-साथ गुरुजनों, सहयोगियों एवं सहकर्मियों के प्रति जिम्मेदारी प्रकट करते हुए अन्वेषक कृतार्थता का प्रत्यक्ष ज्ञान करता है।

सबसे पहले तो ईश्वर के प्रति मैं अपनापन का भाव प्रकट करता हूँ। क्योंकि मनुष्य या संसार का कोई जीव ईश्वर की कृपा के बीना आगे नहीं बढ़ सकता। इस शोध कार्य को पूर्णता तक पहुँचाने में उनकी कृपा रही है। बड़ों के प्रति भी मैं अपनेपन का भाव प्रकट करता हूँ। बड़े लोग, माता-पिता ऐसे ही आशीर्वाद देते हैं। उनके आशीर्वाद की वजह से ही मेरा शोध-कार्य पूर्ण हुआ।

मेरे परमश्रद्धेय मित्र-गुरु-मार्गदर्शक डॉ. के.एम.त्रिवेदी (विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग विनयन एवं वाणिज्य महाविद्यालय, बगसरा के प्रति मैं अपनी स्नेहयुक्त कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। विषयचयन से लेकर समाप्ति तक आपने जिस आत्मीयता, सहजता का परिचय दिया है। आपके योग्य मार्गदर्शन के कारण ही मेरा यह कार्य सफल बन पाया है। आपके माता-पिता के प्रति भी मैं पूर्ण श्रद्धावान हूँ।

समय-समय पर जिनसे सहयोग एवं आशीर्वाद मिलते रहे हैं, ऐसे परम आदरणीय डॉ. बी.के. कलासवा (अध्यक्ष हिन्दी भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट) एवं डॉ. शैलेश के. महेता (रीडर, हिन्दी भवन, सौराष्ट्र

विश्वविद्यालय, राजकोट) ने पूर्ण सामर्थ्य दिया है। आप सभी विद्वज्जनों ने शोध-कार्य में मेरी पूर्ण मदद की है।

विनयन एवं वाणिज्य महाविद्यालय, बगसरा के शिल्पकर्ता तथा श्री गिरधरलाल भूराभाई धानक लोक कल्याण ट्रस्ट के प्रमुख श्री वजुभाई धानक का शिक्षा सम्बन्धी सात्विक नजरियाँ अधिक प्रेरणात्मक रहा है। मैं उनके प्रति तहदील से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। सभी ट्रस्टियों का भी अधिक आभारी हूँ। कालेज का समग्र निद्वारिण सँभालने वाले परम आदरणीय प्राचार्यश्री डॉ. एस.डी. मोरी साहब का अधिक आभारी हूँ, क्योंकि शोधकार्य करने के लिए बार-बार कहा। हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ.के.एम. त्रिवेदी का मुझे अधिक सहयोग मिला है। इनके अतिरिक्त कॉलेज परिवार के सभी सदस्य - डॉ. बी.जे. पटेल, डॉ. जे.आर. जादव (हिन्दी विभाग); प्रा.एच.एल.वाला, प्रा. एच.वी. चौधरी (गुजराती विभाग); प्रा.डॉ. आर.सी. फिचडिया, प्रा. एन.सी. पटेल (संस्कृत विभाग); प्रा. बी.बी. गोहिल (समाजशास्त्र); प्रा. एम.एस. फड्डु (अर्थशास्त्र); प्रा. बी.जी. धानाणी, डॉ. बी.एम. डोडिया, (कोमर्स विभाग); ए.पी.सोसा (ग्रंथपाल), प्रा. बी.के. परमार (पी.टी.आई) आदि का भी मैं इस अवसर पर आभार प्रकट करता हूँ तथा बीन शैक्षणिक कर्मचारियों की ओर से मुझे काफी सहयोग मिला।

शिक्षा कार्य से बंधे अन्यत्र सेवारत अध्यापक मित्रों का भी साथ मिलता रहा है। डॉ. के.सी.देसाई (राजकोट), प्राचार्य डॉ. डी.ए. सेन (अमरेली), प्रा. गिरीशभाई वेलियत (अमरेली), डॉ. मूकेशभाई व्यास (धारी) प्रा.जेठवा अफसाना (भावनगर) तथा मेरे छात्र विपुल देवमुरारी ने समग्र संकलनकर्ता के रूप में मेरी सहायता की है, सभी मित्रों को इस अवसर पर याद करता हूँ।

इस अवसर पर मैं ग्रंथालयों को भी याद करता हूँ। उन ग्रंथालयों से मुझे अधिक सामग्री मिल पाई है। और जिनके कारण मेरा यह शोध-कार्य सम्पन्न हो पाया है। श्रीमती जे.सी. धानक आर्ट्स व कोमर्स कोलेज, बगसरा ग्रंथालय; श्री जे.एस. परमार आर्ट्स व कोमर्स कोलेज, कोडीनार ग्रंथालय का मुझे महत्वपूर्ण सहयोग मिला है। इस कार्य में राजकमल प्रकाशन, अन्नपूर्णा प्रकाशन, हिन्दी साहित्य भंडार, सहयात्री प्रकाशन, भूमिका प्रकाशन, अलका प्रकाशन, विनय

प्रकाशन एवं राधाकृष्ण प्रकाशन का भी अधिक सहयोग मिला है। इस महत्वपूर्ण रक्षकों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

मैं श्रीलाल शुक्ल के प्रति भी आभार प्रकट करता हूँ। जिनकी साहित्य उपलब्धि के कारण ही मैं अपना विवेचनात्मक कार्य पूर्ण कर सका हूँ। इनके अतिरिक्त उन तमाम समीक्षकों, लेखकों, विद्वानों के प्रति अपनी विनम्र कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ; जिनकी सहायता मुझे अन्वेषण में प्राप्त हुई और जिनकी रचनाओं के अवतरण मैंने अपने शोध-ग्रंथ में प्रस्तुत किये हैं।

अंततः मैं इतना कहूँगा कि अन्वेषण में अकेलेशोधार्थी से कुछ नहीं होता, मार्गदर्शक का उचित मार्गदर्शन एवं सेवारत अध्यापक मित्रों की सतत प्रेरणा से यह अन्वेषण कार्य समापन हो पाया है।

मेरे इस शोध-प्रबंध को प्रिन्ट करनेवाले सहृदयी मित्र श्री वीरसिंह परमार तथा देवुभा परमार का भी आभार व्यक्त करता हूँ। साथ ही वह सभी लोग जो मेरे इस कार्य में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सहयोगी रहे हैं - उनके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

अंततः उस परमतत्त्व के प्रति अपनी श्रद्धा प्रगट करता हूँ जिनके असीम आशीर्वाद से मैं शक्ति व सामर्थ्य जुटाकर इस शोध-यात्रा को पूर्ण कर पाया।

दिनांक :

स्थान : बगसरा

विनीत,

प्रा.डी.एम. राठोड

प्रथम अध्याय

- | | |
|---|--|
| १.० हिन्दी गद्य के समीक्षामात्मक आधार एवं उपन्यास | १.५.४ उपन्यास : सात्त्विक रूप |
| १.१ प्रस्तावना | १.६ उपन्यास : विभिन्न परिभाषाएँ |
| १.२ समीक्षा का अर्थ | १.६.१ भारतीय विद्वानों की परिभाषाएँ |
| १.२.१ समीक्षा की परिभाषा | १.६.२ पाश्चात्य समीक्षकों की परिभाषाएँ |
| १.२.२ समीक्षा के विभिन्न प्रयोजन | १.७ उपन्यास : विभिन्न तत्त्व |
| १.२.३ समीक्षा का स्वरूप | १.७.१ वस्तुपक्ष |
| १.२.४ समीक्षक के गुण | १.७.२ चरित्रयोजना |
| १.३ समीक्षा के प्रकार | १.७.३ कथोपकथन |
| १.३.१ आत्म प्रधान समीक्षा | १.७.४ देश-काल और परिवेश |
| १.३.२ सैद्धान्तिक समीक्षा | १.७.५ भाषा शैली |
| १.३.३ व्याख्यात्मक समीक्षा | १.७.६ उद्देश्य (प्रतिपाद्य) |
| १.४ समीक्षा के तत्व | १.८ उपन्यास के विभिन्न प्रकार |
| १.४.१ समीक्षा में तुलनात्मक दृष्टिकोण | १.८.१ सामाजिक उपन्यास |
| १.४.२ समीक्षा में ऐतिहासिक दृष्टिकोण | १.८.२ ऐतिहासिक उपन्यास |
| १.४.३ समीक्षा के व्यवस्थापक दृष्टिकोण | १.८.३ आँचलिक उपन्यास |
| १.४.४ समीक्षा के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण | १.८.४ मनोवैज्ञानिक उपन्यास |
| १.५ हिन्दी उपन्यास : स्वरूप | १.८.५ चरित्र-प्रधान उपन्यास |
| १.५.१ उपन्यास शब्द : व्युत्पत्ति एवं विश्लेषण | १.८.६ घटना-प्रधान उपन्यास |
| १.५.२ उपन्यास शब्द : अर्थ व प्रयोग | १.८.७ लघु उपन्यास |
| १.५.३ उपन्यास का महत्व | १.८.८ नाटकीय उपन्यास |

१.० हिन्दी गद्य के समीक्षात्मक आधार एवं उपन्यास

१.१ प्रस्तावना

प्रत्येक वस्तु के परखने और उसके गुण-दोष तय करने की प्रवृत्ति हरेक व्यक्ति में स्वाभाविक रूप से पाई जाती है। ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से प्रत्येक मनुष्य किसी वस्तु के लिए “अच्छी है, या बुरी है, या इस कक्षा की है-” इस प्रकार का कोइ-न-कोइ मत निश्चित करता है। प्रकारान्तर से समीक्षा भी स्थूल रूप से यही काम करती है। समीक्षा विभिन्न रूपों की विशिष्ट व्याख्या कर उनके सात्विक स्वरूप में प्रस्तुत करती है। उसे शिल्प के सम्पर्क से उत्पन्न रसानुभूति की भौतिक व्याख्या माना जा सकता है। समीक्षक विश्लेषण करता है, वह हमारे मस्तिष्क में उन सत्वों की चेतना उत्पन्न करता है, जो किसी साहित्यिक या कला-रचना अथवा उसके किसी अंश को रसमय या नीरस बनाते हैं। काव्य की विशेषताओं का सामान्य नाम देने का, अर्थात् सामान्य रूप में प्रस्तुत करने का नाम ही साहित्यिक समीक्षा है।

साहित्य-क्षेत्र में रचना को पढ़कर उसके गुणों और दोषों की समीक्षा करना और उसके सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करना समीक्षा कहलाती है। यह समीक्षा काव्य, नाटक, उपन्यास, निबंध आदि सभी की हो सकती हैं, यदी हम साहित्य को जीवन की व्याख्या स्वीकारे तो समीक्षा को उस व्याख्या की समीक्षा मानना पड़ेगा। किसी ग्रंथ की समीक्षा करने के समय हम ग्रन्थ और उसके कर्ता का वास्तविक अभिप्राय समझना चाहते हैं, और तब उसके सम्बन्ध में अपनी कोई संमति स्थिर करना चाहते हैं। दूसरों ने किसी ग्रन्थ या उसके रचनाकार की जो समीक्षा की हो, उससे भी हम लाभ उठा सकते हैं। समीक्षा से दो काम होता है। एक तो किसी कवि या लेखक की कृति की विस्तृत व्याख्या की जाती है, और दूसरे उसके संबंध में कोई मत स्थिर किया जाता है।

अंत में कहा जाय तो समीक्षा का प्रधान स्थान साहित्य के विविध पक्षों की समीक्षा, सूक्ष्म मुआयना ही है, और हम साहित्यिक समीक्षक से यही आशा करते हैं कि उसे विद्वान होना चाहिए और किसी भी साहित्यिक

विषय पर अधिकार पूर्वक विवेचन करके उसके गुण-दोष-प्रदर्शन के साथ उस साहित्यिक कृति या विषय पर अपना निर्णयात्मक मत प्रकट करना चाहिए। लेकिन सामयिक काल में हम समीक्षा-साहित्य के अन्तर्गत केवल उपर्युक्त प्रकार की समीक्षा को ही ग्रहण नहीं करते इसलिए साहित्य के विषय में लिखे गए सम्पूर्ण समीक्षात्मक, विश्लेषणात्मक तथा व्याख्यात्मक साहित्य को भी ग्रहीत किया जाता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि साहित्य के क्षेत्र में समीक्षात्मक, विश्लेषणात्मक अथवा निर्णयात्मक दृष्टिकोण से ग्रन्थों के अभ्यास द्वारा उस पर प्रत्यक्ष या बाहरी रूप से मत प्रकट करना ही समीक्षा है।

१.२ समीक्षा का अर्थ

वस्तुगत रोचकता या अरोचकता खोजने की प्रवृत्ति मानवमात्र में स्वाभाविक रूप में पाई जाती है। यह प्रवृत्ति मनुष्य को हर वस्तु की समीक्षा करने के लिए प्रेरित करती है। “मनुष्य जिस प्रकार आत्मतृप्ति के लिए कला से आस्वाद प्राप्त करना चाहता है उसी प्रकार कलाविषयक जिज्ञासा को तृप्त करने हेतु वह उसकी समीक्षा भी करने और सुनने को उतावला रहता है। मनुष्य मात्र की जिज्ञासा में समीक्षा की अनिवार्यता देखी जा सकती है।”^(१)

समीक्षा की व्याख्या और मूल्यों के निर्माण की प्रक्रिया कलाकृतियों के निर्माण के बाद आरंभ होती है। शिल्पकृतियों को देखकर मनुष्य उनके रोचक या असुन्दर होने की बातें करने लगता है। इस सुन्दरता का आधार विवेक होता है। यह रोचकता क्या है, इसकी सर्वमान्य परिभाषा दे पाना दुष्कर कार्य है। लेकिन विवेक और अहसास से हम वस्तुओं के गुणों का विश्लेषण करने लगते हैं। सौन्दर्य अनेक प्रकार से सामने प्रकट हो सकता है। ताल सौन्दर्य का प्रधान गुण है। यह विषय-वस्तु और उसकी अभिव्यक्ति दोनों में मौजूद रहता है। अनुभव से हमारी बुद्धि को लयतत्त्व का ज्ञान होता है और उससे शिल्पकृति के सौन्दर्य का बोध पाने पर, आनन्द की प्राप्ति होती है। यह लयतत्त्व वस्तु अथवा कलाकृति के रूप, रंग आदि में अन्विति का बोध कराती

है। इस सौन्दर्य से प्राप्त आनन्द में नवीनता होनी चाहिए।”^(२) इस दृष्टि से सौन्दर्य का दूसरा गुण ‘नवीनता’ माना जा सकता है। सीधी लकीर की अपेक्षा टेढ़ी लकीर अधिक सुन्दर प्रतीत होती है। इसी को ‘वक्रता’ समझते हैं। यह वक्रता सौन्दर्य का तीसरा गुण है। इसके साथ-साथ सुन्दरता का प्रभाव जिस गुण से हमारे मन पर पड़ जाता है, वह है ‘गम्भीरता’। गम्भीरता से साहित्यकार की अनुभूति की सच्चाई का परिचय मिलता है। नदी की अपेक्षा सागर में गम्भीरता अधिक होती है, अतः सागर की गम्भीरता का सौन्दर्य अधिक गहरा जाता है। विशालता भी सौन्दर्य का प्रमुख गुण है। छोटी पहाड़ी की अपेक्षा विशाल पर्वत की सुन्दरता मन को आकर्षित कर लेता है। इसलिए लय, नवीनता, वक्रता, गम्भीरता और भव्यता वे आधार हैं जो सौन्दर्य को नापने में कामयाब होते हैं। इन्हीं गुणों की तलाश में किसी कलाकृति की समीक्षा सम्भव हो सकती है।

“‘सौन्दर्य-मूल’ के साथ ‘नीति-मूल्य’ भी किसी साहित्यिक रचना के लिए महत्वपूर्ण है। लेकिन साहित्य का निर्माण समाज सापेक्ष होता है, इसलिए नीति-मूल्यों की सर्वथा उपेक्षा उचित नहीं।”^२ परन्तु नीति परिवर्तनशील वस्तु है, प्रत्येक युग और काल के नीति-मूल्य अलग हो सकते हैं। किसी समय सती-प्रथा प्रतिष्ठा का आधार मानी जाती थी, परन्तु आज यह अमानवीय व्यवहार समझा जाता है। मूलतः सौन्दर्य और नीति दोनों का परिचय विवेक से होता है, अतः इनमें विरोध पैदा करने और एक दूसरे को विपरीत दिशा में खींच ले जाने से समीक्षा की निष्पक्षता नहीं रहती। हिन्दी साहित्य में सुधारवादी कविता का आधार नीति-मूल्य मान लिये जाने से उसमें शुष्कता आ गई। इसी प्रकार छायावादी समीक्षा केवल सौन्दर्य और प्रभाव पर आधारित होने से कल्पनाओं में उलझ गई। प्रगतिवादी समीक्षा में वर्ग-संघर्ष की व्याख्या करने पर अधिक बल दिया गया, इसलिए सौन्दर्य और नीति दोनों में मनमुटाव आ जाने से समीक्षा का यह तरीका अधिक समय तक न रह सका। इस प्रकार सौन्दर्य और नीति का यथास्थिति अपनापन ही समीक्षा का वास्तविक आधार है।”^३

“रोचकता वस्तुगत होती है या व्यक्तिगत ? अभी सौन्दर्य के विषय में जो पाँच गुण बताए गए, उनसे सौन्दर्य का वस्तुगत होना सार्थक हुआ है, लेकिन सौन्दर्य से प्राप्त होने वाला आनन्द व्यक्तिगत होता है। सौन्दर्य से प्राप्त आनन्द की मात्रा व्यक्तिगत क्षमता पर निर्भर करती है।”

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि साहित्य समीक्षा का बिन्दु साहित्यिक कृतियों के सौन्दर्य की व्याख्या करना है। साथ ही, सुन्दरता के अपकर्षक तत्वों की और ध्यान दिलाकर कृति के स्थान की भी चर्चा की जाती है। अतः समीक्षा का काम व्यावहारिक पृष्ठभूमि पर आलोच्य की व्याख्या करना भी है और उसके गुण-दोष परखकर निर्णय देना भी। “यह काम सौन्दर्य और नीति-मूल्यों के आधार पर तटस्थता के साथ किया जा सकता है। कृति के विश्लेषण द्वारा रचना की सर्वांगीण व्याख्या प्रस्तुत करना और मूल्यांकन से सामाजिक अभिरूचि को उचित दिशा की ओर लेना इस दोहरे कार्य की पूर्ति में समीक्षा का स्वरूप निहित है।”^४

साहित्य-सृजन के क्षेत्र में समीक्षा अप्रत्यक्ष रूप में कुछ अन्य महत्वपूर्ण कार्य भी करती है। इससे साहित्यिक अराजकता पर नियन्त्रण और सत्साहित्य के प्रचार में सहयोग मिलता है। समीक्षा के माध्यम से हम जान पाते हैं कि साहित्य के अथाह सागर में से क्या ग्रहण करना है और क्या त्यागना है। इससे उन दिशाओं का भी बोध मिलता है जिनसे साहित्यिक कृतियों के रसास्वादन की समस्या सुलझ जाती है। समीक्षा के माध्यम से, युग-युगीन साहित्यिक रचनाओं में अभिव्यक्त मानवीय संस्कृति का कारण कार्यमूलक विकासात्मक रूप भी प्रस्तुत किया जाता है। परन्तु समीक्षा का कार्य दोष निकालना नहीं है। दोषदर्शन का बिन्दु सौन्दर्य के समर्थन हेतु ही होना चाहिए। कइ बार किसी काव्यकृति में विषय-वस्तु, पात्र, छन्द, अलंकार, भाषा, बिम्ब-विधान, रस, ध्वनि के आधार पर उसकी शल्यक्रिया करना ही समीक्षा समझ ली जाती है। परन्तु जब तक काव्य-रचना में सौन्दर्य की गरिमा और समाज-सापेक्षता का अभाव है, काव्यांगों की भित्ति पर उसका विवेचन निरर्थक होगा। “किसी कृति में काव्यांगों की उपस्थिति मात्र से वह साहित्यिक

रचना नहीं बन जाती। यदि ऐसा मान ले तो आयुर्वेद वाङ्मय को भी काव्य के अन्तर्गत रखना पड़ेगा। इसलिए समीक्षा, साहित्य-सृजन को भी दिशाबोध कराती है।”^५

साहित्य-समीक्षा के विषय में विद्वानों ने अनेक प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। उनका कहना है कि समीक्षा हमारी उत्सुक्ता जगाकर हममें ज्ञान की ज्योति का प्रसार करती है, यह साहित्य-अध्ययन में सहायता देती है और साहित्य के प्रभाव को तीव्र करने में सहायक है। परन्तु समीक्षा की एक उपयोगिता और भी है कि यह लेखक के लिए उपयुक्त पाठकवर्ग प्रस्तुत किया करती है और इसके माध्यम से पठन-पाठन के लिए उचित वातावरण तैयार होता है। समीक्षा के माध्यम से समाज की साहित्यिक रुचि का संशोधन और परिमार्जन होता रहता है। समीक्षा सामान्यतः उन व्यक्तियों के लिए अनिवार्य है जिनके पास कृतियों को पढ़ने का अवकाश नहीं। “कुछ लोग का जीवन इतना व्यस्त होता है कि वे नहीं जान पाते कि इस समय साहित्य के क्षेत्र में कौन-से लेखक महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। उनके पास मूल-ग्रन्थ पढ़ने का अवकाश ही नहीं रहता। समीक्षा थोड़े ही समय में साहित्य-क्षेत्र के नवीन प्रकाशनों तथा प्राचीन मूल ग्रन्थों में उनकी गति बना देती है।”^६

समीक्षा को आलोचना, समालोचना तथा काव्यशास्त्र शब्दों से भी सम्बोधित किया गया है। आलोचना शब्द का सामान्य अर्थ ‘निन्दा’ के रूप में प्रचलित है, अतः इससे समीक्षा की समग्र भावना का लोप नहीं होता, इसलिए आलोचना शब्द का समीक्षा के रूप में प्रयोग अधूरा-सा लगता है। समालोचना शब्द में आलोचना की अपेक्षा कुछ व्यापकता अधिक नजर आती है। “सामान्य पाठक इस शब्द के प्रयोग से थोड़ा-सा अधिक प्रभावित होने लगता है, लेकिन काव्यशास्त्र शब्द में शास्त्र पद के प्रयोग से गरिमा बढ जाती है और हम विचार करने लगते हैं कि काव्यशास्त्र और समीक्षा दो अलग विधाएँ हैं।”^७ हमारे देश में दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र आदि शब्दों के वजन पर काव्यशास्त्र की तस्वीर बड़ी दिखाई देने लगती है। यह काव्यशास्त्र शब्द काव्य और शास्त्र दो शब्दों से बना है। काव्य तो साहित्यकार द्वारा प्रणीत

कृतियों को कहते हैं और शास्त्र के विषय में कहा गया है- “शासनात् शंसनात् शास्त्र शास्त्रमित्यंभिधीयते” । अर्थात् व्यवस्थित, रूप में कथन होने से कोई भी ज्ञानशाखा शास्त्र कहलाती है। योग का व्यवस्थित कथन योगशास्त्र है, धर्म का नियमबद्ध कथन धर्मशास्त्र है। इसी प्रकार काव्य साहित्य का व्यवस्थित उपदेश काव्यशास्त्र / साहित्यशास्त्र है। दूसरे शब्दों में साहित्य - समीक्षा ही काव्यशास्त्र है। काव्य क्या है, इसका बिन्दु क्या है, इसके प्रयोजन कौन-से हैं, काव्यकृतियों के उपकारक और अपकर्षक तत्व क्या होते हैं, इन सबका उपदेश, समीक्षा या काव्यशास्त्र में किया जाता है। प्रधानतः साहित्य समीक्षा के सिद्धान्त पक्ष को काव्यशास्त्र समझ लिया गया है। “काव्यशास्त्र में साहित्य के सिद्धान्त ही तो स्थिर किए जाते हैं और इन सिद्धान्तों के निर्माण में व्यावहारिक समीक्षा से सहायता मिलती है। इसलिए समीक्षा और काव्यशास्त्र को पर्याय मानना चाहिए।”^८

१.२.१ समीक्षा की परिभाषा

समीक्षा की व्याख्या करते हुए डॉ. श्यामसुन्दर दास ने लिखा है- “साहित्य-क्षेत्र में ग्रन्थ को पढ़कर उसके गुणों दोषों की विवेचना करना और उसके सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करना।”^९

समीक्षा के कार्य और प्रभाव को स्पष्ट करते हुए बाबू गुलाबराय कहते हैं कि- “समीक्षा का मूल आशय-रचना का सभी दृष्टिकोण से आस्वाद कर पाठकों को उस प्रकार के रस में सहायता देना, उनकी रुचि को परिमार्जित करना एवं साहित्य की गतिविधि तय करने में सहायता करना है।”^{१०}

बाहरी विद्वानों ने समीक्षा की अलग-अलग परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं। ड्राइडन के मतानुसार- “आलोचना वह कसोटी है जिसकी सहायता से किसी रचना का मूल्यांकन किया जाता है।”^{११} मैथ्यू आर्नोल्ड का कहना है- “आलोचक को तटस्थ भाव से वस्तु के वास्तविक स्वरूप के ज्ञान का अनुभव और प्रचार करना चाहिए। आलोचक की सबसे बड़ी विशेषता है- तटस्थता ‘आइ.ए. रिचर्ड्स’ मूल्य निर्धारण को समीक्षा की प्रमुख प्रवृत्ति कहा

है। डॉ. जोन्सन की दृष्टि में आलोचना का कार्य है- विवेक के आलोक में जो दिखाई दे, उसका उद्घाटन करना और सत्य के निर्देश में जो निर्णय हो, उसका आख्यान करना है।”^{१२}

अंग्रेजी के प्रसिद्ध कार्लायल के अनुसार- “समीक्षा कृति के प्रति उद्भूत आलोचक की मानसिक प्रतिक्रिया का प्रतिफलन है।”^{१३}

१.२.२ समीक्षा के विभिन्न प्रयोजन

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर समीक्षा के विभिन्न प्रयोजन खूद स्पष्ट हो जाते हैं-

- “रचना के गुण-दोष का उद्घाटन करते हुए कृति में निहित सौन्दर्य बोध का विश्लेषण करना।”^{१४}
- “कृति के आशय पर प्रकाश डालना।”^{१५}
- “रचना की व्याख्या करना और मन पर अंकित प्रतिक्रिया को स्पष्ट करना।”^{१६}
- “समग्र कृति की विभिन्न दृष्टियों से इस प्रकार विवेचन करना कि पाठक को रचना को आत्मसात करने में सहायता मिले।”^{१७}

१.२.३ समीक्षा का स्वरूप

विभिन्न दृष्टिकोण, प्रयोजनों एवं पद्धतियों की दृष्टि से समीक्षा के मूलतः दो भेद किये जा सकते हैं- “साहित्यिक समीक्षा एवं वैज्ञानिक समीक्षा। साहित्यिक समीक्षा में समीक्षक का बिन्दु व्यक्तिगत दृष्टि से कृति के सम्बन्ध में निजी अनुभूतियों, धारणाओं एवं मूल्यों को कलात्मक शैली में प्रस्तुत करने का होता है, जबकि वैज्ञानिक समीक्षा में वस्तुगत दृष्टि से कृति का प्रामाणिक विवचन, विश्लेषण करते हुए उसके सम्बन्ध में सुनिश्चित एवं संतुलित निर्णय देने का होता है। वैज्ञानिक समीक्षा में शैली या पद्धति भी भावात्मक समीक्षा न होकर विचारात्मक होती है। वस्तुतः साहित्यिक समीक्षा जहाँ कला या साहित्य की कोटी में आती है, वहाँ वैज्ञानिक समीक्षा विज्ञान या अनुसंधान की श्रेणी में रखी जा सकती है। इनमें से भी प्रत्येक के तीन-तीन उपभेद होते हैं- जहाँ इतिहास से बंधे परिवेश का सम्पूर्ण लेखा सम्मुख रखकर

समीक्षा करने में संलग्न होती है। वहीं सैद्धान्तिक में सिद्धान्तों एवं मूल्यों की स्थापना की जाती है।’’^{१८}

समीक्षा में पूर्व निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर कृति का विवेचन एवं मूल्यांकन प्रस्तुत किया जाता है। समीक्षक के द्वारा प्रयुक्त दृष्टिकोण के आधार पर इन सबके तीन-तीन उपभेद और किये जा सकते हैं- शास्त्रीय, मनोविश्लेषणात्मक, समाजवादी। इसमें क्रमशः परम्परागत साहित्य-शास्त्र, आधुनिक मनोविज्ञान एवं मनोविश्लेषण, समाजवादी या प्रगतिवादी दृष्टिकोण को अपनाया जाता हैं। इसी प्रकार समीक्षा के दो निम्नस्तरीय भेद और भी हैं- भावाभिव्यंजक, पत्रकारक (पत्र-पत्रिकाओं में निकलने वाले रोचक परिचय) वस्तुतः ये दोनों भेद शुद्ध समीक्षा के अन्तर्गत नहीं आते हैं।

समीक्षा की विभिन्न पद्धतियाँ अभी तक किसी निश्चित और सर्वग्राह्य प्रणाली की स्थापना नहीं कर पाई हैं अतः समीक्षा के क्षेत्र में स्थिति के अनुसार, उपर्युक्त सभी पद्धतियों का आश्रय लेते हुए समीक्षा का कार्य सम्पन्न किया जाता है।’’^{१९}

१.२.४. समीक्षक के गुण

समीक्षक का कार्य अत्यन्त कठिन और अप्रिय होता है, संसार में बड़े-बड़े साहित्यिक, राजनीतिज्ञों, नेताओं और क्रान्तिकारियों तथा सुधारकों के स्मारक स्थापित किये जाते हैं, परन्तु किसी समीक्षक के सम्मान में कोई स्मारक निर्मित किया गया हो, ऐसा हमें ज्ञात नहीं। परन्तु समालोचक का कार्य कितना महत्वपूर्ण, आवश्यक और साथ ही कठिन तथा अप्रिय है, यह सभी स्वीकार करते हैं। इसी कारण उच्च कोटि का समीक्षक ही अपने कर्तव्य को समझता हुआ इस क्षेत्र में अवतरित हो सकता है। सत्य तथा असत्य साहित्य के विवेचन तथा वर्गीकरण के साथ वह साहित्य में असुन्दर तथा सुन्दर की खोज भी करता है, और साहित्य के आनन्द के मूल में कार्य करने वाली विभिन्न प्रवृत्तियों का अन्वेषण भी करता है। चाहे समीक्षक का संसार आदर न करे,

तथापि वह पथ-प्रदर्शन और सत्य और असत्य के विवेचन के कारण साहित्य में विशेष महत्वपूर्ण पद का अधिकारी है।”^{२०}

✱ विकासमान व्यक्तित्व

समीक्षक के सामने कोई रचना समीक्षा हेतु आती है तो पहले यह उस रचना के काव्यपक्ष और शिल्पपक्ष का परिचय प्राप्त करता है, यह उसके साक्षात् का क्षण है। दूसरी और उसे जागरूक रहना है कि उसके पूर्वाग्रह, उसकी दृष्टि को धूँधली न कर दें। इस कार्य में सफलता के लिए समीक्षक में विकासमान व्यक्तित्व का होना आवश्यक है।”^{२१}

✱ समीक्षक की निष्पक्षता

समीक्षक में निष्पक्षता होनी चाहिए, उसमें निष्पक्षता का भाव हो, तो वह सही तरीके से अपने आप को ढाल सकता है। किसी एक विचारधारा का आश्रय लेकर समीक्षा करने पर वाद और अराजकता उत्पन्न हो जाती है।^{२२}

✱ समीक्षक सेतु के समान

पाठक किसी साहित्यिक कृति में डूबता-उतरता है, पर वह उन कारणों पर समुचित प्रकाश नहीं डाल सकता जिन्होंने उसे कृति के प्रति अनुराग-विराग दिया है। साहित्य और विचारों के क्षेत्र में, रुचि के परिष्कार तथा आस्वाद के परिवेश निर्माण में समीक्षा की आवश्यकता सदैव रही है और आगे भी रहेगी।^{२३}

✱ समीक्षक में सौन्दर्यानुभूति

समीक्षक में सौन्दर्यानुभूति की क्षमता एक महत्वपूर्ण गुण होता है। व्याख्या, आलोचना, टीका-टिप्पणी करना आवश्यक है, परन्तु तत्त्व के बिना सारी व्याख्याएँ निरर्थक हो जाएँगी। साहित्य का चरम बिंदु तो आनन्दानुभूति प्रदान करना है। सौन्दर्यानुभूति से आनन्दानुभूति प्रकट हो सकती है।^{२४}

✳ विद्वता

विद्वता समीक्षक का बड़ा गुण है। समीक्षक को साहित्य की सम्पूर्ण समस्याओं का विशेषज्ञ होना चाहिए। आलोच्य साहित्य के इतिहास तथा उसके विविध युगों की सामान्य विशेषताओं से उसका विशेष परिचय होना चाहिए। पुस्तक या कलाकार की रचना के गुण-दोष-विवेचन के लिए आवश्यक तीखी दृष्टि उसमें तभी प्राप्त हो सकती है, जब उसमें विद्वता हो।^{२५}

१.३ समीक्षा के प्रकार

उपर्युक्त परीक्षण से यह स्पष्ट हो जायेगा - कि समीक्षा साहित्य का एक प्रधान अंग है और जिस साहित्य में समीक्षा का अंग पूर्ण विकसित न हुआ हो वह साहित्य आज के युग में अपूर्ण और अविकसित ही समझा जायेगा। आधुनिक युग में समीक्षा-साहित्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो चुका है, साहित्य के विविध अंगों का सूक्ष्म परीक्षण और उनके मूल्य-निर्धारण के अलावा उसके मूल में कार्य कर रही सूक्ष्म प्रवृत्तियों का पृथक्करण भी समीक्षा का ही कार्य है।

१.३.१ आत्म प्रधान समीक्षा

इसमें समीक्षक आलोच्य विषय का विवेचन करते हुए उसमें इतना तल्लीन या उससे इतना विमुख हो जाता है कि परीक्षण को त्यागकर भावुकता में चले जाते हैं। आलोच्य रचना का विषय उसके भावों का आधार बन जाता है। ऐसी समीक्षा इसी कारण रचनात्मक साहित्य का अंग बन जाती है। इसमें समीक्षक अलग अनुसंधान पद्धति को न अपनाकर अपनी रुचि अथवा आदर्श के अनुरूप ही आलोच्य-ग्रन्थ की समीक्षा कर अपना निर्णय देता है। इस समीक्षा के समर्थक यह कहते हैं कि समीक्षा के लिए इससे बढ़कर और क्या प्रमाण हो सकता है कि रचना हमको अच्छी लगी या बुरी। इसलिए ऐसे आलोचक किसी शास्त्र का आधार न लेकर आलोच्य रचना के अपने ऊपर पड़े हुए प्रभावों तथा अपने विचारों का ही सहारा लेते हैं। वह एक प्रकार की 'सत् असत्' 'विवेक-बुद्धि' में विश्वास रख अपनी ही रुचि को अन्तिम प्रमाण मानते हैं। अनेक विद्वान इस आत्मप्रधान आलोचना को विशेष उपयुक्त नहीं मानते,

क्योंकि उनके अनुसार इससे आलोच्य विषय का पूर्ण ज्ञान नहीं हो पाता। हिन्दी में जैनेन्द्र, शान्तिप्रिय द्विवेदी आदि इसी प्रकार के समीक्षक हैं। ऐसी समीक्षाओं का सबसे बड़ा दोष यह है कि इन्हें समझने के लिए एक दूसरी समीक्षा पुस्तक चाहिए। जब तक इनकी विवृति न हो, तब तक ये पाठको की समझ में नहीं आती। केवल प्रभाव को समझने में ही जब इतनी कठिनाई है, तब रचना की रचना-विधि या कला-विधान तथा उससे बंधी हुई अन्य बातों को कैसे समझा जा सकता है।^{२५}

१.३.२ सैद्धान्तिक समीक्षा

समीक्षा का नाता जीवनानुभूतियों से है। अस्तित्व के विभिन्न क्रियाव्यापारों, प्रभावों और परिणामों के सम्यक् समीक्षा हेतु कतिपय नियमों का विधान किया जाता है। जो विषयानुसार अनेक रूपता को धारण करते हैं। समीक्षा की प्रक्रिया भी निर्धारित आधारों पर पूर्ण होती है। ये आधार ही नियमबद्ध होकर सैद्धान्तिकता को प्राप्त करते हैं। पं. सीताराम चतुर्वेदी ने सिद्धान्त शब्द का अर्थ व्यक्त करते हुए बताया है कि किसी विषय के निरूपण का तात्त्विक आधार प्रस्तुत करना सिद्धान्त है। मानक हिन्दी कोश के अनुसार किसी विषय तर्क-वितर्क, विचार-विमर्श आदि के उपरान्त निश्चित किया गया मत सिद्धान्त है। स्पष्ट है कि परम्परागत तर्क-बुद्धि पर प्रमाणित होकर ही कोई आस्था या मान्यता सिद्धान्त का रूप ग्रहण कर लेती है। सिद्धान्त निर्माण की पृष्ठभूमि सम्यक् अनुसंधान, तर्क पूर्ण विश्लेषण, प्रमाण बद्ध निष्कर्ष और सार्वजनिक सहमति से युक्त होती है। सिद्धान्त ही परम्परा अनुभव और समर्थन द्वारा परिपुष्ट होकर 'शास्त्र' का रूप धारण करते हैं। सिद्धान्त से शास्त्र बनने की संपूर्ण प्रक्रिया युग की बृहत् सीमा पर घटित होती है। सिद्धान्त के पर्यायवाची अनेक शब्दों का प्रचलन है - धारा, मानदंड, प्रतिमान, परम्परा मत, मूल्य, धारणा, स्थापना, परीक्षा आदि।

सैद्धान्तिक समीक्षा का अर्थ है साहित्यिक रचना के मूल्यांकन हेतु सामान्य तथा व्यापक सिद्धान्त का अनुसंधान तथा निरूपण करना। सैद्धान्तिक आलोचना समीक्षा का, उसकी प्रक्रिया-पद्धति के आधार पर

किया गया एक महत्वपूर्ण प्रकार या भेद है। उसका क्षेत्र अत्यंत विशाल है। उसमें समस्त काव्यांग, काव्य तत्त्व, काव्य हेतु, काव्य-प्रयोजन, काव्य-भेदोपभेद काव्य लक्षण, काव्य स्वरूप, काव्य प्रक्रिया, काव्य त्रिकोण, कवि, समीक्षक, काव्य कला सभी तात्त्विक भाव का समावेश बना रहता है।

संस्कृत साहित्यशास्त्र में रस, ध्वनि, अलंकार, वक्रोक्ति, रीति, औचित्य आदि विविध संप्रदायों में निहित सिद्धान्त निरूपण सैद्धांतिक समीक्षा का आधार हैं। सैद्धांतिक समीक्षा किसी राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना से उद्भूत अस्तित्व दर्शन का ऐसा मानदंड है जो साहित्य को प्रौढता अर्पण करता है। सैद्धान्तिक समीक्षा के अंतर्गत संस्कृत के समस्त लक्षण ग्रंथ, रीतिशास्त्र, आलोचना के मानदंड काव्य के भेदोपभेद, काव्य तत्त्व, काव्य हेतु, काव्य लक्षण, काव्य पद्धतियाँ, काव्य-शिल्पविधान आदि समाविष्ट है। प्राश्चात्य साहित्य में मूल्यांकन हेतु निर्धारित प्रतिमानों के प्रामाणिक ग्रंथ 'पोइटिबल', 'एथेटिबल', 'सब्लाईम' आदि सैद्धान्तिक समीक्षा को प्रकाशित करते हैं। साहित्य के सृजन एवं समीक्षा का प्रधान कार्य है। सैद्धान्तिक समीक्षा साहित्य के इसी मौलिक वास्तविक स्वरूप को प्रकाशित करती है। समीक्षक द्वारा रचना-सिद्धान्तों का निर्धारण काल्पनिक नहीं होता बल्कि उसके मूल में सर्जनात्मक साहित्य को प्रवृत्तिबद्ध विवेचन और चिन्तन होता है। सैद्धांतिक समीक्षा केवल रचना की संवेदना का विश्लेषण नहीं करती परन्तु वह प्रत्येक रचना-प्रक्रिया का संकलन और समीक्षा करती है। विद्वानों ने सैद्धांतिक समीक्षा को विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया है। पं.सीताराम चतुर्वेदी के मतानुसार इसके पांच भेद हैं। (१) वैज्ञानिक स्वरूप (२) तुलनात्मक स्वरूप (३) शुद्ध समीक्षा (४) मनोवैज्ञानिक समीक्षा (५) निर्णयात्मक स्वरूप।^{२७}

१.३.३ व्याख्यात्मक समीक्षा

व्याख्यात्मक समीक्षा का अंतिम बिंदु केवल साहित्यिक रचना की परिभाषा प्रस्तुत करना है, समीक्षा करना नहीं। परिभाषा को समीक्षा का प्रारंभिक सोपान माना जा सकता है क्योंकि व्याख्या के द्वारा ही कला-कृति के महत्व का बोध होता है। रचना का स्वरूप ज्ञान व्याख्या से ही

संभव है। समीक्षक एक अन्वेषक के रूप में रचना के विविध अंगों का अभ्यास करता है। न्यायधीश बनकर उसकी श्रेष्ठता-अश्रेष्ठता का निचोड़ प्रकट नहीं करता। वह रचना की रहस्यमय गहराई में चला जाता है और उसके अन्तर्बाह्य उपकरणों का ज्ञान प्राप्त करता है। सृष्टि की भाव भंगिमाओं, दृष्टिकोण और धारणाओं की सम्यक् पहचान करके उदारतापूर्वक अपने मस्तिष्क का उनके साथ रिश्ता बनाता है। वह अपनी रुचियों को रचना तथा रचनाकार पर आरोपित नहीं करता।

व्याख्यात्मक समीक्षा की प्रवृत्ति सर्वप्रथम जर्मन विचारकों में उत्पन्न हुई बाद में इंग्लैंड में कार्यालय के माध्यम से इसका विकास हुआ। मैथ्यु आर्नल्ड ने भी समीक्षा पद्धति को महत्त्व दिया। व्याख्याता को कलाकृति के सम्बन्ध में सात्त्विक भाव से अन्तर्निहित तत्त्वों का प्रस्तुतीकरण करना होता है। “कलाकार या साहित्यिक कृति में पूर्णतः लीन होकर उसके उस अनुभव का उद्घाटन करना पड़ता है जिसमें उस कृति की रचना हुई। रूढ़ि, आलोचक के पूर्वाग्रह, निरोध, भावुकता, सैद्धांतिक आसक्ति रचना-कौशल सम्बन्धी पूर्व कल्पनाओं आदि बातों से व्याख्यात्मक समीक्षा में बाधा पड़ती है।”^{२८}

१.४ समीक्षा के तत्त्व

समीक्षा के दिये हुये अलग-अलग प्रकारों के आलावा आजकल कई प्रधान समीक्षक इन सभी प्रकार की पद्धतियों की मिली-जुली ढंग की समीक्षा लिखने लगे हैं। इस आधुनिक मिश्रित समीक्षा-पद्धति के अनुसार ‘साहित्य-अनुसंधान’ के रचनाकार ने वर्तमान युग की समीक्षा के प्रधान तत्त्वों की विशेषताएँ प्रस्तुत की हैं-

१.४.१ (१) समीक्षा में तुलनात्मक दृष्टिकोण को स्पष्ट किया जाता है। देश तथा काल की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का तुलनात्मक अभ्यास करते हुए कवि या रचनाकार की पूर्ववर्ती तथा सामाजिक कवियों के साथ तुलना कर उनका साहित्य में स्थान स्थापित किया जाता है।”^{२९}

१.४.२ (२) समीक्षा में ऐतिहासिक दृष्टिकोण - जिसके अन्तर्गत कवि के समय की राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों का

विश्लेषण किया जाता है। कवि के समय में प्रचलित विभिन्न आदर्शों तथा आशयों की समीक्षा की जाती है।”^{३०}

१.४.३ (३) समीक्षा के व्यवस्थापक दृष्टिकोण - जिसके अन्तर्गत कवि के काव्य का अभ्यास किया जाता है; विषय, भाषा-शैली, रसपरिपाक तथा नीतिमत्ता इत्यादि के अनुसार साहित्य की वैज्ञानिक व्याख्या कर समीक्षा के आशय को सामने प्रस्तुत करता है।”^{३१}

१.४.४ (४) समीक्षा में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण - इसमें रचनाकार या कलाकार के अस्तित्व उनकी, पारिवारिक परिस्थितियों के विश्लेषण के साथ उनकी मानसिक स्थितियों का तादात्म्य बैठाया जाता है। कवि के काव्य की, उसकी विभिन्न मानसिक स्थितियों के अनुसार व्याख्या की जाती है।”^{३२}

समीक्षा आयाम बहुत बड़ा है। अति विस्तार के कारण आज का समीक्षक अपनी समीक्षा में सार्वभौम दृष्टिकोण का सन्तुलन रखने में असमर्थ हो रहा है। वह रुचि विशिष्टता से एक ही तत्त्व को महत्त्व देते हैं। इधर हिन्दी में नई समीक्षा पद्धति के दर्शन होने लगे हैं, जिसका प्रारम्भिक रूप छायावादी कवियों द्वारा अपने काव्य-संग्रहों की भूमिकाओं के रूप में मिलता है। नवीन रचनाकार भी लगभग उसी पद्धति पर खूद अपनी और अपने साहित्य की व्याख्या करने लगे हैं। इन समीक्षाओं को पढ़कर ऐसा लगता है - मानों कवि या लेखक आपको यह समझाने का प्रयास कर रहा है कि वह भी महान है, और आपको उसकी महानता को स्वीकृति देनी ही चाहिए’।

१.५ हिन्दी उपन्यास : स्वरूप

उपन्यास का आशय मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना है। नानारूपिणी माया जब व्यक्ति को अन्य सबके प्रति एक प्रकार के विरोध से उकसाकर उसमें अहंभाव द्रढ़ करने का आयोजन करती है, तब उसके भीतर का आनंद इस आयोजन को तोड़कर खूद प्रतिष्ठित होने को उत्सुक रहता है। यह द्वन्द्वावस्था ही जीवन की चेष्टा का और उपन्यास का मूल है। यह उपन्यास केवल गद्य में लिखी हुई कथा ही नहीं हैं, मानव-जीवन की कथा है। उपन्यासों में मानव-जीवन अपनी विविधता, विषमता और

उलझनों के साथ अभिचित्रित है। मनोरंजकता इन्हें रागात्मक स्पर्श देती है। इनमें घटनाओं और चरित्र के माध्यम से समाज को सुखमय अस्तित्व का सन्देश देने की चेष्टा की जाती है।

परिभाषाओं का अध्ययन करने में उपन्यास के स्वरूप का आभाष हो जाता है, अतः उसके स्वरूप के विस्तृत विवेचन की आवश्यकता है। वस्तुतः उपन्यास जनसाधारण के लिए लिखा जाता है, इसलिए उसकी भाषा सरल एवं स्पष्ट होनी चाहिए। उसमें जो भी कथावस्तु हो, वह काल्पनिक होती हुई भी जीवन के यथार्थ से ली गई हो और अवान्तर कथाओं के मेल रहने पर भी उस मूल कथा का स्वरूप स्पष्ट हो। उपन्यास को हम गद्यात्मक महाकाव्य भी कह सकते हैं, उनके अन्तर्गत लेखक अपने जिन विचारों को व्यक्त करता है, उनके व्यक्त करने की दो विधियाँ अपनाता है - प्रत्यक्ष विधि, अप्रत्यक्ष विधि। प्रत्यक्षविधि में लेखक समय निकालकर खूद किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करने लगता है। प्रायः सफल लेखक अपने प्रधान पात्रों के माध्यम से ही कहते हैं। कला की दृष्टि से यही विधि उत्तम है, क्योंकि उपन्यासकार को साक्षात् उपदेशकर्ता बनने से दूर रहना चाहिए। उसे मानव की यथार्थ घटनाओं को लेकर कल्पना का वेश पहनाकर एक नवीनरूप में प्रस्तुत करना पड़ता है, जिसमें स्वाभाविकता एवं सात्त्विकता के साथ ही तटस्था का दृष्टिकोण अपनाना पड़ता है। अस्तित्व की विविधा का चित्रण करने में उसे जितनी ही प्रखर अनुभूति होगी, उतनी ही सफलता मिलेगी।

आधुनिक गद्य-साहित्य की अत्यंत महत्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध विधा है। काव्य और नाटक आदि की तुलना में नवीनतर साहित्य-स्वरूप होते हुए भी उपन्यास इसलिए अधिक महत्वपूर्ण बन बैठा क्यों कि वह मानव-जीवन के व्यापक एवं वैविध्यपूर्ण चित्रण के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ। आत्माभिव्यक्ति और आत्मरक्षा मानवस्वभाव की चिरन्तन विशेषताएँ हैं। उपन्यास और कहानी का उद्भव इन्हीं दो प्रयत्नों का परिणाम है। मनुष्य जीवन जीता है, अकेला नहीं, समाज के साथ। समाज में रहते हुए भी कभी वह दूसरों से सहयोग करता है, कभी असहयोग। कभी वह समाज से संघर्ष करता

है, कभी अपने आप से। कभी समाधान करता है, कभी इन अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों से लड़ता हुआ कभी वह गतिशील होता है तो कभी गतिरोध का शिकार। मनुष्य मात्र का यही चित्र-विचित्र अस्तित्व, उपन्यास में समय के व्यापक आयाम में फैलाकर कथाकृति बनता है और चरित्र-सृजन करता है। इस दृष्टि से उपन्यास एक विशिष्ट अस्तित्व कथा है। यह बात और है कि महाकाव्य की तुलना में उपन्यास एक विशिष्ट जीवनकथा है। और इसलिए उसे आधुनिक युग का गद्यात्मक महाकाव्य कहा गया है। यह बात और है कि महाकाव्य की तुलना में उपन्यास जीवन-यथार्थ के अधिक नजदीक है। उपन्यासकार अस्तित्व-यथार्थ का चित्रण ही नहीं करता अपितु आवश्यकतानुसार समाज में परिवर्तन या सुधार की भावना भी जगाता है। अपने सही स्वरूप, आयामी चित्र, रसात्मक शैली के कारण वह किसी भी युग का सात्त्विक बोध करा सकता है। उसमें एक व्यक्ति का समग्र जीवन भी आ सकता है और किसी समाज का संपूर्ण दृश्य भी। उसमें प्रसंगों की अधिकता भी हो सकती है और कथा का सामान्य आभास भी। वह आत्मकथा की शैली और पत्र की शैली में भी। वह एक साथ नाटक और कहानी का आनंद करा सकता है। इसीलिए एक बाहरी विद्वान ने उसे पॉकेट थियेटर कहकर पुकारा है। आधुनिक उपन्यास ने एक तरफ गाँव पर गहरा चित्रण किया है तो दूसरी तरफ महानगर के अस्तित्व का आयामी चित्रण। इस प्रकार उपन्यास अलग-अलग रूपों में व्यक्ति के सामने प्रकट हुआ।

१.५.१ उपन्यास शब्द : व्युत्पत्ति एवं विश्लेषण

साहित्यिक संसार में उपन्यास की व्युत्पत्ति से पहले हमारे आनंद के उपकरण केवल नाटक और कविता थे लेकिन इधर नवीन युग में हमारे साहित्य में उपन्यासों और कहानियों का ही शासन है। आधुनिक युग में साहित्य के विभिन्न अंगों में से उपन्यास को जितनी प्रसिद्धी उपलब्ध हुई है, उतनी अन्य किसी को नहीं। बड़े-बड़े रचनाकार भी कहानी, उपन्यास तथा गाथा-रचना करके जीवन की गम्भीर समस्याओं पर विचार करते हुए साहित्य

के इसी अंग द्वारा यश प्राप्त करते हैं। साहित्य संसार में उपन्यास की व्युत्पत्ति क्रान्तिकारी रूप से सफल हुई है।

उपन्यास हमारी कल्पना-शक्ति के लिए दुरुह नहीं उसके लिए विशिष्ट बौद्धिकता की भी आवश्यकता नहीं। इसी कारण उनकी लोकप्रियता तीव्र गति से बढ़ी। उपन्यासों में मनोरंजक उपकरण की अपेक्षा मानसिक पृथक्करण और सामाजिक निरीक्षण की मात्रा अधिक है। प्रारंभ में उपन्यासों की रचना केवल मनोरंजन के लिए ही की जाती थी, वहाँ आज व्यक्ति, समाज और उनकी बौद्धिक तथा नैतिक धारणाओं के विश्लेषण के लिए ही उनकी सृष्टि हो रही है।”^{३३}

साक्षात् हिन्दी-उपन्यास हिन्दी-साहित्य के लिए एक नयी उपलब्धि है। ‘उपन्यास’ शब्द का प्रयोग जिस अर्थ में आज ग्रहण किया जाता है, वह मूल ‘उपन्यास’ शब्द से अलग है। प्राचीन साहित्य में उपन्यास शब्द का प्रयोग आजकल के उपन्यास के अर्थ में नहीं होता था। संस्कृत लक्षण-ग्रंथों में इस शब्द का प्रयोग नाटक की संधियों के उपभेद के लिए हुआ था। इसकी दो प्रकार से व्याख्या की गई है - “‘उपन्यास : प्रसोदनम्’” अर्थात् प्रसन्न करने को ‘उपन्यास’ कहते हैं। दूसरी व्याख्या के अनुसार किसी अर्थ को युक्तियुक्त रूप से उपस्थित करना ‘उपन्यास’ कहलाता है। इन दोनों व्याख्याओं के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि उपन्यास में प्रसन्नता देने की शक्ति तथा युक्तियुक्त रूप में अर्थ को प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति के कारण इस प्रकार की कथा-प्रधान रचनाओं का नाम ‘उपन्यास पडा हो, क्योंकि’ उपन्यास शब्द से यही ध्वनि निकलती है। किन्तु यह अनुमान उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि नाटक-साहित्य के ‘उपन्यास’ शब्द और आधुनिक प्रचलित ‘उपन्यास’ में केवल नाम की समानता है। उपन्यास का शब्दार्थ है : सामने रखना। इसके द्वारा उपन्यासकार पाठक के निकट अपने मन की कोई विशेष बात, कोई मत रखना चाहता है। यह तो उपन्यास संज्ञा का हिन्दी अर्थ।

प्रांतीय भाषाओं में यह शब्द भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रस्तुत होता है। दक्षिणी भाषा तेलुगु में यह शब्द उसी अर्थ में प्रकट होता है, जिस अर्थ

में हिन्दी के व्याख्यान शब्द प्रचलित है। दक्षिण की भाषाओं में अंग्रेजी 'नोवेल' शब्द के लिए उसी की तुलना पर एक संस्कृत शब्द 'नवल' गढ़ लिया गया है। यह शब्द हकीकत में उपन्यास की प्रकृतिगत सर्वोत्तम विशेषता का परिचायक है। हिन्दी में इनके लिए 'उपन्यास' शब्द ही स्वीकारा था।''^{३४}

१.५.२ 'उपन्यास' शब्द अर्थ व प्रयोग

आधुनिक काल में उपन्यास अधिक प्रसिद्ध हो रहे हैं, क्योंकि इनमें सरल भाषा-शैली के माध्यम से अस्तित्व का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया जाता है। हिन्दी में 'उपन्यास' की विधा भी प्रधानतया आंगल प्रभाव से आयी हुई है। उपन्यास शब्द 'बंगला' से होकर हिन्दी में आया है, जो अंग्रेजी के NOVEL का ही रूपान्तर है। इसका शब्दार्थ है - नया या नूतन नावेल में काल्पनिक घटनाओं का चित्रण होता था, अतः इस अर्थ में उन्हें 'नूतन' या 'नवल' माना गया। फ्रांस में नोवास शब्द का प्रयोग होता था, क्योंकि इस विधा में जीवन के वास्तविकता का चित्रण किया जाता था। 'इटली' में भी नोवेल शब्द का प्रयोग होता है। इसके पूर्व गद्य कथाओं के लिए अंग्रेजी में FICTION शब्द प्रचलित था, जिसका अर्थ 'गल्प' या 'कल्पितकथा' होता है। इसका शब्दार्थ रोमांस भी होता है, परन्तु रोमांस और नोवेल में अन्तर है। 'रोमन' शब्द से रोमांस की निष्पत्ति हुई है, जिसका अर्थ असाधारण घटनाओं एवं पात्रों का चित्रण होता है, परन्तु उपन्यास में भी जीवन की साधारण घटनाओं का चित्रण होता है। संस्कृत में उपन्यास को कादम्बरी कहते हैं। और गुजराती में उनको नवलकथा कहते हैं।''^{३५}

१.५.३ उपन्यास का महत्व

उपन्यास अपने समय का चित्रण करता है, यथार्थ, उत्तम भाषा में उसका वर्णन करता है, जो न घटित, न घटमान उपन्यास दैनिक अस्तित्व की घटनाओं का सम्बन्ध बतलाता है, जो हमारे मित्रों तथा हमारे जीवन में सम्भव हो। उपन्यास की सफलता इसमें है कि प्रत्येक चित्र इस सरलता और स्वाभाविकता के साथ प्रस्तुत हो और उसे इतना सामान्य बनाया जाय कि उसकी वास्तविकता में विश्वास हो जाय।''^{३६}

उपन्यास अस्तित्व के भोगे हुए क्षणों की सशक्त अभिव्यक्ति का कलात्मक माध्यम है। वह अस्तित्व की अनेकता में एकता एवं अपूर्णता में पूर्णता स्थापित करने का भरसक प्रयत्न करता है। उपन्यास में मुख्यतः मानव जीवन के विविध पक्षों का ही चित्रण होता है तथा मानव विश्लेषण एवं मानवोत्थान ही उसका प्रधान बिंदु रहा है। उपन्यास साहित्य यथार्थ में नये समय की ही उपलब्धि है और उसका उद्भव नये आर्थिक संगठन के फलस्वरूप उत्पन्न मध्यवर्ग तथा आधुनिक रूप में शिक्षित मध्यवर्ग की सुधारवादी प्रवृत्तियों के कारण ही हुआ है। “पूँजीवादी सभ्यता ने दुनिया की कल्पनाप्रधान संस्कृति को जो प्रदेय दिया है उनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपन्यास ही है। पूँजीवादी सभ्यता में यथार्थ के जो नये स्तर, नये आयाम, नए रूप और भौतिकवादी चिन्तन, आधुनिक विचार, मूल्य उभरकर सामने आए, उन्हें सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान करने में अन्य साहित्यिक विधाओं तथा कलाओं की अपेक्षा उपन्यास ही पूर्णरूप से समर्थ दिखाई पड़ता है। उपन्यास अपने साथ अपने समस्त युग एवं समय को लेकर चलता है। वह उपन्यासकार की अनुभूति को बहुआयामी अभिव्यक्ति प्रदान करके पूरे अस्तित्व को समेटता हुआ चलता है। उपन्यास जीवन के यथार्थ और मानवीय सत्य के अधिक निकट होता है। वह अस्तित्व और संसार के सही और यथार्थ सन्दर्भों को जोड़कर उन्हें साहित्यिक पृष्ठभूमि पर प्रकट करता है।” “उपन्यास एक प्रकार से सत्य की खोज और असत्य का विनाश करने का एक साहित्यिक अस्त्र है। इस तरह उपन्यास यथार्थ और सत्य की खोज करता हुआ साहित्यिक विधाओं में अत्यधिक ठोस पृष्ठभूमि पर खड़ा होने में सक्षम सिद्ध हुआ है।”^{३७}

१.५.४ उपन्यास : सात्त्विक रूप

उपन्यास के अस्तित्व सम्बन्धी तत्त्वों की कसौटी करते हुए सबसे पहले इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसमें सत्यता की मात्रा कहाँ तक है पर वह सत्यता वैज्ञानिक सत्यता से बिल्कुल अलग और कवि कल्पना में मिलनेवाली ‘सत्यता’ के समान ही होगी। हम यह नहीं कह सकते कि उपन्यासों में केवल झूठी और कल्पित बातें भरी होती हैं और उनमें सत्यता का

कोई अंश होता ही नहीं। यह यथार्थ है कि कोई उपन्यास आदि से अंत तक वास्तविक अथवा सत्य घटनाओं के आधार पर नहीं होता; उसकी अधिक बातें लेखक की कल्पना से उद्भूत रहती है, परन्तु इतना होने परभी उसमें गूढ़ और व्यापक सत्यता अंतर्हित रहती है जो अधिक प्रभावशालिनी और शिक्षाप्रद होती है। कविता के विवेचन में हम जिस कवि कल्पना में सत्यता का उल्लेख पाते हैं, वही सत्यता उपन्यासों, और कहानी, नाटकों आदि में उपस्थित रहती है।

“उपन्यास में नामों और तिथियों के अतिरिक्त और सब बातें सत्य होती हैं, और इतिहास में नामों और तिथियों के अलावा और कोई बात सत्य नहीं होती।”^{३८} हमारा अभिप्राय तो केवल यही है कि लोग भली भाँति समझ ले कि उपन्यासों और नाटकों आदि का महत्व किस प्रकार के सत्य का आश्रित है। उपन्यास लेखक कुछ सत्य या संभावित घटनाओं को तोड़-मरोड़कर किसी नये और विलक्षण ढंग से हमारे सामने उपस्थित कर सकता है। पर फिर भी हम यह नहीं कह सकते कि जीवन की वास्तविक घटनाओं और शक्तियों अथवा आदर्श सम्भावनाओं से वह दूर जा पड़ा है। उपन्यासों में जो सत्यता होती है, वह वास्तव में उसकी वास्तविक अथवा संभावना से बंधी होती है।

१.६ उपन्यास : विभिन्न परिभाषाएँ

विभिन्न विद्वानों ने उपन्यास की अनेक परिभाषाएँ दी हैं परन्तु कोई भी एक परिभाषा उपन्यास के सभी पहलुओं को सीमाबद्ध नहीं कर पाती। उपन्यास की परिभाषा करते हुए इस शब्द के मूल शाब्दिक अर्थ की और इसी कारण ध्यान नहीं दिया है। उन्होंने ने उपन्यास की विशेषता और गुण को सामने रखकर ही उपन्यास की परिभाषा की है।

१.६.१ भारतीय विद्वानों की परिभाषाएँ

- (१) भगवतीशरण उपाध्याय - “साहित्य के अन्य अंगों के समान उपन्यास को अस्तित्व का दर्पण मानते हैं।”^{३९}
- (२) डॉ. श्यामसुन्दर दास - “उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।”^{४०}

- (३) मुंशी प्रेमचंद - “मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का महत्वपूर्ण तत्त्व है।”^{४१}
- (४) हृदयेश - “उपन्यास अपने में समानान्तर रचना है, प्रति सृष्टि, यह अधिक गांभीर्य और गरिमा के साथ की गयी एक लम्बी यात्रा है।”^{४२}
- (५) डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी - “आज के जमाने में उपन्यास एक ही साथ सदाचार का सम्प्रदाय चर्चा का विषय, अतीत का चित्र और पोकेट का थियेटर है।”^{४३}
- (६) बाबू गुलाबराय - “उपन्यास कार्य-कारण श्रृंखला में बंधा वह गद्य कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करनेवाले व्यक्तियों से सम्बन्धित वास्तविक काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव-जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है।”^{४४}
- (७) अब्दुल बिस्मिल्लाह - “उपन्यास के माध्यम से अपने समाज को और जीवन के विविध अनुभवों को गहराई के साथ अभिव्यक्त किया जा सकता है।”^{४५}
- (८) मृदुला गर्ग - “अनजाने में हम शायद इसलिए भी उपन्यास को चुनते हैं, क्योंकि वह हमारे जीवन की विडम्बना को आकृति देता है।”^{४६}
- (९) भगीरथ मिश्र - “उपन्यास युग की गतिशील पृष्ठभूमि पर सहज शैली में स्वाभाविक जीवन की एक पूर्ण व्यापक चमक प्रस्तुत करने वाला गद्यकाव्य है।”^{४७}
- (१०) अज्ञेय - “उपन्यास व्यक्ति को अपनी परिस्थितियों के साथ सम्बन्ध की अभिव्यक्ति के उत्तरोत्तर विकास का प्रतिनिधित्व करता है।”^{४८}
- (११) डॉ. सत्येन्द्र - “उपन्यास को नये युग की नई अभिव्यक्ति का नया रूप बताया है।”^{४९}

१.६.२ पाश्चात्य समीक्षाओं की परिभाषाएँ

- (१) एच.जी. वेल्स - “उपन्यास को एक HARMLESS OPIATE FOR VACANT MIND AND VACANT HOURS भाव मानते हैं।”^{५०}
- (२) न्यू इंग्लिश डिक्शनरी में उपन्यास के विषय में लिखा गया है कि ‘उपन्यास काल्पनिक गद्यकथा अथवा इतिवृत्त है जो पर्याप्त दीर्घ होता है और जिसके कथानक में उन चरित्रों और कार्य-व्यापारों का चित्रण होता है जो जीवन के वास्तविक चरित्रों और कार्य-व्यापारों को निरूपित करने का प्रयास करता है।’^{५१}
- (३) हेनरी जेम्स - “उपन्यास जीवन के संघर्षमय चित्र है।”^{५२}
- (४) हर्बर्ट जे. मूलर - “उपन्यास मूलतः मानवीय अनुभव का निरूपण है, चाहे वह यथार्थ हो या आदर्श।”^{५३}
- (५) ई.एम. फास्टर - “उपन्यास को कम से कम पचास हजार शब्दों की रचना अवश्य होना चाहिए।”^{५४}
- (६) अर्नेस्ट बेकर - “‘उपन्यास गद्य’ में लिखी गयी एक कल्पनाजनित कथा है, जिसके माध्यम से लेखक जीवन की व्याख्या करने का प्रयत्न करता है।”^{५५}
- (७) फ्रांसिस बेकन - “उपन्यास को एक प्रकार का कल्पित इतिहास कहकर पुकारा है।”^{५६}
- (८) राल्फ फाँक्स - “उपन्यास हमारे आधुनिक बुर्जुआ समाज का महाकाव्य है।”^{५७}
- (९) हेनरी हडसन - “उपन्यास में कथातत्व की अनिवार्यता का स्वीकार करते हुए उसे हमारे जटिल जीवन की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बताते हैं।”^{५८}
- (१०) बेकर - “उपन्यास को हम गद्यमय कल्पित आख्यान के माध्यम से की गई जीवन की व्याख्या कहते हैं।”^{५९}
- (११) चेवल - “उपन्यास निश्चित आकार का गद्यमय आख्यान है।”^{६०}

- (१२) क्रोसे - “उपन्यास से अभिप्राय उस गद्यमय गल्पकथा से है, जिसमें वास्तविक जीवन का यथार्थ चित्रण रहता है।”^{६१}
- (१३) आर बर्टन - “उपन्यास गद्य में रचित कवि के समकालीन जीवन का अध्ययन है, जिसकी रचना लेखक समाज के उत्थान-पतन की भावना से अनुप्राणित होकर करता है। इसके लिए वह प्रेमतत्त्व को प्रधानतया ग्रहण करता है, क्योंकि अपने सामाजिक सम्बन्धों में मानव इसी से परस्पर बंधे हुए हैं।”^{६२}
- (१४) बेवस्टर - “उपन्यास एक ऐसा कल्पित विशालकाय तथा गद्यमय आख्यान, जिसमें एक ही कथानक के अन्तर्गत यथार्थ जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों और उनके क्रियाकलापों का चित्रण रहता है।”^{६३}
- (१५) एडिन हर्टन - “उपन्यास एक ऐसा कल्पित आख्यान है जिसमें सुन्दर कथानक और भली प्रकार चित्रित पात्र होते हैं।”^{६४}
- (१६) वोल्फर्ट - “उपन्यास सक्रिय मानव जीवन की भाषा में भावों का गद्यानुवाद है। यह गद्यानुवाद इतना यथार्थ होना चाहिए कि उससे पाठकों का आत्मज्ञान बढे।”^{६५}
- (१७) जोसेफ वीरेन बीच - “मानव स्वभाव के अध्ययन को उपन्यास का मूल बिंदु बताया है।”^{६६}

उपन्यास के सम्बन्ध में दी गयी विभिन्न व्याख्याओं में उपन्यास की निम्नलिखित विशेषताएँ दिखाई देती हैं -

- (१) उपन्यास अस्तित्व सफर का आख्यान है।
- (२) उपन्यास मानव-अस्तित्व के अधिक निकट है और आजतक का प्रभावी, शक्तिशाली साहित्य-माध्यम है।
- (३) उपन्यास में कल्पना और वास्तविकता बनी रहती है।
- (४) हमारे सामने जो व्यक्ति है, उनका चित्र हम उपन्यास में देखते हैं।
- (५) उपन्यास में एक आकर्षण है, जो व्यक्ति को बांध कर रखता है।
- (६) मूल्य की महत्ता का दर्शन हम उपन्यास साहित्य में कर सकते हैं।

(७) मानव अस्तित्व की विविध चमक, परिस्थितियाँ उसके चरित्र का परिमार्जन उपन्यास में प्रस्तुत है।

१.७ उपन्यास : विभन्न तत्त्व

उपन्यास अस्तित्व की समीक्षा है। मानव के बहुआयामी जीवन का कलात्मक चित्रण उपन्यास का प्रधान आशय है। इस आशय की प्राप्ति के लिए उपन्यासकार को वस्तु और कला का रोचक संयोजन करना पड़ता है। इस संयोजन के अंतर्गत कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन, परिवेश, प्रतिपाद्य तथा भाषा शैली आदि तत्त्वों का समावेश हो जाता है।

उपन्यास के रूप में अलग-अलग सत्त्व कार्य करते हैं, जिनका अनुसंधान आगे किया जायेगा। उपन्यास में घटनाएँ होती हैं, जो कि उपन्यास के ढाँचे का निर्माण करती हैं। यही घटनाएँ उपन्यास के जिस भाग में सम्पादित की जाती हैं, उन्हें कथानक कहते हैं। कथावस्तु और घटनाएँ मानव केन्द्रित हैं। यही मनुष्य चरित्र कहलाते हैं। इन पात्रों की आमने-सामने बातचीत संवाद या कथोपकथन कहलाती है। चरित्रों के आस-पास की स्थिति, परिवेश, देश-काल आदि का वर्णन वातावरण में किया जाता है। संपूर्ण पात्र तथा कथावस्तु किसी विशिष्ट आशय या विचार की अभिव्यक्ति कहते हैं, उनका सृजन किसी विशेष आदर्श को लेकर किया जाता है, यही आदर्श-चित्रण उपन्यास का आशय होता है। उपन्यास वर्णन की एक अलग रीति होती है, जो शैली कहलाती है। भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है। उपन्यास की भाषा अन्य विधाओं की भाषा से अलग होती है। इस प्रकार उपन्यास के निर्माण में ये प्रधान तत्त्व सहायक हैं :- कथानक, चरित्र, संवाद, देश-काल, भाषा-शैली तथा उद्देश्य या विचार आदि तत्त्वों का समावेश हो जाता है।

१.७.१. वस्तुपक्ष

कथानक का प्रधान बिंदु चरित्र के वर्णन द्वारा मानव-संवेदनाएँ प्रस्तुत करना है। इन संवेदनाओं को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए कथाकार, छोटी-छोटी घटनाओं के सहारे की माला बनाता है और संगीत की तरह उसमें आरोह-अवरोह भरता है। घटना-क्रम की एकता और संगठन पर

बल देते हुए भगवती-शरण उपध्याय कहते हैं कि - “कथा के उस विस्तार में कला की दृष्टि से इस का संचरण और परिपाक होता है। घटना-चक्र की एकता या अनेक मुखी जीवन-धारा का स्वस्थ विलीनीकरण ही उसका पाक है। घटना-चक्र की एकता वस्तु गठन के रूप में, उपन्यास के इस को शांति प्रदान करती है।”^{६७}

उपन्यास में कथावस्तु का सर्वाधिक महत्व होता है। यह कथावस्तु ऐतिहासिक हो या काल्पनिक लेकिन लेखक को अपनी कल्पना का आश्रय लेकर उसे सरसता एवं प्रभावकारिता प्रदान करनी होती है। उपन्यास का कथानक ‘प्रत्यक्ष प्रणाली या आत्मकथा प्रणाली अथवा पत्र प्रणाली’ के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। इसके अलावा अन्य पद्धतियाँ भी हो सकती हैं।

‘कथानक’ अंग्रेजी शब्द PLOT का पर्यायवाची है। उपन्यास या नाटक में घटनाओं के संयोजन को कथावस्तु कहा जाता है। डॉ. प्रतापनारायण टंडन के शब्दों में कथानक घटनाओं का वह साधारण या असाधारण ढांचा है, जिसके द्वारा किसी उपन्यास की रचना होती है। उपन्यास की कथा का चुनाव जीवन और जगत के किसी भी क्षेत्र से किया जा सकता है। उपन्यास का प्रथम दायित्व यह है कि वह कथा-निरूपण करते समय अपने जीवन-अनुभवों के प्रति सत्य और प्रमाणिक हो। मानव अस्तित्व के मनमुटाव, अपनापन, भाव-अभाव, राग-विराग, आशा-आकांक्षाओं, संघर्ष-समस्याओं आदि का ईमानदारी पूर्वक कलात्मक चित्रण ही उसके कथानक को प्रभावशाली बना सकेगा।

उपन्यास-शिल्प में प्रयुक्त होने वाले साधनों में कथानक ही सर्वमान्य और अधिक सही है : यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि उपन्यास या कथा का संपूर्ण ढांचा कथानक के आधार पर ही खड़ा होता है। इसलिए आज उपन्यास में कथानक को अधिक महत्व नहीं दिया जाता, और न ही उसे उपन्यास की उत्कृष्टता तथा पूर्णता के लिए आवश्यक माना जाता है। क्योंकि उनका यह विचार है कि जीवन बिखरी हुई असम्बद्ध घटनाओं का नाम है,

इसलिए बिखरी हुई घटनाओं को एक सम्बन्धित कथा सूत्र में बाँधना अप्राकृतिक और अस्वाभाविक है; परन्तु यह विचार न तो सही है, और न संगत ही। कथावस्तु उपन्यास में वर्णित होता है, जिसके द्वारा उपन्यास के विचार सामूहिक रूप में अभिव्यक्त होते हैं। एडविन म्योर के कथनानुसार पंक्तिबद्ध घटनाएँ और वह आधार जिसके द्वारा वे संग्रहित की जाती हैं, वह कथानक है।^{६८}

उपन्यासकार अपने कथानक का चुनाव इतिहास, पुराण या किसी भी अंचल से कर सकता है। लेकिन कथानक के कौशलपूर्ण उचित चुनाव में ही लेखक की सफलता निहित है। किसी भी इतिहासिक कथानक के चुनाव के समय उपर्युक्त परिस्थितियों के अतिरिक्त तत्कालीन राजा, प्रजा, सैनिक और बड़े-बड़े अधिकारियों की रहन-सहन स्थिति के अतिरिक्त उनके जीवन-यापन के ढंग, उनके आमोद-प्रमोद के साधन तथा अन्य प्रकार की जीवन सम्बन्धी सभी बातों का उपन्यासकार को पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। आज जीवन से सम्बन्धित कथावस्तु को ही अधिक महत्व दिया जाता है। क्योंकि उसमें हमारे दैनिक जीवन की स्वाभाविकता विद्यमान रहती है, जो कि अपने-आप में एक बहुत बड़े आकर्षण का हेतु है।

सुन्दरता, हमारे दृष्टिकोण में, कथावस्तु की सर्व-प्रधान विशेषता है। जहाँ कथावस्तु अरोचक और नीरस है वहाँ उपन्यास उपन्यास नहीं रहेगा। उपन्यास पढ़ने का सर्वप्रमुख आशय आनंद है। यदि उपन्यास का कथानक मानस में आनंद के साथ उत्साह और शक्ति को उत्पन्न करता है तो निश्चय ही वह उच्चकोटि का उपन्यास कहलायगा। कथानक में सुन्दरता को उत्पन्न करने के लिए उत्सुकता, कौतुहल और नवीनता आवश्यक है। अतः घटनाओं का संयोजन इस दृष्टि से होना चाहिए कि चरित्रों की मानसिकताओं का पुट एक के बाद एक खुलता चला जाए।

उपन्यास के प्राणवान तत्व के रूप में कथा को शुरू से ही मान्यता रही है। किन्तु ज्ञान-विज्ञान एवं जीवन विषयक मान्यताओं के द्रुत परिवर्तन के साथ पाठकों की रुचि और मानसिकता में भी परिवर्तन होते गए।

हर उपन्यास में पारम्परिक दृष्टि से देखा जाय तो चाहे किसी भी रूप में और कितनी भी मात्रा में क्यों न हो एक सुगठित, सुसम्बद्ध तथा सुनियोजित कथा-विन्यास का होना अति आवश्यक है।^{६६}

कथावस्तु की विशेषताएँ।

कथा की अनेक विशेषताएँ हैं। इन विशेषताओं के कारण कथावस्तु अधिक सफलता की ओर गति करता है। ये विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

- (१) कथावस्तु में रोचकता का होना आवश्यक है। रोचकता की वजह से ही कृति सफल या प्रसिद्ध होती है।
- (२) कथावस्तु में सरलता, सत्यता और विश्वसनीयता होनी चाहिए।
- (३) कथावस्तु प्रभावपूर्ण, आकर्षक युक्त होनी चाहिए।
- (४) कथावस्तु में घटनाओं का चित्रण कलात्मक ढंग से होना चाहिए।
- (५) कथानक में जटिलता नहीं होनी चाहिए।
- (६) कथावस्तु में घटनाओं की अधिकता नहीं होनी चाहिए।
- (७) कथावस्तु मौलिक तथा मानवजीवन की परिस्थितियों का सजीव चित्रण का समावेश हो ऐसी होनी चाहिए।
- (८) कथावस्तु में देशकाल का चित्रण, प्रकृति चित्रण, धरातल चित्रण आदि का सुगठित सामंजस्य होना चाहिए।

१.७.२ चरित्र-योजना

उपन्यासों में चरित्र-चित्रण को जो महत्व प्राप्त हुआ है उसके मूल में पात्र ही हैं और ये महान पात्र, एक नहीं कभी-कभी अनेक रचयिताओं को प्रेरितकर विभिन्न रचनाओं को जनम देने का सामर्थ्य रखते हैं। उपन्यासकार जीवन के फलक को साकार करने के लिए मनुष्य को ही पात्र-रूप में ग्रहण करता है तथा उसके चरित्र को बहु-आयामी अर्थवत्ता प्रदान कर उसे अमर बना देता है। यही कारण है कि अनेक बार उपन्यास के पात्र उपन्यास से भी अधिक ख्याति प्राप्त कर लेते हैं और उपन्यास के बदले वे ही याद रह जाते हैं।^{७०}

आज चरित्र ही उपन्यास का आधार माना जाता है। उपन्यास में पात्रों का जीवन इसलिए व्यक्तिगत रहता है, फिर भी उसका विधान समष्टिगत जीवन के आधार पर निर्मित होता है। सामान्यतः उपन्यासकार अपने पात्रों के चरित्र का विकास दो प्रकार से करता है- घटनाओं में संघर्ष दिखाकर तथा पात्रों के भीतर के विशेष गुण को निमित्त बनाकर। उपन्यास के चरित्र लेखक की कल्पना में एकदम पूर्णरूप से नहीं आ जाते बल्कि उनमें क्रमशः विकास होता है और उस विकास की गति इतनी सहज होती है कि पाठक को इस परिवर्तन का एहसास नहीं हो पाता।

उपन्यास मानव चरित्र का चित्र होता है अतः मानवीय चरित्रों के अभाव में उपन्यास की रचना संभव नहीं है। भिन्न-भिन्न पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार जीवन के भिन्न-भिन्न रूपों को चित्रित करता है। वह अपने आसपास के परिवेश से पात्रों का चयन करता है, उनके भीतर झांकता है और अपनी संपूर्ण अच्छाइयों-बुराइयों के साथ हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। 'गोदान' का होरी पहले प्रकार का पात्र है कृषक वर्ग का प्रतिनिधि और 'शेखर एक 'जीवनी' का शेखर दूसरे प्रकार का पात्र है। पात्रों का चरित्रचित्रण आदर्शवादी भी हो सकता है और यथार्थवादी भी। पारस्परिक वार्तालाप एवं अंतर्दृष्टि के चित्रण द्वारा पात्रों का चारित्रिक विकास अपेक्षाकृत अधिक सहज और स्वाभाविक रूप से हो सकता है। संघर्षशील चरित्र का व्यक्तित्व अधिक आकर्षक बन पड़ता है। इस प्रकार चरित्र-चित्रण उपन्यास का महत्वपूर्ण तत्त्व है।'^{७९}

उपन्यास के पात्र उपन्यासकार के कल्पना-पुत्र होते हैं, वही उनका पालन पोषण करके उन्हें परिपुष्ट करता है, तथापि पात्र अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखते हैं। उपन्यासकार उनकी सृष्टि करके उन्हें अपनी कठपुतली बनाकर पाठक के लिए आकर्षक विहीन और अरुचिकर हो जायँगा।

उपन्यास में चरित्र-चित्रण को अत्यधिक महत्ता प्राप्त हुई है और उसकी कुशलता एवं कलात्मकता एक प्रकार से उपन्यास की महत्ता में निर्णायक बन गई। पात्रों को उपन्यासों में केन्द्रीय स्थान मिलता गया और

चरित्र-चित्रण उपन्यास में प्राणभूत तत्व बन गया। उपन्यासों में चरित्र-चित्रण का उपयोग बिम्ब, प्रतीक जैसा किया जाने लगा और इस बिम्ब प्रतीकात्मक शैली के कारण उपन्यास को एक नई दिशा मिली। चरित्रों के अभाव में उपन्यासों में न तो कथानक का निर्माण तथा विकास ही सम्भव है और न कथोपकथन जैसी प्रणाली की कल्पना की जा सकती है। इस तरह उपन्यास में चरित्र-चित्रण को अत्यधिक महत्व प्राप्त हुआ है क्योंकि मनुष्य जीवन के विविध रूपों एवं आयामों को उद्घाटित करने में वही तत्व कथा से अधिक सक्षम प्रतीत हुआ और अपने आशय-पूर्ति में भी वह अन्य तत्वों से अधिक सफल समझा जाने लगा।’’^{७२}

१.७.३ कथोपकथन

उपन्यास में संवाद या कथोपकथन का स्थान महत्वपूर्ण है। संवादों का प्रयोग नाटक विधा में ही प्रधान सूत्र के रूप में होता है किन्तु उपन्यासों में नाटकीयता लाने के हेतु संवादों का प्रयोग किया जाता है। यह मान लिया गया है कि संवादों के कारण औपन्यासिक कथावस्तु का स्वाभाविक विकास होकर पात्रों के चरित्रांकन में सहायता मिलती है और साथ में उपन्यासकार के मूल आशय की भी पूर्ति हो जाती है। इस प्रकार से पात्रों के चरित्र एवं मनोभावों का उद्घाटन करना, कथानक को विकसित करना तथा उपन्यास में नाटकीयता का सृजन करना संवादों का प्रधान कार्य माना जाता है।

कथोपकथन मूलतः नाटक का प्रमुख अंग है किन्तु आज साहित्य की अनेक विधाओं में उसका वैविध्यपूर्ण प्रयोग होता दिखाई देता है। उपन्यास में इसकी योजना विभिन्न आशयों से की जाती है। कभी कथाविकास के लिए, कभी पात्रों के अन्तर और बाह्य व्यक्तित्व के उद्घाटन के लिए तो कभी लेखकीय विचारों की नाट्यात्मक अभिव्यक्ति के लिए कथोपकथन का उपयोग आवश्यक बन जाता है। स्वाभाविकता, संक्षिप्तता, सहजता तथा मनोवैज्ञानिकता आदि गुण संवादों की सफलता का प्रधान आधार हैं। कथानक का अभिन्न अंग बनकर आनेवाला कथोपकथन ही सहज हो सकता है।

संवादों के कारण उपन्यास की कथावस्तु का क्रमिक विकास होकर उसकी रोचकता में बढावा होता है। संवादों के द्वारा उपन्यास में योजित घटनाओं एवं दृश्यक्रमों में नवनीता, सजीवता तथा ताजगी आकर उनके संगठन से उपन्यास की कथावस्तु के सहज विकास में सहायता मिलती है। बीती हुई घटनाओं का ब्योरा, वर्तमान की वास्तविकता का बोध एवं भविष्य के प्रसंगों की योजना संवादों के माध्यम से ज्ञात होती है। इसका अर्थ यह नहीं कि केवल संवादों के माध्यम से ही यह सब संभव है। संवादों के माध्यम से वह अतिशय संक्षिप्त रूप से कथावस्तु का सूत्रबद्ध विवरण प्रस्तुत करता है। उपन्यास की कथावस्तु को सजीव तथा प्रभावोत्पादक बनाने के साथ-साथ उसमें वैविध्य, वैचित्र्य, रोचकता और स्वाभाविकता उत्पन्न करने का कार्य भी संवादों के माध्यम से सहज सुलभ हो जाता है। संवादों की समुचित ढंग से योजना करने से उपन्यास की कथावस्तु के क्रमिक विकास के साथ उसमें एक प्रकार की तीव्रता और गतिशीलता आ जाती है जिससे उपन्यास के संकलित प्रभाव डालने की क्षमता में वृद्धि होती है।^{७३}

संवादों के द्वारा उपन्यास के पात्र अपने विचार, बौद्धिक संघर्ष तथा मान्यताएँ प्रकट करते हैं। संवादों के प्रस्तुतीकरण से ही उपन्यास के पात्र अपने आपको प्रकट करते हैं। इस प्रकार, चरित्रों की व्याख्या प्रस्तुत करके उनका सम्यक् चित्रण करना ही संवाद का मूलभूत तत्त्व है और इस दृष्टि से उपन्यास के चरित्र-चित्रण से उसका अत्यधिक निकट का सम्बन्ध रहता है। अतः स्पष्ट है कि केवल पात्रों की आपसी बातचीत या वार्तालाप ही संवादों का बिंदु या प्रधान आशय नहीं है बल्कि चरित्रों की यथास्थिति व्याख्या करके उनके आन्तरिक संघर्ष एवं मंतव्यों का प्रामाणिक प्रस्तुतीकरण करना ही उसका प्रधान बिंदु है। संवादों के माध्यम से पात्रों के क्रियाकलापों के यथार्थ ज्ञान के साथ-साथ उनकी मानसिकता का भी सही उद्घाटन होकर उपन्यास की स्वाभाविकता दृश्यमान होती है। परन्तु इन सबके बीच में एक खतरा यह भी रहता है कि बौद्धिक संघर्ष को अत्यधिक मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रकट करने के मोह तथा तथा दार्शनिक विचारों के बाहुल्य के कारण संवाद प्रभावहीन हो

जाते हैं। यदि कथोपकथन सुन्दर, जीवंत और सरल होंगे तो उनसे उपन्यास का प्रभाव बना रहेगा, और उसमें सजीवता और यथार्थता आ जाती है। लेखक का विवेकपूर्ण कलाकौशल ही संवाद को प्रसिद्ध बना सकता है।

“आधुनिक उपन्यासों में पात्रों की मानसिकता परिवेश की सजीवता तथा लेखक के युग एवं जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण को संकेतित करने के लिए संवादों का प्रयोग किया जाता है। अतः पात्र विशेष के कथन के स्थायी प्रभाव की अपेक्षा उपन्यास के संकलित प्रभाव को बढ़ाने के लिए संवादों की योजना की जाती है।”^{७४}

१.७.४ देशकाल और परिवेश

उपन्यासों में स्वाभाविकता और सजीवता का आभास देने के लिए देश, काल तथा वातावरण का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। प्रत्येक पात्र और उसका प्रत्येक कार्य किसी विशिष्ट देश, काल और परिवेश में होता है, वह इन सबसे बँधा रहता है, इसलिए उपन्यास की पूर्णता के लिए इन सबका वर्णन आवश्यक है।^{७५}

देशकाल तथा वातावरण के अन्तर्गत आचार-विचार, रीति-रिवाज, रहन-सहन और राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का वर्णन आ जाता है। पात्र देश-काल के भीतर ही अपना क्रिया-कलाप करते हैं। परन्तु किसी काल अथवा देशखंड में पात्र जो आचरण करते हैं उनकी प्रासंगिकता उस देश या काल खंड में तो होती ही है, परन्तु उनमें कुछ इस प्रकार की मानवीय संवेदनाएँ विद्यमान रहती हैं जो काल और देश की पत भेदकर, कालातीत और देशातीत व्यापक प्रवृत्तियों का परिचय देती हैं।”^{७६}

कथावस्तु का सम्बन्ध जिन-जिन स्थानों से हो, लेखक को उनकी वास्तविकता, परिस्थिति, भौगोलिक पर्यावरण आदि से परिचित होना चाहिए। इसके अतिरिक्त जिस समय का चित्रण हो, उस समय की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक स्थितियों का भी ज्ञान होना चाहिए, तभी वह उनकी अभिव्यक्ति कर सकेगा। उपन्यास में किसी घटना की सजीवता में वृद्धि करने के लिये धरातल के रूप में वातावरण चित्रण नितान्त उपयुक्त सिद्ध होता है।”^{७७}

देश-काल तथा वातावरण के चित्रण में भी सूक्ष्मता का ध्यान रखना चाहिए। देशकाल के चित्रण में उपन्यास की चित्रात्मक दृष्टि अपेक्षित है। ऐतिहासिक उपन्यास का तो यह प्राण है। ऐतिहासिक उपन्यासों में देश, काल तथा परिवेश का चित्रण बहुत महत्व रखता है, क्योंकि लेखक की वर्तमान काल की और ऐतिहासिक काल की परिस्थितियों में बहुत अन्तर होता है, इसलिए वह ऐतिहासिक काल की घटना को वर्तमान काल की परिस्थितियों में घटित हुआ चित्रित नहीं कर सकता, प्रायः ऐतिहासिक उपन्यासों में या तो ऐतिहासिक घटनाओं का ही चित्रण होता है या फिर एक विशिष्ट काल को ही चित्रित किया जाता है। देशकाल का यह वर्णन जितना ही सजीव, यथार्थ और सुसंगत होगा, उपन्यास उतना ही अधिक सफल रहेगा। बाह्य प्रकृति के वर्णन द्वारा भी वातावरण की रचना की जाती है। यह प्राकृतिक वर्णन कभी स्वतंत्र रूप से होता है और कभी-कभी पात्रों की मनः स्थिति के अनुसार इस दृष्टि से इसके तीन भाग किये गये हैं- सामाजिक, प्राकृतिक एवं ऐतिहासिक आदि।

- (१) उपन्यासकार सामाजिक स्थिति, रीति-रिवाज, वेशभूषा, पात्रों का जीवन-गत पुट, उनकी शिक्षा, संस्कृति आदि का चित्रण करता है।
- (२) उपन्यासकार उसके परिवेश तथा संदर्भ में पात्रों की मनोदशा का भावात्मक स्वरूप प्रकट करता है और उसे अधिक मार्मिकता प्रदान करता है।
- (३) अतीत की उपयुक्ता ऐतिहासिक उपन्यासों में ही होती है।

१.७.५ भाषा-शैली

विचारों को व्यक्त करने का महत्वपूर्ण उपकरण भाषा ही है। शैली लेखक की अभिव्यक्ति का साधन है और भाषा उसकी सहायिका है। उपन्यास की भाषा जन-जीवन के जितने ही समीप होगी, वह उतना ही सरल लगेगा और पाठक आकृष्ट होंगे। इसकी सजीवता के लिए बीच-बीच में लोकोक्तियों एवं मुहावरों के भी स्वाभाविक प्रयोग होने चाहिए। हास्य और व्यंग्य की पर्तें भाषा शैली को अधिक ग्राह्य बना देता है, अतः लेखक को इनका भी यथोचित प्राविधान करना चाहिए। लेखक की उत्तम शैली पाठक को

अनुरक्त रखती है। उसमें यथास्थान ओज एवं माधुर्य को भी स्थान देना चाहिए और 'प्रसाद' को तो सर्वाधिक स्थान देने की आवश्यकता होती है। "शैली की सजीवता के लिए उसमें पात्रानुकूलता का भी ध्यान रखना पड़ता है। पात्रानुकूल भाषाशैली से उपन्यास में प्रवाह एवं प्रांजलता जैसे गुण स्वतः आ जाते हैं। शैली जहाँ एक और लेखक के व्यक्तित्व को प्रस्तुत करती है, वहाँ दूसरी और पाठक को भी प्रभावित करती है।"^{७८}

उपन्यास की भाषा अन्य विधाओं की भाषा से नितान्त भिन्न होती है। उपन्यासकार जिस कथा-विश्व में हमें ले जाना चाहता है, उसकी प्रतीति भाषा द्वारा ही सम्भव होती है। पात्र और प्रसंग को जीवन्त बनाने में भाषा महत्वपूर्ण कार्य करती है। उपन्यास जीवन-यथार्थ की अभिव्यक्ति का माध्यम है अतः उसकी भाषा मात्र व्यवहार की भाषा कभी नहीं हो सकती। उपन्यासकार बोलचाल की भाषा का भी सर्जनात्मक प्रयोग करता है। संकेतात्मकता, व्यंग्यात्मकता, प्रतीकात्मकता द्वारा भाषा की व्यंजनाशक्ति कई गुनी बढ़ जाती है। प्रसंगानुसार मुहावरे का प्रयोग भी भाषा को रोचक बनाता है।

शैली का सामान्य अर्थ ढंग, तरीका होता है। और ढंग, तरीका हो तो रचना या कृति को सफलता मिलती है। साहित्यकारों ने शैली के निम्नांकित भेद बताए हैं- व्यंग्य शैली, वर्णनात्मक, आंचलिक शैली, प्लेश बेक शैली, चित्रात्मक शैली, सूत्रात्मक शैली, डायरी शैली, आलंकारिक, स्वगत शैली, विश्लेषणात्मक, भावात्मक, नाट्यात्मक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक शैली आदि।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में शैली का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि उपन्यास में जीवन्तता, भावुकता और रोचकता लाने के लिए महत्वकांक्षी शैली द्वारा ही सिद्ध होता है। प्रारंभिक हिन्दी उपन्यासों में वर्णन और विवरणप्रधान शैली के दर्शन होते हैं। आगे चलकर आत्मकथा, डायरी, पत्र-व्यवहार आदि कथन-शैलियों का विकास हुआ। मनोविज्ञान के बढ़ते प्रभाव ने पात्रों के अंतर्जगत में चलनेवाले ड्रामा को चित्रित करने के लिए

मनोविश्लेषण की विभिन्न शैलियों को उद्भवित किया। स्वगत और स्वप्न-दर्शन जैसी टेक्निक का उपन्यास में बड़ा सफल प्रयोग हुआ। व्यंग्य शैली का प्रयोग 'राग-दरबारी' जैसे उपन्यास में बड़ा प्रभावशाली सिद्ध हुआ। वस्तुतः उपन्यास में शैली-वैविध्य का सम्पूर्ण आधार कथ्य की विविधता पर आधारित है।

कथ्य और प्रयोजन वैभिन्न्य के आधार पर ही आदर्शवादी, यथार्थवादी, सामाजिक, ऐतिहासिक, आंचलिक, मनोवैज्ञानिक कथाशैलियाँ अस्तित्व में आयीं। बीसवीं सदी के आरम्भ में चरित्र-चित्रण के लिए आंतरचेतना प्रवाह की नवीन शैली का व्यापक प्रयोग आरंभ हुआ। इस प्रकार आधुनिक उपन्यास में भाषाशैली का नावीन्य, वैविध्य और शिल्पता के दिदार होते हैं। “बहुत् हिन्दी-कोश में शैली के बारे में कहा है- किसी काम करने का ढंग, तरीका, रीति, पद्धति, साहित्य, कला आदि की रचना, अभिव्यक्ति की रीति, इनकी रचना, अभिव्यक्ति का कौशल; साहित्य, कला आदि की विशिष्ट, आकर्षक शैली का निर्माण करनेवाला व्यक्ति।”^{७६}

कुछ लोग उपन्यास में भाषा का प्रश्न भी उठाते हैं। भाषा के शब्दों का विभाजन तत्सम, देशी, विदेशी आदि आधार पर करना व्यर्थ है। भाषा तो वही है जो पात्रों की मानसिकता को प्रभावशाली बना सके, उसके अन्तर का उद्घाटन कर सके, उसके क्रिया-कलापों का सजीव अंकन करने में समर्थ हो और पाठक को स्थायी भावों का आस्वादन कराने की शक्ति रखे। उपन्यास में भाषा और शैली का उनके प्राण कहे हैं।

१.७.६ उद्देश्य (प्रतिपाद्य)

उपन्यास में समाज एवं जीवन का यथार्थ चित्रण होता है। साहित्य को 'शुद्ध कला' की दृष्टि से देखें तो 'उपन्यास' का भी उद्देश्य 'आनन्द की सृष्टि करना है, किन्तु यदि साहित्य को जीवन की दृष्टि से देखे, जैसा कि अधिक संगत प्रतीत होता है, तो उपन्यास का लक्ष्य 'जीवन दर्शन' की अभिव्यक्ति है। उपन्यासकार को जीवन की मीमांसा करते हुए कलात्मकता के सौन्दर्य की रक्षा भी करनी चाहिए, अतः सौन्दर्य को सहगामी बनाकर जीवन

दर्शन और आनन्द का समन्वयात्मक चित्रण करना उपन्यासकार का लक्ष्य होना चाहिए। मुन्शी प्रेमचन्द ने मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का बिन्दु माना है, जो संगत होता हुआ भी कुछ संशोधन की माँग करता है। यदि इसी बात को कुछ इस प्रकार कहें कि- ‘मानवचरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलते हुए आनन्द की सृष्टि करना ‘उपन्यास’ का बिन्दु है, तो अधिक सार्थक होगा। उपन्यास चाहे सुखान्त हो या दुःखान्त, दोनों से आनन्द की अनुभूति होती है और इसी अनुभूति की सिद्ध करने पर लेखक का प्रयास सफल हो जाता है।’⁵⁰

आज के उपन्यासों का प्रधान उद्देश्य मनोविज्ञानिक विश्लेषण और उसके द्वारा मानव-मन के गहनतम पतों की व्याख्या करना है। आरंभ में ऐसा माना जाता कि उपन्यास का आशय आनन्द मात्र है किन्तु अब यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि उपन्यास अस्तित्व की बृहत आलोचना है और जीवन के विविध आयामों का यथार्थ चित्रण उपन्यास की महत्वपूर्ण उपलब्धि है, जिस पर अन्य सभी विशेषताएँ लाचार बन कर रहती हैं। उपन्यासकार जीवन को प्रत्यक्ष देखता है, मानवीय जीवन व्यवहार को आत्मसात् करता है। साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में नूतन शिल्परूप होते हुए भी वास्तविक-चेतना की अभिव्यक्ति के लिए उपन्यास सफल हुआ है।

प्रेमचन्द, उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मानते हैं और मानव का चरित्र जैसे-जैसे विकसित होता हुआ बदलता है, कथा में विविधता और अन्तर आता जाता है। मानव मनोभाव और देवत्व तथा दानतत्व के कृत्य कथा-साहित्य के अंग बन जाते हैं। इसलिए उपन्यास लेखन में सर्तक कला की आवश्यकता है, इसमें उदात्त कल्पना के साथ उदात्त चेतना का निर्वाह महत्वपूर्ण होता है। मनोवैज्ञानिकों ने मस्तिष्क की दो मुख्य अवस्थाएँ मानी हैं। पहली अवस्था में मस्तिष्क सदैव चेतनावस्था में रहकर कार्य-तत्पर रहता है। दूसरी अर्ध-चेतनावस्था है जिसमें ज्ञान भंडार का तिरोहित रूप समाया होता है। मस्तिष्क की यह दूसरी प्रकार की अवस्था जिस उपन्यासकार में जितनी बढी हुई तथा शक्तिशाली होगी, वह कल्पना द्वारा उतना ही सजीव तथा

स्वाभाविक वर्णन करने में सफल होगा। इसे लेखक का अनुभव कहा जा सकता है। सजीव एवं स्वाभाविक चरित्रांकन ही पाठकों को अपनी और आकर्षित करता है। “चरित्र, पात्र के गुण-दोष का लेखा है। पात्र समाज का एक प्राणी है और समाज परिवर्तनशील संस्था है। इसलिए समाज के संदर्भ में पात्रों की मानवीय संवेदनाओं का चित्रण ही उपन्यास की महत्वपूर्ण विशेषता है।”^{८१}

चरित्रप्रधान उपन्यास आनंद के साथ-साथ संदेश भी प्रस्तुत करते हैं। जीवन की व्याख्या करना इनका प्रधान बिंदु है। जीवन की यह परिभाषा जितनी अधिक सामान्य होगी उतनी ही इसमें आनंदात्मकता बढ़ती है।

१.८ उपन्यास के विभिन्न प्रकार

वर्ण्य विषय, तत्त्व, शैली तथा आकार के आधार पर उपन्यास के अनेक प्रकार से वर्गीकरण किये गये हैं। विषय के आधार पर ऐतिहासिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, आँचलिक आदि भेद किये गये हैं। तत्वों के आधार पर उसे घटनाप्रधान तथा वातावरणप्रधान जैसे वर्गों में बाँटा गया है। वस्तु-निरूपण शैली की दृष्टि से आत्मकथात्मक, नाट्यात्मक, पत्रात्मक एवं डायरी शैली जैसे उपन्यास प्रकार प्रचलित दिखाई देते हैं। कद या आकार की दृष्टि से लघु उपन्यास और बृहद् उपन्यास जैसे भेद किये गए हैं। किंतु प्रकार विभाजन के ये सभी आधार स्थूल एवम् विवादास्पद हैं। काव्य की भाँति कोई तार्किक वर्गीकरण उपन्यास का अभी नहीं हो पाया है, जिसको देशकाल की सीमा से परे हटकर सर्वसम्मत रूप से स्वीकार किया जा सके। इसका सीधा-सा अर्थ यह है कि काव्यशास्त्र की भाँति उपन्याससमीक्षा के सर्वस्वीकृत मानदंड तय होना अभी बाकी है।

१.८.१ सामाजिक उपन्यास

इनमें सामयिक युग के विचार, आदर्श और समस्याएँ चित्रित रहती हैं। सामाजिक समस्याओं का चित्रण-इनका प्रधान आशय होता है। इन पर राजनीतिक-सामाजिक धारणाओं मतों का विशेष प्रभाव रहता है। इसमें लेखक अपने समय के आदर्शों के रूप में पात्रों का चित्रण करता है। आज

के प्रगतिवादी लेखकों के अधिकांश उपन्यास तथा प्रेमचन्द के कुछ उपन्यास इसी वर्ग के हैं। परन्तु सामाजिक उपन्यास जैसा कोई वर्ग तय करना अवैज्ञानिक है, क्योंकि लगभग सभी उपन्यासों में समाज के किसी-न-किसी पक्ष या रूप का चित्रण अवश्य रहता है। इसलिए सभी उपन्यासों को सामाजिक उपन्यास माना जाना चाहिए। समाज के चित्रण के अभाव में उपन्यासों की रचना करना सम्भव नहीं है।

उपन्यास अस्तित्व की परिभाषा है। अस्तित्व से तात्पर्य है- सामाजिक जीवन। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। व्यक्ति के पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक जीवन एवं उसकी समस्याओं का चित्रण सामाजिक उपन्यासों का प्रमुख उद्देश्य होता है। “हिन्दी उपन्यास को सामाजिक समस्याओं से जोड़ने का कार्य सबसे पहले मुंशी प्रेमचंद ने किया और इसीलिए समस्यामूलक उपन्यासकार के रूप में पहचाने गये। प्रेमचंद के उपन्यासों में उनके समय के समाज का यथार्थ चित्रण है।”⁵⁹ स्वातंत्र्योत्तर काल में सामाजिक यथार्थ परम्परा का भी बहुत विकास हुआ। इसमें समाज की विभिन्न समस्याओं का यथार्थ वर्णन हुआ, जिनमें अनैतिकता, दुराचार, व्यभिचार, शोषण, अत्याचार आदि सामाजिक बुराइयों का चित्रण यथार्थ रूप में हुआ। आगे चलकर मार्क्सवादी चिंतन को केन्द्र में रखकर लिखे गये सामाजिक उपन्यासों को ‘समाजवादी’ उपन्यास कहा गया। यशपाल इस प्रकार के उपन्यासों के प्रवर्तक कहे जा सकते हैं।

१.८.२ ऐतिहासिक उपन्यास

इसमें अतीत का चित्रण देखने को मिलता है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता-इनका देश-काल चित्रण है। इन उपन्यासों का यह प्राण है। यदि इनमें देश-काल का पूर्ण और संगत चित्रण नहीं होता तो इनका कोई मूल्य नहीं रह जाता। इनकी ऐतिहासिकता का रक्षक यही देश-काल चित्रण है। देश-काल के चित्रण से अभिप्राय यह है कि जिस देश अथवा स्थान का और इतिहास के जिस काल-खंड का वर्णन हो वह उचित, यथार्थ और इतिहासपरक होना चाहिए।

किसी ऐतिहासिक कथ्य, तथ्य, घटना या चरित्र को केन्द्र में रखकर लिखा गया उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास की घटनाओं का विवरण या पुनरावर्तन मात्र है। वस्तुतः इतिहास, कल्पना और कला के योग से निर्मित रचना ही ऐतिहासिक उपन्यास कही जा सकती है। यशपाल के उपन्यास को इतिहास नहीं; 'ऐतिहासिक कल्पना' कहा गया है क्योंकि इतिहास की पृष्ठभूमि पर कल्पना के सहारे एक कला कृति की रचना लेखक का प्रधान आशय होता है। इतिहास के माध्यम से वर्तमान का दर्शन, वर्तमान की समस्याओं का चित्रण, युगीन मूल्यों की परीक्षा आदि करना लेखक का प्रयोजन होता है। इतिहास के कंकाल में कल्पना और कला के रंग भर कर लेखक उसे सरस, सुन्दर और प्राणवान बनाता है।”^{८३}

हिन्दी में वृन्दावनलाल वर्मा, यशपाल, चतुरसेन शास्त्री तथा हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि ने प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर इस परम्परा को आगे बढ़ाया है।

१.८.३ आंचलिक उपन्यास

आंचलिक उपन्यास प्रेमचंदोत्तर उपन्यास साहित्य की एक नयी प्राप्ति है। 'आंचलिक' में अंचल शब्द प्रधान है जिसका अर्थ होता है कोई प्रदेश, क्षेत्र या भू-भाग। आंचलिक उपन्यासकार किसी अंचल या प्रदेश विशेष को केन्द्र में रखकर उसकी जिंदगी का उसके समग्र रूप में यथार्थ चित्रण करता है। अंचल-केन्द्रित यथार्थ का यथातथ्य चित्रण इन उपन्यासों का प्रधान आशय होता है। ऐसे उपन्यासों की शिल्प विधि भी अपनी अलग पहचान रखती है। अंचल को ही नायक मानकर चलनेवाले इन उपन्यासों में व्यक्ति नायक नहीं होता। अंचल के असली रंगों का अंचल भाषा में चित्रण इनकी अपनी प्रमुख विशेषता है।

उपन्यासों में अंचल के वैविध्यपूर्ण चित्रण के लिये घटनाओं, पात्रों का वैविध्य अपेक्षित होता है। अतः कथा संगठन के बदले कथा का बिखराव इन उपन्यासों में प्रायः पाया जाता है। पात्र या चरित्र अपने लिए

नहीं अंचल के व्यक्तित्व को उभारने के लिये आते हैं। अंचल के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक जीवन को उसके यथार्थ रूप में इस प्रकार चित्रित किया जाता है कि समग्र अंचल हमारे सामने साकार हो उठता है। लोक भाषा, लोक गीत-संगीत, लोक-विश्वास, लोक-कथाएं, लोकोक्तियां आदि के माध्यम से अर्थात् लोककथा शिल्प के माध्यम से लेखक अंचल के लोक जीवन को उसकी संपूर्णता में जीवित कर देता है। हिन्दी में आंचलिक उपन्यास की परम्परा फणीश्वरनाथ 'रेणु' रचित 'मैला आंचल' से आरंभ होती है। हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में स्वातंत्र्य पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर भारत के ग्रामांचलों की यथार्थ स्थिति का चित्रण अधिक हुआ है।''^{८४}

१.८.४ मनोवैज्ञानिक उपन्यास

मनोवैज्ञानिक उपन्यास कथा-साहित्य की एक आधुनिक उपलब्धि है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार मानव के अंतर्मन का विश्लेषण करता है। वह व्यक्ति के बाह्यजीवन की अपेक्षा उसके अंतर्मन की अवल गहराइयों में प्रवेशकर उसके विविध व्यापारों और रहस्यों का उद्घाटन करता है। मनुष्य के भीतर चलने वाले ड्रामा का साक्षात्कार कराना उसका प्रमुख आशय होता है। इसीलिए मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार को अंतर्मन का कलाकार कहा जाता है।

इन उपन्यासों का मूल आधार फ्रायड का मनोविश्लेषणवादी जीवन दर्शन है। मनोवैज्ञानिक उपन्यास में बाल मनोविज्ञान, नारी मनोविज्ञान और यौन-मनोविज्ञान का रहस्यमय वर्णनविश्लेषण प्राप्त होता है। हिन्दी में जैनेन्द्र कुमार प्रमुख मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के रूप में जाने जाते हैं। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में व्यक्ति के अंतर्द्वन्द्व का मार्मिक चित्रण उसकी प्रमुख उपलब्धि है।''^{८५} इन उपन्यासों में पूर्वदीप्ति तथा चेतनाप्रवाह जैसी शैलियों का सफल प्रयोग होता है। इलाचंद्रजोशी और अज्ञेय के उपन्यासों में भी मनोविज्ञान को सफल-कलात्मक चित्रण हुआ है।

१.८.५ चरित्र-प्रधान उपन्यास

इनमें घटनाओं के स्थान पर पात्रों की प्रधानता रहती है। घटनायें गौण होती हैं। चरित्र-प्रधान होने के कारण उनका कथानक प्रायः शिथिल और असंगत होता है। इनमें पात्रों के चारित्रिक विकास पर ही पूर्ण ध्यान दिया जाता है। पात्र घटनाओं से पूर्ण स्वतन्त्र रहते हैं। वे खूद परिस्थितियों के निर्माता होते हैं, न कि परिस्थितियाँ उनकी। जैसे-जैसे पात्रों का चारित्रिक विकास होता है, घटनायें उनके इशारों पर नाचती जाती हैं। पात्रों के चारित्रिक गुण-दोष प्रारम्भ से अन्त तक एकरस बने रहते हैं। केवल उपन्यास के विस्तार के साथ-साथ उनके विषय में पाठक के ज्ञान में वृद्धि होती रहती है। इन चरित्रों में परिवर्तन नहीं होता, घटनाएँ केवल पात्रों की विशेषताओं पर ही प्रकाश डालती हैं। कौतूहल का अभाव रहता है। इससे इनमें एक प्रकार की शिथिलता और गतिहीनता आ जाती है। परन्तु ये उपन्यास समाज, देश तथा जाति की चारित्रिक विशेषताओं का प्रदर्शन सर्वाधिक प्रभावशाली और संवेदनशील रूप में करते हैं। इसलिए घटना प्रधान उपन्यासों से इनका महत्व अधिक माना गया है। हिन्दी में जैनेन्द्र, उग्र, ऋषभचरण, चतुरसेन शास्त्री के कुछ उपन्यास इसी वर्ग के हैं। परन्तु प्रेमचन्द के उपन्यासों को चरित्र-प्रधान उपन्यास नहीं माना जा सकता है, इसलिए उनके पात्र हमारे मन पर अपनी गहरी असर त्यागते हैं।”^{८६}

१.८.६ घटना-प्रधान उपन्यास

चमत्कारिक घटनाओं की प्रधानता घटना-प्रधान उपन्यास में रहती है। पाठकों के कौतूहल और उत्सुकता को निरन्तर जाग्रत बनाए रखने में ही इनकी सफलता मानी जाती है। पाठक वर्णित घटनाओं के जाल में ही उलझा रहता है। ये घटनाएँ पाठक के मानस में विस्मय को जागृत कर उसे निरन्तर मुग्ध बनाए रहती हैं। इनमें पात्रों का महत्व कथा की अपेक्षा गौण रहता है। यहाँ घटनायें ही प्रधान रहती हैं। पात्र घटनाओं के चक्कर में पड़कर फिर चमत्कारपूर्ण ढंग से उनमें से बाहर निकल आते हैं। इनका अन्त आनन्दमय होता है। घटनाओं के इस उतार-चढ़ाव से पाठक पूर्णतया डूबा रहता है।

उसका ध्यान घटनाओं की वास्तविकता, अवास्तविकता और पात्रों के चरित्र-चित्रण की ओर नहीं जा पाता। इनमें वास्तविक जीवन का चित्रण न होकर प्रायः काल्पनिक तथा चमत्कार जीवन का महत्व रहता है।

“घटना-प्रधान उपन्यास की कथा-वस्तु प्रेमाख्यान, पौराणिक कथाओं और जासूसी तथा तिलिस्मी घटनाओं से निर्मित होती है। हिन्दी के प्रारम्भिक युग में ऐसे उपन्यासों की भरमार थी।”^{८७} उस समय जासूसी ऐय्यारी और तिलिस्मी उपन्यास खूब लिखे गए। ‘चन्द्र कान्ता-संतति’, ‘भूतनाथ’ आदि उपन्यास इसी श्रेणी के हैं। आजकल तो हिन्दी में घटना-प्रधान जासूसी उपन्यास बहुत बड़ी संख्या में प्रकाशित हो रहे हैं। ऐसे उपन्यासों के विषय में प्रसिद्ध उपन्यासकार स्टीवेन्सन ने लिखा है- “उपन्यास की सबसे बड़ी सफलता इसी में है कि वह एक ऐसी भ्रान्ति की सृष्टि कर रोचक परिस्थितियों का इतना कुशल अंकन करे कि पाठकों की कल्पना उसके प्रति आकृष्ट हुए बिना न रह सके। और वे उस क्षण के लिए खूद को कहानी का एक पात्र समझने लगे और उनके कार्यों को वैयक्तिक रूप से अपना समझ कर अनुभव करने लगे।”^{८८}

१.८.७ लघु उपन्यास

लघु उपन्यास कहानी और उपन्यास के बीच उभरती हुई एक नवीन कथा-शैली है, एक नयी कथासंरचना है। आकारगत लघुता उसे लंबी कहानी के निकट ले जाती है, तो जीवन की विस्तृत विवेचना उसे उपन्यास के निकट ले जाती है। अभी तक इस विधा का पर्याप्त विवेचन नहीं हुआ है। आरंभ में ‘लघु’ शब्द- का प्रयोग विशेषण के रूप में हुआ था लेकिन अब एक विशिष्ट साहित्यिक विधा के रूप में इसका मूल्यांकन किया जाता है।

“एक प्रकार से देखा जाय तो उपन्यास और लघु उपन्यास में कोई मौलिक भेद नहीं है। आकारगत लघुता ही दोनों के बीच अन्तर उपस्थित करती है। इस दृष्टि से देखें तो प्रसाद की ‘आंधी’, रांगेय राघव की ‘गदल’ रेणु की ‘तीसरी कसम’ आदि कहानियां कहानी न रहकर लघु उपन्यास कही जा सकती है अथवा जैनेद्र का ‘त्यागपत्र’ उपन्यास न रहकर लम्बी कहानी

बन जाता है। किंतु अब धीरे-धीरे उपन्यास और लघु उपन्यास दोनों का अलग-अलग रूप से अनुसंधान किया जाने लगा है।”^{८६}

उपन्यास अपनी समग्रता और संपूर्णता को लेकर कम रफ्तार से अस्तित्वपथ पर अग्रसर होता है। जीवन की, समाज की समस्याओं का व्यापक परिप्रेक्ष्य में उद्घाटन, विवेचन करता हुआ मूल्यों की और संकेत करता है। इसके विपरीत लघु उपन्यास तीव्र गति से अपने बिंदु की ओर बढ़ता हुआ संवेदनाओं का सूक्ष्म और सघन रूप में चित्रण करता है। व्यक्ति या समाज के किसी एक पहलू को केन्द्र में रखकर उसका सघन संवेदनात्मक चित्रण करता है।

लघु उपन्यास की प्रमुख पहचान ये है कि इसमें व्यापकता कम रहती है। उपन्यास और लघु उपन्यास में उतना ही अंतर है जितना महाकाव्य और खंडकाव्य में। अनुभूति की तीव्रता, सघनता और गहनता लघु उपन्यास को उपन्यास से अलग करती है।”^{८७} अनावश्यक वर्णनों, पात्रों की भरमार आदि के लिये लघु उपन्यास में कोई स्थान नहीं होता। जैनेन्द्र कुमार का ‘त्यागपत्र’ हिन्दी का आदर्श लघु उपन्यास है। प्रमोद के माध्यम से मृणाल की कथा बड़े लाघव के साथ प्रस्तुत की गई है। कहीं भी अनावश्यक प्रसंगों का वर्णन नहीं है, अनावश्यक पात्रों का प्रवेश नहीं है। मृणाल की व्यथा-कथा का संवेदनात्मक चित्रण उपन्यास का प्रधान आशय है। हिन्दी साहित्य में लघु उपन्यास भले कम लिखे गये, लेकिन वह सफल भी रहे हैं।

१.८.८. नाटकीय उपन्यास :

नाटकीय उपन्यासों में पात्रों तथा कथानक दोनों का ही स्वतंत्र विकास होता है। न तो कथानक ही पात्रों पर आश्रित होता है, और न पात्र ही कथानक पर। किन्तु दोनों एक-दूसरे से असम्बन्धित नहीं रहते। पात्र जीवन के एक संकुचित क्षेत्र में सीमित हो जाते हैं। इधर घटनाएँ द्रुत गति से परिवर्तित होती हैं, और कथावस्तु में जटिलताएँ उपस्थित हो जाती हैं। पात्रों द्वारा उन्हीं के सुलझाव के प्रयत्नों के फलस्वरूप कथानक आगे बढ़ता जाता है।

इनमें कथोपकथन की अधिकता होती है। प्रतापनारायण श्रीवास्तव का 'विदा' उपन्यास इसी श्रेणी का है।

नाटकीय उपन्यास कला की दृष्टि इस वर्ग के उपन्यास सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। इनमें कथावस्तु और पात्र-दोनों का समान सन्तुलन रहता है। पात्रों की विचारधारा और उनके कार्य भावी घटनाओं की गतिविधियों को प्रभावित करते हैं। घटनायें और पात्र परस्पर सम्बन्धित रहते हुए भी स्वतन्त्र होते हैं। इस प्रकार इन उपन्यासों में आरम्भ से अन्त तक पात्रों और घटनाओं का पूर्ण सामंजस्य रहता है। दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त इनमें कल्पित-जीवन के स्थान पर वास्तविक सामाजिक जीवन का चित्रण होता है। यद्यपि कथा और पात्रों का निर्माण कल्पना-प्रसूत ही रहता है। इनकी कथावस्तु तर्कसंगत और स्वतः विकासमान रहती है। घटनायें जीवन के नियमों द्वारा संचालित होकर निर्धारित पथ पर अग्रसर होती रहती हैं। समय की गति के साथ विकासित होते-होते पात्र और घटनाएँ पूर्णतः स्पष्ट हो जाती हैं। इससे इनका अन्त कलात्मक और सुन्दर होता है। इन उपन्यासों में घटना-स्थल संकीर्ण और सीमित होता है। एक संकुचित दायरे में ही सारा कार्य-कलाप समाप्त हो जाता है। प्रेमचन्द के उपन्यास इसी कोटी के हैं।

● संदर्भ सूची ●

- (१) डॉ. रामनिवास गुप्ता : हिन्दी-साहित्य समीक्षा, पृ. १३
- (२) वही, पृ. १५
- (३) डॉ. श्यामसुन्दरदास : साहित्यलोचन, पृ. २०३
- (४) डॉ. यतीन्द्र तिवारी : काव्यशास्त्र, पृ. २१
- (५) डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त : साहित्यक निबंध, पृ. ६७
- (६) सुमन, मल्लिक : साहित्य विवेचन, पृ. ३०६
- (७) देवेन्द्रनाथ शर्मा : पाश्चात्य काव्यशास्त्र, पृ. ६१
- (८) डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त : पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त,
पृ. ३३
- (९) डॉ. निर्मला जैन : पाश्चात्य साहित्यचिंतन, पृ. ६३
- (१०) डॉ. ओमप्रकाश गुप्त : साहित्य-शास्त्र (भारतीय और
पाश्चात्य, पृ. ३१
- (११) वही, पृ. ६१
- (१२) वही, पृ. ६४
- (१३) डॉ. श्यामसुन्दरदास : साहित्यलोचन, पृ. २०५
- (१४) वही, पृ. २०६
- (१५) डॉ. रामनिवास गुप्त : हिन्दी साहित्य-समीक्षा, पृ. ३१
- (१६) वही, पृ. ३१
- (१७) वही, पृ. २६
- (१८) डॉ. राजनाथ शर्मा : साहित्यक निबंध, पृ. ४६७
- (१९) एल.एम.शर्मा : भारतीय काव्यशास्त्र सिद्धान्त, पृ. ३३
- (२०) सुमन, मल्लिक : साहित्य विवेचन, पृ. ३०८
- (२१) डॉ. रामनिवास गुप्त : हिन्दी साहित्य-समीक्षा, पृ. २१
- (२२) वही, पृ. २१
- (२३) वही, पृ. १६

- (२४) वही, पृ.२३
- (२५) क्षेमचंद्र सुमन : साहित्य विवेचन, पृ.३०६
- (२६) डॉ. कृष्णदेव शर्मा : पाश्चात्य काव्यशास्त्र, पृ.६३
- (२७) डॉ. सभापति मिश्र : भारतीय काव्यशास्त्र एवं पाश्चात्य साहित्य चिंतन, पृ.३४
- (२८) डॉ. राजनाथ शर्मा : साहित्यिक निबन्ध, पृ.६५६
- (२९) वही, पृ.६५८
- (३०) डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त : साहित्यिक निबंध, पृ.४६१
- (३१) डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत : शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, पृ.७०
- (३२) वही, पृ.७१
- (३३) सुमन, मल्लिक : साहित्य विवेचन, पृ.१७०
- (३४) राजनाथ शर्मा : साहित्यिक निबंध, पृ.५६८
- (३५) डॉ. यतीन्द्र तिवारी : काव्यशास्त्र, पृ.२२६
- (३६) वही, पृ.२३०
- (३७) डॉ. दंगल झाल्टे : उपन्यास समीक्षा के नये प्रतिमान, पृ.३३
- (३८) डॉ. श्यामसुन्दरदास : साहित्यालोचन, पृ.१३६
- (३९) राजनाथ शर्मा : साहित्यिक निबंध, पृ.५७०
- (४०) डॉ. रामनिवास गुप्त : हिन्दी साहित्य समीक्षा, पृ.११०
- (४१) वही, पृ.११०
- (४२) हंस-पत्रिका-जनवरी, १९६६ पृ.१०४
- (४३) डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी : साहित्य सहचर, पृ.६८
- (४४) राजनाथ शर्मा : साहित्यिक निबंध, पृ.५६६
- (४५) डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी : साहित्य-सहचर, पृ.१११
- (४६) वही, पृ.१०७
- (४७) डॉ. कृष्णवल्लभ जोशी : हिन्दी साहित्यशास्त्र की भूमिका, पृ.८६
- (४८) त्रिगुणायत गोविन्द : शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, पृ.४१२

- (४६) डॉ. गुप्ता, बंजारा : साहित्यशास्त्र, पृ.१७६
- (५०) डॉ. रामनिवास गुप्त : हिन्दी साहित्य-समीक्षा, पृ.११०
- (५१) वही, पृ.११०
- (५२) डॉ. गुप्त, बंजारा : (साहित्य-शास्त्र भारतीय और पाश्चात्य)
पृ.१७५
- (५३) वही, पृ.१७५
- (५४) वही, पृ.१७५
- (५५) वही
- (५६) वही
- (५७) वही
- (५८) वही
- (५९) डॉ. यतीन्द्र तिवारी : काव्यशास्त्र, पृ.२३०
- (६०) वही, पृ.२२६
- (६१) वही, पृ.२३१
- (६२) नंदाकिशोर : हिन्दी साहित्य शास्त्र, पृ.१६७
- (६३) गोविन्द त्रिगुणायत : शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, पृ.४११
- (६४) वही, पृ.४११
- (६५) वही, पृ.४११
- (६६) Joseph Warren : The Twentieth Century, ७४
- (६७) राजनाथ शर्मा : साहित्यिक निबंध, पृ.५७१
- (६८) डॉ. गुप्त, बंजारा : साहित्यशास्त्र भारतीय और पाश्चात्य, पृ.१७६
- (६९) डॉ. नंदकिशोर : हिन्दी साहित्य शास्त्र, पृ.४७
- (७०) डॉ. दंगल झाल्टे : उपन्यास समीक्षा के नये प्रतिमान, पृ.५६
- (७१) मुद्राराक्षस : साहित्य समीक्षा, पृ.६७
- (७२) डॉ. मक्खनलाल शर्मा : भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, पृ.१११
- (७३) डॉ. कृष्णानाग : हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का
विकास, पृ.७८

- (७४) डॉ. प्रतापनारायण टंडन : हिन्दी उपन्यास कला, पृ.१२५
- (७५) सुमन, मल्लिक : साहित्य विवेचन, पृ.१८३
- (७६) डॉ. रामनिवास गुप्त : हिन्दी साहित्य-समीक्षा, पृ.११२
- (७७) डॉ. जवाहर सिंह : हिन्दी के आंचलिक उपन्यास की शिल्पविधि, पृ.२२
- (७८) डॉ. दशरथ ओझा : समीक्षाशास्त्र, पृ.१६१
- (७९) बृहत हिन्दी कोश : ज्ञानमंडल लि. वाराणसी पृ.११४३
- (८०) डॉ. गुप्त, बंजारा : साहित्य-शास्त्र भारतीय और पाश्चात्य, पृ.१७८
- (८१) डॉ. रामनिवास गुप्त : हिन्दी साहित्य-समीक्षा, पृ.११३
- (८२) डॉ. कमला किशोर : प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्पविधान, पृ.१५
- (८३) डॉ. श्यामसुन्दरदास : साहित्यलोचन, पृ.१३७
- (८४) डॉ. पी.वी.कोटमे : श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों का शिल्पविधान, पृ.६५
- (८५) डॉ. मफत पटेल : हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास, पृ.७५
- (८६) डॉ. शांतिस्वरूप : उपन्यास स्वरूप संरचना तथा शिल्प, पृ.८६
- (८७) डॉ. रामअवध शास्त्री : संदर्भ और समीक्षा, पृ.१६०
- (८८) डॉ. मकखनलाल शर्मा : हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और समक्षी, पृ.१७२
- (८९) डॉ. कृष्णदेव शर्मा : समीक्षा सिद्धान्त, पृ.१७१
- (९०) डॉ. नगेन्द्र : भारतीय साहित्य, पृ.२३०

द्वितीय अध्याय

- २.० हिन्दी की औपन्यासिक परम्परा एवं श्रीलाल शुक्ल
२.१ प्रस्तावना
२.२ हिन्दी की औपन्यासिक परम्परा एवं श्रीलाल शुक्ल
२.२.१ प्रेमचंद पूर्व हिन्दी उपन्यास
२.२.१.१ हिन्दी का सर्वप्रथम उपन्यास : विभिन्न मत
२.२.१.२ अनूदित, मौलिक एवं सामाजिक उपन्यास
२.२.१.३ तिलस्मी व ऐयारी उपन्यास
२.२.२ प्रेमचंद युगीन हिन्दी उपन्यास
२.२.२.१ शिखरपुरुष प्रेमचंद : उपन्यास शिल्पी
२.२.२.२ प्रेमचंदयुगीन अन्य उपन्यासकार
२.२.३ प्रेमचन्दोत्तर-युगीन हिन्दी उपन्यास
२.२.३.१ प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यास के विभिन्न प्रकार : एक दृष्टि
(क) सामाजिक उपन्यास
(ख) समाजवादी उपन्यास
(ग) आँचलिक उपन्यास
(घ) ऐतिहासिक उपन्यास
(ङ) मनोवैज्ञानिक उपन्यास
२.२.३.२ प्रेमचन्दोत्तर युग के सशक्त हस्ताक्षर : श्रीलाल शुक्ल
२.३ साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास एवं उत्तरशती तक के हिन्दी
उपन्यास की विकासयात्रा : एक विहंगावलोकन

२.० हिन्दी की औपन्यासिक परम्परा एवं श्रीलाल शुक्ल

२.१ प्रस्तावना

उपन्यास वास्तविक मानव-अनुभवों एवं सात्त्विकता का आकलन है। वह अस्तित्व की अनेकता में एकता तथा अपूर्णता में समग्रता स्थापित करने का प्रयत्न करता है। परन्तु जीवन और साहित्य का अथवा दूसरे शब्दों में कहें तो समाज और साहित्य का परस्पर मज़बूत रिश्ता है। मानव अस्तित्व के सम-विषम भावों को साहित्यकार अपनी रचना में किसी न किसी रूप में अंकित करने का प्रयास अवश्य करता है। मानव जीवन या समाज का यह अंकन अन्तर्जगत तथा बाह्यजगत दोनों से जूड़ा हुआ है। भारतीय संस्कृति ने भारतीय जीवन की जो मान्यताएँ स्थापित की उनके अन्तर्गत जन-जीवन अपने धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं साहित्यिक क्षेत्रों में प्रवाहित होकर निरन्तर प्रगतिशील रहा।

जीवन के यथार्थ चित्रण के साथ-साथ अस्तित्व में प्रचलित विभिन्न विचारधाराओं की अभिव्यक्ति के द्वारा आदर्श की प्रतिष्ठा करना प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यासों का प्रमुख आशय रहा है। भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों प्रकार की विचारधाराओं की अभिव्यक्ति की दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर कालीन उपन्यास समृद्ध है।

उपन्यास द्वारा मनुष्य खूद का अनुसंधान करता है। इस आशय से यहाँ मानव का सभी दृष्टियों से यथार्थ चित्रण होता है। उपन्यास बताता है 'जो हम हैं' इसलिए वह जीवन के यथार्थ चित्रण पर बल देता है। यह तथ्य महाकाव्य से उपन्यास की तुलना करने पर स्पष्ट हो जाएगा। महाकाव्य वह प्रस्तुत करता है, जो हम बनाना चाहते हैं। इसमें विराट जीवन की अभिव्यक्ति रहती है। उसका घटनाचक्र और चरित्रांकन प्रतीकात्मक होता है। उसमें पात्रों का व्यक्तित्व प्रस्तुत किया जाता है, उसका चरित्र नहीं। उसमें जीवन की एकताओं में समाहित मूल एकता की खोज और स्थापना पर बल रहता है। उसका नायक युग की सीमाओं से परे किसी सनातन जीवन-मूल्य अथवा आदर्श का सन्देश देता है।

उपन्यास में इसके विपरीत व्यावहारिक जीवन तथा तथा तत्कालिन परिस्थितियों के चित्रण पर प्रधान रूप से बल रहता है। यह जीवन का सूक्ष्म विश्लेषण कर, उसकी समस्याओं तथा समाधानों को प्रस्तुत करता है। यहाँ जीवन की अभिव्यक्ति, प्रतीकात्मक नहीं, प्रत्यक्ष होती है और पात्रों का व्यक्तित्व नहीं, चरित्र प्रस्तुत किया जाता है। उपन्यास जीवन की अनेकता, विविधता को सामने रखता है। उपन्यास मनुष्य का अन्वेषण विश्लेषणात्मक तथा अभिनयात्मक दोनों प्रकार की पद्धतियों द्वारा करता है।

उपन्यासकार मनुष्य की रहस्यमयता तथा मानव-जीवन के स्वतंत्र पक्ष का उद्घाटन करता है। मानव के कार्य प्रत्यक्ष होते हैं। उसका कृतित्व अतीत का विषय है। उपन्यासकार अपने अनुभव के आधार पर मानव-हृदय के गुढ़ रहस्यों, उसके आवेगों, स्वप्नों, स्वगतों का प्रत्यक्षीकरण करता है। वह दिखाता है कि किस प्रक्रिया द्वारा पात्रों के विचार उनके कृत्यों में परिणत होते हैं। इस विधिनिर्दर्शन में उपन्यासकार की असाधारण कल्पना-शक्ति समाहित है। इतिहास बाह्य सत्त्वों पर आधारित होने के कारण नियति पर निर्भर रहता है, किन्तु उपन्यास नियति का पल्ला न पकड़कर, मानव स्वभाव के आश्रित होता है। उपन्यास में प्रत्येक कार्य साभिप्राय है, पात्रों का आवेग, अपराध यहाँ तक कि उनकी विपत्ति दूर्गति भी साभिप्राय होती है। यथार्थ संसार में नियत परिपाटी पर अस्तित्व व्यतीत करने वाले मानव से, उपन्यास के चरित्र कार्य में अलग होते हैं। इसमें चरित्र, प्रसंग काल्पनिक होते हैं। तभी यह पाठकों के लिए नयी कथा है, लेकिन इसकी प्रस्तावना यथार्थ अतीत की रफ्तार पर ही रहती है।

‘उपन्यास शब्द का तात्पर्य अहसास की सहज, स्वाभाविक स्थिति के निर्वाह से है। उपन्यास एक कतारबद्ध कथा है। यह कथा, वास्तव में ऐतिहासिक रूप से सत्य नहीं है, किन्तु वैसी सहज ही हो सकती है।’¹ कथा के महत्व को प्रकट करते हुए उन्होंने कहा है कि - ‘यदि ईश्वर संसार की कथा कहता तो संसार कथात्मक हो जाता है।’

पाठक संसार की सबसे प्रसिद्ध और लोकप्रिय विधा उपन्यास है। इसकी रसात्मक शक्ति से पाठकों के प्रायः सभी वर्ग अभिभूत होते हैं। उपन्यास ही मानवता की परिभाषा करने में समर्थ है - ये पाठकों की अन्तर्दृष्टि और लगाव शक्ति को प्रस्तुत करते हैं, उन्हें सामाजिक विषयमताओं के प्रति सजाग कर, चारित्रिक क्षमता अर्पण करते हैं। ये एक रस, होकर वास्तविक अस्तित्व को नाटकीय व्यवस्था, और पाठकों को नई शक्ति और धैर्य देते हैं।

अन्ततः उपन्यास जीवन का विशद चित्रण है। पात्रों के अस्तित्व की विविधरूपी चमक देकर उपन्यासकार एक ओर तो मानव चरित्र को व्यक्त करता है और दूसरी ओर युगीन प्रवृत्तियों का चित्रण करते हुए हमें कुछ सोचने पर विवश कर देता है।

भारत में विदेशियों के आगमन पर धर्म और समाज तथा राजनीति के क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन हुए। मुसलमान शासक-काल में दो संस्कृतियों समान्तर दृष्टिगोचर होती हैं, जिनमें टकराव भी हुआ और समन्वय भी। मुसलमानों के पश्चात अंग्रेजों के भारत में आने पर तीन संस्कृतियों का भारतीय जन-जीवन पर प्रभाव पड़ा जो भारतीयों के खान-पान, रहन-सहन, बोल-चाल, वस्त्राभूषण, वैवाहिक सम्बन्ध तथा अन्य व्यक्तिगत तथा सामाजिक व्यवस्था पर स्पष्ट दृष्टिगोचर हुआ। अंग्रेजी के माध्यम से यूरोपियन विद्वानों के मानव-जीवन सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी भारतीय लेखकों तथा विद्वानों के समक्ष आए और उन्होंने हमारी साहित्यिक सृष्टि को प्रभावित किया।

हिन्दी उपन्यासों में प्राचीन एवं नवीन मान्यताओं का समावेश समान रूप में उपलब्ध है। उपन्यासों के पात्र दोनों प्रकार की भावनाओं से प्रभावित हैं और लेखकों के लाख प्रयत्न करने पर भी प्राचीनता में नवीनता और नवीनता में प्राचीनता उभर आती है।

आधुनिक युगीन सोच का चिन्तन भिन्न एवं विशेष महत्वपूर्ण है। प्राचीन एवं नवीन दोनों युग की प्रवृत्ति पर समान रूप से दृष्टिपात करने पर उपन्यास का यही रूप परिलक्षित होता है।

२.२ हिन्दी की औपन्यासिक परम्परा

साहित्य के आधुनिक रूपों में उपन्यास अपेक्षाकृत नवीन विधा है। बाह्य-जीवन की वास्तविकताओं को समग्र रूप में चित्रित करने वाला यह एक ऐसा साहित्य-रूप है, जो अपनी पूर्व की कई साहित्यिक परम्पराओं को आत्मसात् करते हुए भी अभिनव आकर्षण के साथ प्रकट हुआ। कविता और उपन्यास का जन्म आधुनिक काल के यथार्थवादी परिवेश में हुआ है। उपन्यास पूंजीवादी सभ्यता की देन है। पूंजीवादी सभ्यता के विविध जीवनसत्त्वों को कथा के माध्यम से व्यक्त करने के लिये ही इसकी उत्पत्ति हुई है।”^१

संस्कृत के लक्षण-ग्रंथों में नाटक की प्रतिमुख सन्धि के एक भेद-विशेष का नाम भी ‘उपन्यास’ बताया गया है। अतः व्यूत्पत्ति की दृष्टि से ‘उपन्यास’ शब्द का अर्थ केवल सम्मुख प्रस्तुत करना या होना ही है। इतना तय है कि यह शब्द हिन्दी में संस्कृत से सीधा नहीं आया, साहित्य-रूप के अर्थ में इसका प्रयोग सबसे पहले बंगला में हुआ और जिस प्रकार से हिन्दी में इस साहित्यविद्या के उद्भव के पीछे बंगला की प्रेरणा निर्विवाद रूप से रही है वैसे ही इस नामकरण के पीछे भी रही होगी - यह अनुमान सहज ही किया जा सकता है।”^२ ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिन्दी में ‘उपन्यास’ शब्द का आधुनिक अर्थ में प्रयोग सर्वप्रथम सन् १७८१ ई. में एक कथा पुस्तक के शीर्षक रूप में ‘मनोहर उपन्यास’ के नाम से हुआ। उपन्यास, संक्षेप में, वह कल्पनात्मक गद्य-साहित्य-रूप है जिसमें वास्तविक जीवन का प्रतिनिधान करने वाले चरित्रों एवं व्यापारों को कार्य-कारण-शृंखलाबद्ध एक अपेक्षाकृत विस्तृत कथानक के द्वारा निरूपित किया जाये और मानव-जीवन के सत्य की रसात्मक अभिव्यक्ति का प्रयत्न किया जाय।

उपन्यास-साहित्य का विकास सबसे पहले यूरोप में माना जाता है, हिन्दी उपन्यास की तुलना में यूरोप में उपन्यास का जन्म १८ वीं शताब्दी में हो चुका था। अतएव अंग्रेजी साहित्य की प्रेरणा से बंगाली में मौलिक उपन्यास की सृष्टि हुई। इसी कारण हिन्दी में भी बंगला उपन्यास साहित्य की देखा-देखी उपन्यास साहित्य का सृजन होने लगा था।”^३

प्राचीन भारत में उपन्यास जैसी किसी विधा का प्रचार ही नहीं रहा। संस्कृत गद्य में लिखे गये पंचतन्त्र, हितोपदेश, बैताल पंचविशति, वृहत्कथा-मंजरी, वासवदत्ता, कादम्बरी और दशकुमार चरित में हमें क्रमशः औपन्यासिकता का विकास मिलता है। पंचतन्त्र और हितोपदेश में पशुपक्षियों का इतिवृत्त है, बैताल-पंचविशति और वृहत्कथा-मंजरी में मानवीय घटनाओं का वर्णन है; किन्तु उनमें अस्वाभाविकता आ गई है, इसलिए आधुनिक उपन्यास से इनमें बहुत अन्तर है। कुछ विद्वानों ने ‘कादम्बरी’ को भारत का पहला उपन्यास माना है, यहाँ तक कि मराठी साहित्य में ‘उपन्यास’ का पर्यायवाची ही ‘कादम्बरी’ है, किन्तु हमारे विचार से यह ठीक नहीं। ‘कादम्बरी’ में अलौकिकता, भावात्मकता एवं आलंकारिता का आग्रह इतना अधिक है कि उसे उपन्यास कहना ‘उपन्यास’ शब्द के साथ अन्याय होगा वस्तुतः मानवीय चरित्र के स्वाभाविक चित्रण, मनोवैज्ञानिक तथ्यों के उद्घाटन, यथार्थवादी दृष्टिकोण एवं शैली की स्वाभाविकता की दृष्टि से ‘दशकुमार-चरित’ को हम भारत का पहला सफल उपन्यास कह सकते हैं।

संस्कृत के कथा-साहित्य का प्रचार अरब, इराक तथा यूरोप के अनेक प्रदेशों में होता हुआ ठेठ यूनान तक हो गया। संस्कृत की अनेक कथाओं का अनुवाद मध्य एशिया और यूरोप की विभिन्न भाषाओं में हुआ, जिनके आधार पर अनेक पाश्चात्य विद्वान यूरोप के रोमांटिक कथा-साहित्य का मूल उद्भव भारतवर्ष के कथा साहित्य को मानते हैं। जिस प्रकार भारत से भेजी हुई रूई और ऊन को यूरोप वाले कपड़े के बढिया थानों में परिवर्तित करके लौटाते रहे हैं, कुछ वैसे ही भारत का प्राचीन कथा-साहित्य यूरोप के रोमांटिक कथा-साहित्य एवं उपन्यास का रूप धारण करके लौटा।”^४

उपन्यास का उद्भव यूरोप में रोमांटिक कथा साहित्य से हुआ जो मूलतः भारतीय प्रेमाख्यानों से प्रेरित था। रोमांटिक का अर्थ है जिसमें प्रेम और साहस का निरूपण हो। संस्कृत के 'वासवदत्ता', 'कादम्बरी' और 'दशकुमार-चरित' में प्रेम, साहस और धैर्य का ही चित्रण किया गया है। इस युग के भारतीय कथा-साहित्य में इन सत्त्वों की इतनी प्रधानता थी कि आचार्य रूद्रट ने कथा-साहित्य के लक्षण निर्धारित करते समय प्रेम और साहस को उसका आवश्यक लक्षण माना है। यूरोप में रोमांटिक उपन्यासों का प्रचार सर्वप्रथम इटली में माना जाता है। चौदहवीं शताब्दी के मध्य में इटली के लेखक बोकेशियो ने 'डी केमरान' की रचना की, जो व्यंग्य और विनोद से ओत-प्रोत थी। सत्रहवीं शती में स्पेन के लेखक सरवन्ते ने 'डान क्विकजोट' की रचना की। आगे चलकर फ्रान्स में रोमानी और यथार्थवादी कथा-साहित्य की बहुत उन्नति हुई।''^५

सत्रहवीं-अठारहवीं शती में इंग्लैंड में अनेक महत्वपूर्ण उपन्यासों की रचना हुई, जैसे-सिडनी कृत 'आर्केडिया', बुनियन का 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस', डेनियल का 'राबिन्सन क्रूसो' आदि। आगे इंग्लैंड, फ्रान्स, जर्मन, रूस में अनेक उच्च कोटि के उपन्यासों की रचनाएँ हुई, जिनमें सेम्युअल रिचर्ड्सन का 'पामेला' हैनरी फील्डिंग का 'टाम जोन्स' जार्ज इलियट का 'एडम बीड' आदि इंग्लैंड में प्रकाशित हुए।''^६

१८ वीं शताब्दी के अन्त तक यूरोप के विभिन्न भागों में उपन्यास साहित्य का पर्याप्त विकास हो चुका था, लेकिन हिन्दी साहित्य में इसका आविर्भाव उन्नीसवीं शती के अन्तिम भाग में हुआ। आधुनिक युगीन भारतीय साहित्य में उपन्यासों का विकास अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क में हुआ, इसलिए जिन भाषा भाषियों का अंग्रेजी से अधिक सम्पर्क था, उनमें उपन्यासों का प्रचार पहले होना स्वाभाविक था। यही कारण था कि बंगाल में उपन्यासों की रचना हिन्दी से पूर्व आरम्भ हो गई थी। बंगला के अनेक उपन्यासकारों-बंकिमचन्द्र, शरत्बाबू, रवीन्द्र आदि का हिन्दी उपन्यास साहित्य पर अधिक प्रभाव पड़ा। हिन्दी-उपन्यासों के उद्भव और विकास के सम्बन्ध में सम्यक्

धारणा बनाने के लिए प्रारम्भ से आज तक के तीन युग-भागों में विभाजित करके देखना उचित होगा।

२.२.१ प्रेमचंद, पूर्व हिन्दी उपन्यास

प्रेमचन्द ने उपन्यास के क्षेत्र में एक युग स्थापित किया और इस युग के कथा साहित्य को पर्याप्त प्रभावित भी किया। अतः प्रेमचन्द के पूर्व के उपन्यासों को पूर्व-प्रेमचन्द उपन्यास कहना केवल काल का नहीं, बल्कि विकास के सोपान का और उस सोपान की कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियों का परिचायक है। हिन्दी उपन्यास का यह प्रारम्भिक युग प्रयोग का युग था। प्रयोग के माध्यम से कोई भी साहित्य-विधा अपनी उपयुक्त भूमि का सन्धान करने में प्रवृत्त होती है और अपनी सहज भूमि को पाकर ही उसके आन्तरिक सौष्ठव का प्रस्फुटन होता है।”^७

आधुनिक काल में साहित्य के विकास की ओर निगाहे फेरने वाले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की दृष्टि उपन्यास-साहित्य पर भी पड़ी। उन्होंने ‘पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा’ नामक एक उपन्यास का अनुवाद किया तथा एक मौलिक उपन्यास की भी रचना आरम्भ की जो दुर्भाग्य से पूरा नहीं हो सका। हिन्दी में पहला मौलिक उपन्यास ‘परीक्षा गुरु’ भारतेन्दु के जीवन काल सन् १८८२ में प्रकाशित हो गया था, जिसकी रचना का श्रेय लाला श्रीनिवासदास को है। इसके ढाँचे से पता चलता है कि इसकी रचना बंगला उपन्यासों के आधार पर न होकर सीधे अंग्रेजी के उपन्यासों की प्रेरणा से हुई। ‘परीक्षा-गुरु’ में दिल्ली के एक सेठ-पुत्र की कहानी है, जो कुसंगति में पड़ गया था जिसका उद्धार अन्त में एक सज्जन मित्र द्वारा हुआ है। लेखक में उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति अधिक होने के कारण यह रचना एक सफल उपन्यास का रूप धारण नहीं कर सकी।”^८

भारतेन्दु-युग के अन्य कथाकारों ने भी उपन्यासों की सृष्टि की, जिनमें श्रद्धाराम फिल्लौरी कृत ‘भाग्यवती’, रत्नचन्द्र का ‘नूतन चरित्र’, बालकृष्ण भट्ट का ‘नूतन ब्रह्मचारी’ और ‘सौ अजान एक सुजान’, राधाकृष्णदास का ‘निस्सहाय-हिन्दू’, रामचरण गोस्वामी का ‘विधवाविपत्ति’,

कार्तिकप्रसाद खत्री का 'जया' बालमुकुन्द गुप्त का 'कामिनी' आदि। लज्जाराम शर्मा का 'धूर्त रसिकलाल' और स्वतन्त्र रमा और पर-तन्त्र लक्ष्मी तथा किशोरीलाल गोस्वामी का त्रिवेणी वा सौभाग्य-श्रेणी विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इन सभी उपन्यासों का बिंदु समाज की कुरीतियों को सामने लाकर उनका विरोध करना और आदर्श परिवार एवं समाज की रचना का सन्देश देना है। वे सभी उपन्यास आशय से लिखे गये हैं और लेखकों ने प्रारंभ में ही अपना आशय प्रकट कर दिया है। सामाजिक उपन्यासों की तुलना में इस युग में ऐतिहासिक उपन्यास बहुत कम लिखे गये। इस क्षेत्र में किशोरीलाल गोस्वामी का नाम उचित है, किन्तु उनके 'लवंगलता' उपन्यास को ऐतिहासिक उपन्यास की मर्यादा देना योग्य नहीं है।

भारतेन्दु युग में जासूसी उपन्यासों में गोपालराम गहमरी का 'अद्भूत लाश' और 'गुप्तचर' उल्लेखनीय है। जासूसी उपन्यासों में भी घटनाएँ रहस्य-रंजित होती थी, किन्तु उन्हें अधिक से अधिक सफल बनाने का प्रयास किया जाता था। इस युग में रोमानी उपन्यासों में ठाकुर जगमोहनसिंह का 'श्यामा स्वप्न' उल्लेखनीय है। इसमें श्यामा और श्यामसुन्दर की प्रेमकथा का स्वच्छन्द शैली में चित्रण हुआ है।^६

उपन्यासों में सबसे महत्वपूर्ण एवं मजबूत धारा उन सामाजिक उपन्यासों की है जिनका श्रीगणेश 'परीक्षागुरु' से हुआ था। अन्य उपन्यासों का महत्व इतना ही है कि उनसे सामान्य जनता में हिन्दी की लोकप्रियता बढ़ी। इस युग के सर्वप्रधान उपन्यास-लेखक किशोरीलाल गोस्वामी माने गये हैं। गोस्वामी जी ने मानवीय प्रेम के विविध पक्षों के उद्घाटन में ही अपनी शक्ति का अपव्यय किया। इस युग में जीवन के यथार्थ को कला में ढालनेवाले उपन्यासों की रचना नहीं हुई।

प्रेमचंद पूर्व या आलोचना युग में बंगला और अंगरेजी से उपन्यासों के अनुवाद की ओर भी सही ध्यान दिया गया। सर्वाधिक अनुवाद बंगला भाषा से किये गये। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बंगला-साहित्य में बंकिमचन्द्र चटर्जी, रमेशचन्द्र दत्त, तारकनाथ गांगुली और दामोदर मुकर्जी के

उपन्यास बहुत लोकप्रिय हुए थे।^{१०} इस युग में जासूसी उपन्यास को लेकर गोपालराम गहमरी सामने आये। गहमरी अंगरेजी के प्रसिद्ध उपन्यासकार आर्थर कानन डायल से प्रभावित थे - उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'ए स्टडी इन-स्कारलेट' को उन्होंने 'गोविन्दराम' शीर्षक से हिन्दी में रूपान्तरित भी किया। गहमरी के अलावा रामलाल वर्मा, किशोरीलाल गोस्वामी और जयरामदास गुप्त ने भी इस युग में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

इस युग में घटनाप्रधान उपन्यासों की रचना तिलस्म और जासूसी उपन्यासों से भिन्न तकनीक की जाती थी। इनमें इसी लोक के किसी रहस्यमय कोने का उद्घाटन किया जाता था। प्रस्तुत युग के ऐतिहासिक उपन्यास मुस्लिम काल के इतिहास से सामग्री लेकर लिखे गये, किन्तु उनमें इतिहास-तत्त्व की कमी है। लेखकों ने इतिहास की ऐसी घटनाओं का चयन किया है, जो पाठकों के कुतूहल एवं रहस्य-रोमांच-वृत्ति को पोषित कर सकें।

इस युग के सबसे प्रभावी उपन्यासकार किशोरीलाल गोस्वामी हैं। उपन्यास-रचना में इनका उद्देश्य प्रेम का विज्ञान प्रस्तुत करना था। इसलिए इनके द्वारा रचित उपन्यासों के कथानक प्रेम की विविधता एवं रहस्यमयता के इर्दगिर्द घूमते रहते हैं।^{११} अयोध्यासिंह उपाध्याय में उपन्यास-लेखन की प्रतिभा नहीं थी। इनके 'अधखिला फूल' में धार्मिक अन्धविश्वासों का कुपरिणाम दिखाया गया है। 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' इनकी अपेक्षाकृत प्रसिद्ध रचना है, किन्तु इसमें कथाविन्यास की अपेक्षा भाषा के विशिष्ट प्रयोग पर ही लेखक की निगाहें अधिक रही है। इस युग की अन्य रचनाओं में मन्नन द्विवेदी का 'रामलाल' में ग्रामीण जीवन का सजीव और यथार्थ चित्रण मिलता है तथा इस युग में कई उपन्यास लेखकों ने भावात्मकता की भी लहर दौड़ाई है।^{१२}

भारतेन्दु युग में, सामाजिक उपन्यासों में सुधारवादी जीवन-दृष्टि ही प्रधान है। किशोरीलाल गोस्वामी, लज्जाराम शर्मा और गंगाप्रसाद गुप्त सनातन धर्म के समर्थक थे। आर्य समाज के नवीन सुधारवादी आन्दोलन के विरुद्ध होते हुए भी ये सती-साध्वी देवियों के आदर्श प्रेम के साथ ही अवैध प्रेम, विधवाओं के व्यभिचार, वेश्याओं के कृत्स्न जीवन और

देवदासियों के विलास-लीला का भी चित्रण किया है। उनका उद्देश्य कृत्सित जीवन के दृष्परिणाम दिखाकर लोगों को उच्च नैतिक अस्तित्व प्रदान करना था। इस प्रकार भारतेन्दु युग में कम रफतार के साथ उपन्यास का विकास हुआ।”^{१३}

भारतेन्दु-युगीन उपन्यास परम्परा महत्वपूर्ण रही, जिसने आगे जाकर प्रेमचन्द की उपन्यास रचना के लिए नींव प्रस्तुत की, उसमें सामाजिक उपन्यास अधिक रहे। सामाजिक उपन्यासों का बिन्दु समाज-सुधार था। प्रेमचन्द भी इसी आशय से प्रेरित थे। उनके ‘प्रेमा’, ‘रूठी रानी’ और ‘सेवासदन’ उपन्यास इस युग में प्रकाशित हुए। इन उपन्यासों में समाज-सुधार की प्रवृत्ति प्रधान है।

भारतेन्दु युग के अंत में मुंशी प्रेमचंद का महत्व इस बात से है कि उन्होंने प्रेम-सभर राग-रंग और रहस्य-केलि के चटकीले चित्रों के स्थान पर सुखचिपूर्ण प्रसंगों की उद्भावना पर बल दिया। उन्होंने घटना के स्थान पर चरित्र को प्रस्तुत करने का प्रयास किया, जीवन की वास्तविकता समस्याओं को केन्द्र में रखा और कथा-प्रसंगों को मध्य वर्ग के जीवन-प्रवाह के साथ बांध दिया।”^{१४} प्रेमचन्द अंगरेजी उपन्यासकारों की रचना से परिचित थे और उन्होंने ठीक समय पर हिन्दी उपन्यास को एक नयी दिशा प्रदान की। इस युग के सभी उपन्यासकारों ने मिलकर उपन्यास साहित्य का यथार्थ विकास किया है।

*** प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यासों की विशेषताएँ :**

- (१) इस युग में अनुदित उपन्यासों की ही प्रधानता अधिक रही है।
- (२) भारतेन्दु-युगीन मौलिक उपन्यासों में भी कला विकास दृष्टिगोचर नहीं होता।
- (३) भारतेन्दुयुगीन मौलिक उपन्यासों पर संस्कृत के कथा-साहित्य एवं नाट्य-साहित्य का प्रभाव अधिक रहा है।

- (४) इस युग के उपन्यासों में घटनाओं की प्रधानता, चरित्र-चित्रण का अभाव, उपदेशात्मकता की भरमार एवं शैली की दुर्बलता दृष्टिगोचर होती है।
- (५) सामाजिकता के साथ-साथ कामुकता और विलासिता का भी चित्रण अधिक हुआ है।
- (६) इस युग के उपन्यास में उद्देश्य की दृष्टि से मनोरंजन और साथ ही सुधारवादी भावना परिलक्षित होती है।
- (७) चकित कर देनेवाली घटनाओं का जाल इस युग के उपन्यासों में बिछा रहता है।
- (८) इस युग में राष्ट्रीय और सामाजिक जागृति की चेतना हम उपन्यासों में देखते हैं।
- (९) इस युग के उपन्यासों में नारी विषयक समस्या, शराबखोरी, उसके दुष्परिणाम, सदाचार और सद्गति, हिन्दुओं की असहायता, गोवध आदि विषय स्वीकार किये गये हैं।
- (१०) इस युग में जासूसी और तिलस्मी, ऐयारी के बड़े विचित्र करिश्में दिखायी पड़ते हैं।
- (११) इस युग में ऐतिहासिक उपन्यासों का भी प्रणयन अधिक मात्रा में हुआ है।
- (१२) इस युग के उपन्यासों में इतिहास और कल्पना समन्वय अद्भूत दिखाय देता है।
- (१३) इस युग में आख्यायिका-शैली के उपन्यास भी प्रस्तुत हुए हैं।
- (१४) भारतेन्दुयुगीन उपन्यासों का बिंदु समाज की कुरीतियों को सामने लाकर उनका विरोध करना और आदर्श परिवार एवं समाज की रचना का बोध देना है।

- (१५) इस युग के लेखकों ने अपने उपन्यासों में स्वच्छन्द शैली का भी प्रयोग किया है।
- (१६) इस युग का उपन्यास इतना महत्वपूर्ण रहा कि सामान्य जनता में हिन्दी की लोकप्रियता बढ़ी।
- (१७) भारतेन्दु-युगीन उपन्यास-धारा में हम जीवन के यथार्थ की बातें कम देखते हैं।
- (१८) इस युग के उपन्यासों में हम कुतूहल, रहस्य, रोमांच और उनके जरिए मनोरंजन अधिक देखते हैं।
- (१९) इस युग के कई उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का सजीव और यथार्थ चित्रण मिलता है।
- (२०) आलोच्यकालीन सामाजिक उपन्यासों में सुधारवादी जीवनदृष्टि ही प्रधान रही है।
- (२१) इस युग के उपन्यासों में आदर्श प्रेम के साथ-साथ अवैध-प्रेम का चित्रण भी है।
- (२२) इस युग के उपन्यासों में लेखकों ने जीवन की वास्तविक समस्याओं को केन्द्र में रखा है।

२.२.१.१ हिन्दी का सर्वप्रथम उपन्यास : विभिन्न मत

हिन्दी गद्य का प्रवर्तन करने वालों में चार नाम प्रमुख हैं। लल्लूजीलाल, सदल मिश्र, सदा सुखलाल और इंशाअल्लाखाँ। इनके ग्रंथों में, कथा कहानियों की मात्रा है।”^{१५} कुछ समीक्षक इंशा अल्लाखाँ कृत ‘रानी केतकी की कहानी को हिन्दी का सर्वप्रथम उपन्यास स्वीकारते हैं, जबकि उपन्यास कला की दृष्टि से इस छोटी सी कहानी का कोई महत्व नहीं है, फिर भी सर्वप्रथम प्रारम्भिक रचना होने के नाते इसका ऐतिहासिक महत्व अवश्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी कृत ‘भाग्यवती’ उपन्यास की बात की है। यह सन् १८७७ में प्रकाशित हुआ था। शुक्लजी ने इस उपन्यास की सराहना भी की है, परन्तु मालूम नहीं, क्यों, इसको हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास नहीं माना है।”^{१६}

आचार्य रामचंद्र शुक्ल कथावस्तु और वर्णन प्रणाली की दृष्टि से लाला श्रीनिवासदास कृत 'परीक्षागुरु' (सन् १८८२ ई) को हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास मानते हैं। इसके पूर्व के सदानन्द मिश्र और शंभुनाथ मिश्र द्वारा संपादित जिस 'मनोहर' उपन्यास (१८७१ ई) का उल्लेख डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने किया है। विजयशंकर मल्ल ने श्री फूल्लौरीजी के 'भाग्यवती' को हिन्दी का पहला उपन्यास घोषित किया है।''^{१७}

हिन्दी के प्रथम उपन्यासकार थे पंडित किशोरीलाल गोस्वामी को ही स्वीकार करते हैं जो लाला श्रीनिवासदास के परवर्ती उपन्यासकार हैं। इस विषय में शुक्लजी का मत है - कि - आप लिखते हैं - "और लोगों ने भी उपन्यास लिखे पर वे वास्तव में उपन्यासकार नहीं थे। और चीजे लिखते-लिखते वे उपन्यास की ओर आ गये हैं। शुक्लजी ने 'भाग्यवती' को हिन्दी के पहले उपन्यास के रूप में स्वीकृति देकर भी बाद में 'परीक्षा-गुरु' को अंग्रेजी ढंग का पहला मौलिक उपन्यास माना।''^{१८}

आजकल 'परीक्षा गुरु' ही सर्व सम्मति से हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास माना जाता है। उपन्यास के आधुनिक अर्थ में ही यही पहला उपन्यास था, जिसमें हमें सर्वप्रथम सामाजिक जीवन को चित्रित करने का प्रयास मिलता है।''^{१९}

'परीक्षा गुरु' से पूर्व भारतेन्दुजी ने भी 'हम्मीर हठ' नामक उपन्यास लिखना आरम्भ किया था जो पूर्ण न हो सका। परन्तु शुक्लजी ने पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी के 'भाग्यवती' नामक एक उपन्यास का उल्लेख किया है, जो 'परीक्षा गुरु' से पाँच साल पहले सन् १८७७ में प्रकाशित हुआ था। यह एक शिक्षाप्रद उपन्यास था। इसकी कथा सुगठित, सोदेश्य, स्वाभाविक, गतिशील और सुन्दर है। फिर भी न मालूम शुक्लजी ने इसे हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास क्यों नहीं माना ? हमारी तो यह मान्यता है कि 'भाग्यवती' को ही हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास मानना चाहिए न कि उसके पाँच वर्ष बाद प्रकाशित 'परीक्षा गुरु' को। क्योंकि 'भाग्यवती' एक ऐसा सामाजिक उपन्यास है जिसमें उपन्यास की तमाम विशेषताएँ उपलब्ध हैं।''^{२०}

डॉ. श्री कृष्णलाल हिन्दी उपन्यास के क्रमिक विकास का मूल 'तोता मैना' 'सारंग' जैसी कहानियों में खोजते हैं। उनके अनुसार ये कहानियाँ सन् १७६० के लगभग लिपिबद्ध हुई होंगी। इनमें से किसी व्यक्ति विशेष का वर्णन न होकर केवल एक मौखिक वाद विवाद है किन्तु 'गुलाब कावली' 'छबीली मटियारिन' और 'हातिम- ताई' में व्यक्ति विशेष के दर्शन होते हैं जिनमें मानक चरित्र के कारण और सामान्य गुणों का समावेश मिलता है किन्तु इन उपन्यासों के रहते हुए भी देवकीनन्दन खत्री के 'चन्द्रकान्ता' (सन् १८६१) से पहले हिन्दी में उपन्यास के साहित्यिक रूप की स्थापना न हो सकी।''^{२१}

किशोरीलाल गोस्वामी 'चन्द्रकान्ता' से भी पूर्व सन् १८८६ ई. में 'कुसुम कुमारी' की रचना कर चुके थे परन्तु उसका प्रकाशन १९०१ से पहले न हो सका था। इस प्रकार डॉ. श्री कृष्णलाल खत्री को ही हिन्दी में उपन्यास के साहित्यिक रूप की प्रतिष्ठा करने वाले मानते हैं। परन्तु उनके पूर्व भारतेन्दुकाल में भी अनेक उपन्यास लिखे गये थे जिन के द्वारा उपन्यास के साहित्यिक स्वरूप का श्री गणेश हो गया था। लालाश्रीनिवासदास के उपरान्त ठाकुर जगमोहन सिंह ने काव्य गुणों से परिपूर्ण 'श्यामास्वप्न' नामक उपन्यास लिखा। इसमें उपन्यास की वास्तविकता के स्थान पर काव्य सौन्दर्य ही अधिक है। इसी समय अद्भूत और विस्मयजनक घटनाओं से परिपूर्ण 'आश्चर्य-वृत्तान्त' नामक उपन्यास पं. अम्बिकादत्त व्यास ने लिखा। यह साधारण कोटि का परन्तु मनोरंजक उपन्यास है।''^{२२} इन सभी उपन्यासकारों ने अपनी-अपनी दृष्टि से अपने उपन्यास को सर्वप्रथम मौलिक प्रस्तुत किया है।

२.२.१.२ अनूदित, मौलिक एवं सामाजिक उपन्यास

भारतेन्दु-युग में कुछ मौलिक उपन्यासों के अलावा अनुवाद का कार्य भी आरम्भ हुआ। ये अनुवाद बंगला और अंग्रेजी उपन्यासों से किये गये। अनुवादों का आरम्भ भारतेन्दु ने 'पूर्ण-प्रकाश' और 'चन्द्रप्रभा' नामक उपन्यासों से किया। तत्पश्चात् बाबू गजाधर सिंह ने बंग विजेता, दुर्गेश नन्दिनी तथा बाबू राधाकृष्णदास ने 'स्वर्णलता' और 'मरता क्या न करता'

आदि अनूदित उपन्यास लिखे। राधाचरण गोस्वामी ने ‘सावित्री, विरजा, मृण्मयी’ का तथा प्रतापनारायण मिश्र ने राजसिंह, इन्द्रा, युगलागुरीय और राधारानी के अनुवाद किये।”^{२३}

इन रचनाओं के अलावा रामकृष्ण वर्मा ने ‘चितौर चातकी’, कार्तिकप्रसाद खत्री ने ‘इला’, ‘प्रमीला’, ‘जया’ तथा मधुमालती एवं गोपालराम गहमरी ने ‘चतुर चंचला’ ‘भानुमती’ और ‘नये बाबू’ अनूदित उपन्यास की रचना की। पूरोहित गोपीनाथ ने वीरेन्द्र शीर्षक से एक वीररसयुक्त, किन्तु शृंगाररस-प्रधान उपन्यास को किसी अंगरेजी उपन्यास के छाया अनुवाद के रूप में प्रस्तुत किया। इसी प्रकार गोपालराम गहमरी ने किसी विलायती कहानी का निचोड़ लेकर ‘गुप्तचर उपन्यास’ लिखा। उर्दू से अनूदित उपन्यासों में रामकृष्ण वर्मा का ‘संसार दर्पण’ ‘अमला वृत्तान्तमाला’ ठग वृत्तान्तमाला और पुलिस वृत्तान्त माला उपन्यास लिखा।”^{२४}

इन उपन्यासों में भाषा का स्वरूप तो उपलब्ध होता है पर वृत्त तथ्यहीन है। इन अनुवादों द्वारा एक लाभ यह हुआ कि हिन्दी पाठक को नये ढंग के सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासों का परिचय मिल गया। इससे मौलिक उपन्यास लेखन की प्रवृत्ति और योग्यता की स्थापना हुई।

✳ अनूदित उपन्यास : विकास के पथ पर

विकास के इस युग में अनुवाद भी अधिक हुए और मौलिक उपन्यास भी खूब लिखे गये। प्रथम युग के अन्तिम चरण के अनुवादों का क्रम द्वितीय युग में अधिक विकसित हुआ। रोचक मौलिक उपन्यास कुछ काल बाद ही लिखे गये। विकास की यह अवस्था रामकृष्ण वर्मा, कार्तिक प्रसाद खत्री और गोपालराम गहमरी के अनुवादों से प्रारम्भ होती है। वर्मा जी ने ठग वृत्तान्तमाला, अकबर, अमला वृत्तान्तमाला, चितौर चातकी का खत्री जी ने ‘इला’ और प्रमीला का तथा गहमरीजी ने ‘चतुर चंचला’ भानुमती, नये बाबू अन्य उपन्यासों के अनुवाद किये।”^{२५}

ऐतिहासिक अनूदित उपन्यास में उदित नारायण लाल का ‘दीप निर्वाण, रामचन्द्र वर्मा का छत्रसाल और गोस्वामी का तारा’ आदि

उल्लेखनीय है। इस काल में बंगला के सभी प्रसिद्ध उपन्यासकारों- बंकिमचन्द्र, रमेशचन्द्र दत्त, तारकनाथ, शरदबाबू, चारुचन्द्र आदि के नामचीन उपन्यासों के अनुवाद हुए। रवीन्द्रनाथ के आँख की किरकिरी आदि उपन्यासों का अनुवाद भी इसी युग में हो गया। इस अनुवाद कार्य में योग देने वाले अनुवादकों में पंडित ईश्वरी प्रसाद शर्मा और पं. नारायण पांडेय विशेष उल्लेखनीय हैं।

बंगला के अलावा मराठी, गुजराती के भी कई उपन्यासों का अनुवाद हुआ। इसी समय अंग्रेजी में लन्दन रहस्य तथा टामकाका की कुटिया नामक उपन्यास अनूदित हुए। गंगा प्रसाद गुप्त ने उर्दू से पूना में हलचल तथा हरिऔधजी ने अंग्रेजी से 'वेनिस का बाँका' नाम से अनुवाद किये। इन अनुवादों की भाषा प्रथम अवस्था के अनुवादों की अपेक्षा सजीव और संस्कृत थी। लिखने का ढंग भी रोचक था। इन अनुवादों ने हिन्दी के मौलिक उपन्यासकारों को प्रसिद्धि दिलायी, क्योंकि इनका स्तर हिन्दी के मौलिक उपन्यासों से आगे था।”^{२६}

❖ मौलिक उपन्यास

भारतेन्दु युग में सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास लिखने का प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भिक युग में अधिक मात्रा में मौलिक उपन्यास लिखे गये। शुक्ल जी के शब्दों में- “पहले मौलिक उपन्यास लेखक जिनके उपन्यासों की सर्वसाधारण में धूम हुई, काशी के बाबू देवकीनन्दन खत्री थे।” ये इन द्वितीय अवस्था से पूर्व ही ‘नरेन्द्र मोहिनी, कुसुम कुमारी, वीरेन्द्र वीर आदि कई उपन्यास लिख चुके थे। इस काल में आकर इन्होंने अपने प्रसिद्ध उपन्यास ‘चन्द्रकान्ता संतति, चन्द्रकान्ता तथा भूतनाथ की रचना की। इन उपन्यास में घटना वैचित्र्य की प्रधानता है रस संचार या चरित्र-चित्रण की नहीं। आचार्य शुक्ल घटना प्रधान रचनाओं को जिनमें जीवन के विविध पक्षों का चित्रण नहीं होता, साहित्य कोटि में नहीं मानते। “परन्तु हिन्दी गद्य के विकास की दृष्टि से खत्री जी के इन उपन्यासों का एक ऐतिहासिक महत्त्व है। कहा जाता है कि हिन्दी के जितने पाठक इन उपन्यासों ने उत्पन्न किये उतने और किसी ने भी नहीं किये। साथ ही इन्हें पढ़कर कितने नवयुवक हिन्दी के लेखक हो गये।”^{२७}

मुंशी प्रेमचन्द खत्रीजी के उपन्यासों तथा उसी प्रकार के अन्य ऐयारी और तिलस्मी घटना से परिपूर्ण उपन्यासों का बीजांकुर फारसी ग्रंथ 'तिलिस्म होशरूवा' से मानते हैं। इन उपन्यासों का प्रधान आशय केवल पाठकों का मनोरंजन करना रहा है। खत्रीजी इस आशय को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि- 'चन्द्रकांता में जो बातें लिखी गई हैं वे इसलिए नहीं कि लोग उनकी सच्चाई झुठ की कसौटी करें। अपने इस आशय में वे उपन्यास पूर्णतः सफल हुए हैं। यह कहना सही नहीं कि खत्री जी के उपन्यासों में चरित्र-चित्रण प्रभावी नहीं मिलता।

मौलिक उपन्यासों में खत्रीजी सबसे आगे रहे हैं। उनका भूतनाथ एक ऐसा मौलिक उपन्यास है जिसमें जीवन के सही और गलत दोनों हिस्सों का चित्रण मिलता है। खत्रीजी की इस परम्परा को आगे बढ़ाने वालों में गोपालराम गहमरी और बाबू हरिकृष्ण जौहर विशेष उल्लेखनीय हैं। गहमरीजी ने जासूस नामक पत्र निकालकर इस मौलिक परम्परा को आगे बढ़ाया।''^{२८}

गोपालराम गहमरी के उपन्यासों में कल्पना के साथ बुद्धि का भी योग है। लिखने का तरीका भी अपेक्षाकृत अधिक मनोरंजक है। वास्तव में गहमरीजी हिन्दी में जासूसी उपन्यासों की परम्परा की नींव रखने वाले हैं। इन्होंने सबसे अधिक उपन्यास लिखे हैं।''^{२९}

इस युग में दुसरे मौलिक उपन्यास लेखक के रूप में किशोरीलाल गोस्वामी का नाम लिया जाता है। इन्होंने ऐतिहासिक, समाजिक, ऐयारी तथा जासूसी उपन्यास लिखे। इनके 'तारा तरुण तपस्विनी, रजिया बेगम आदि उपन्यासों में साहित्यिकता के साथ-साथ सामाजिकता के भी दर्शन हुए। इनमें समाज के कुछ सजीव चित्र, आदर्श प्रेम, अवैध प्रेम का चित्रण भी अवश्य पाया जाता है।''^{३०}

किशोरीलाल गोस्वामी ने अपनी शैली द्वारा उपन्यासों में मौलिकता भरी है। गहमरी जी की तरह उन्होंने भी अधिक उपन्यास लिखे। विशेष रूप से इनके 'चपला' नामक उपन्यास के सम्बन्ध में इस बात को लेकर बहुत आलोचना हुई थी। साथ ही उन्होंने उपन्यास लेखन में भाषा की विभिन्न

शैलियों का प्रयोग किया। कभी संस्कृत शैली अपनायी और कभी उर्दू प्रधान शैली इस अस्थिरता के कारण वे भाषा का एक सुव्यवस्थित रूप स्थिर करने में असमर्थ रहे।

इस प्रकार खत्रीजी, गहमरी जी और किशोरलाल गोस्वामी मौलिक उपन्यास को लेकर भारतेन्दु युग के अन्तिम चरण तथा द्वितीय अवस्था के प्रथम चरण के प्रमुख उपन्यासकार हैं। इनके अलावा हरिऔधजी ने 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' नामक उपन्यास लिखकर अपनी मौलिकता सिद्ध की। इसी प्रकार लज्जाराम मेहता ने 'प्राचीन हिन्दू मर्यादा' हिन्दू पर्व और हिन्दू पारिवारिक व्यवस्था की सुन्दरता और यथार्थता दिखाने के लिये 'धूर्त रसिकलाल' हिन्दू गृहस्थ, आदर्श आदि छोटे बड़े कई उपन्यास लिखे। बाबू ब्रजनन्दन सहाय ने बंगला शैली में 'राधाकान्त' और 'सौन्दर्योपासक' नामक उपन्यास लिखकर हिन्दी में भावप्रधान मौलिक उपन्यास लिखने की परम्परा स्थापित की।''^{३१}

❖ सामाजिक उपन्यास

इस युग में राष्ट्रीय और सामाजिक जागृति की चेतना धीरे-धीरे विकसित होने लगी थी। सामाजिक जागरण का स्वर राजनैतिक जागरण के स्वर से कहीं अधिक स्पष्ट और उग्र था। इस युग के सामाजिक उपन्यासकारों में पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी 'भाग्यवती', लाला श्रीनिवास दास 'परिक्षागुरु', बालकृष्ण भट्ट 'नूतनब्रह्मचारी', सौ अजान एक सुजान, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'पूर्णप्रकाश और चन्द्रप्रभा', बाबू राधाकृष्णदास-कृत 'निस्सहाय हिन्दु' लज्जाराम शर्मा-कृत 'धूर्त रसिकलाल और 'स्वतन्त्र रमा और परतन्त्रलक्ष्मी तथा किशोरलाल गोस्वामी-कृत त्रिवेणी वा सौभाग्यश्रेणी', चन्द्रावली, तरुण तपस्विनी विशेष रूप से उल्लेखनीय है।''^{३२}

भारतेन्दु युग में इन सभी उपन्यासकारों ने महत्वपूर्ण सामाजिक उपन्यासों की रचना की। गोपालराम गहमरी ने भले ही अधिक जासूसी उपन्यास की रचना की परन्तु उन्होंने सास-पतोहू, बड़ा भाई, दो बहनें आदि महत्वपूर्ण सामाजिक उपन्यास हिन्दी साहित्य को अर्पण किया।

अयोध्यासिंह उपाध्याय ने भी ठेठ हिन्दी का ठाठ' शीर्षक सामाजिक उपन्यास लिखा। इन उपन्यासों में नारी विषयक समस्या, शराबखोरी, चाटुकारिता प्रियता और उसके गलत परिणाम, सदाचार और सात्विकवृत्ति, हिन्दुओं की असहायता, गोवध आदि विषय स्वीकार किये गये हैं।''^{३३}

सामाजिक उपन्यास, समाज के विभिन्न क्षेत्रों, स्त्री पुरुष के सम्बन्धों, परिवार, जाति, संप्रदाय, वर्ग, देश, अर्थदशा, रीति, धर्म, सभ्यता, संस्कृति आदि का चित्रण करते हुए उनके लक्ष्य तथा उनकी समस्याओं का निरूपण करता है। सामाजिक उपन्यास, सामाजिक जीवन प्रवाह तथा उसकी समस्याओं से बँधकर चलने के कारण कालावधि में गतिशील रहता है। सामाजिक उपन्यास समाज के गठन के अतिरिक्त, सामाजिक मूल्यों तथा सामाजिक समस्याओं की पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया का चित्रण करता है।

२.२.१.३ तिलस्मी व ऐयारी उपन्यास

‘तिलस्म’ शब्द यूनानी टेलेस्मा’ और अरबी ‘तिलस्म’ का हिन्दी संस्करण है। इसका अर्थ जादु इन्द्रजाल या अलौकिक रचना या गड़े हुए धन आदि के ऊपर बनायी गयी सर्पादि की भयावनी आकृति है। तिलस्मी और ऐयारी के बड़े विचित्र करिश्मे दिखायी पड़ते हैं।

भारतेन्दु-युग में तिलस्मी-ऐयारी उपन्यासों की रचना-परम्परा का विकास हुआ। यह परम्परा आगे चलकर द्विवेदी-युग में अधिक विकसित और पुष्ट हुई। तिलस्मी-ऐयारी उपन्यासों में देवकीनन्दन खत्री-कृत ‘चन्द्रकान्ता’ चन्द्रकान्ता सन्तति’, ‘नरेन्द्र मोहिनी’, ‘विरेन्द्र वीर’ और ‘कुसुमकुमारी’ तथा हरेकृष्ण जौहर-कृत ‘कुसुमलता’ उल्लेखनीय है।''^{३४}

तिलस्मी-ऐयारी उपन्यास सामान्य जनता में खूब लोकप्रिय हुए थे। इनसे रहस्य-रोमांचप्रिय सस्ती कल्पना को पृष्टि मिलती थी। प्रायः कोई सुन्दरी राजकुमारी किसी रहस्यमयी तिलस्मी इमारत में कैद हो जाती थी। उसका प्रेमी राजकुमार अपने हरफन मौला ऐयार की सहायता से तिलस्म तोड़कर उसका उद्धार करता था। तिलस्मी उपन्यासों में ‘चन्द्रकान्ता सन्तति’ की ऐसी धूम मची कि इसको पढ़ने के लिए न जाने कितने उर्दूजीवी लोगों ने

हिन्दी सीखी। तिलस्मी-ऐयारी उपन्यासों की परम्परा देवकीनन्दन खत्री द्वारा भारतेन्दु-युग में आरम्भ की गयी। आलोच्य युग में यह परम्परा जीवित रही। खत्रीजी के 'काजर की कोठरी', 'अनूठी बेगम', 'गुप्त गोदाना', 'भूतनाथ' - प्रथम छह भाग- आदि उपन्यास इसी युग में प्रकाशित हुए। खत्रीजी की परम्परा का निर्वाह हरेकृष्ण जौहर ने 'मयंकमोहिनी या मायामहल', 'कमलकुमारी', 'निराला नकाबपोश', 'भयानक खून' आदि तिलस्मी उपन्यासों की रचना द्वारा किया। किशोरीलाल गोस्वामी-कृत 'तिलस्मी शीशमहल और रामलाल वर्मा-कृत 'पुतली महल' भी इसी वर्ग की रचनाएँ हैं। आगे चलकर देवकीनन्दन खत्री के सुपुत्र दुर्गाप्रसाद खत्री ने 'भूतनाथ' के शेष भागों को लिखकर इस परम्परा को आगे बढ़ाया।

२.२.२ प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यास

इस काल में आकर हिन्दी उपन्यास साहित्य का अभूतपूर्व विकास हुआ। इसे हिन्दी उपन्यास के पूर्ण विकास या अभूतपूर्व विकास की अवस्था कह सकते हैं। प्रेमचंद का आविर्भाव इसी युग में हुआ और उन्होंने सामाजिक उपन्यास को चरमोत्कर्ष प्रदान किया। इस युग में समाज की मान्यताओं में अनेक बदलाव आये थे। इस युग के सामाजिक उपन्यास भी प्रभावित हुए। जासूसी तिलस्मी एवं ऐयारी उपन्यासों की परम्परा समाप्त हो गयी और उपन्यासों में समाज की व्यवस्था को स्थान मिला।

इस युग के प्रमुख उपन्यासकार प्रेमचंद हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में यथार्थ एवं आदर्श का सुखद समन्वय प्रस्तुत किया तथा प्रगतिशील दृष्टि को बल प्रदान किया। उन्होंने शोषित वर्ग का सजीव चित्रण किया तथा उनकी समस्याओं को वाणी प्रदान की। उन्होंने अपनी ग्रामवासिनी भारतमाता के ऐसे चित्र प्रस्तुत किये कि समाज को विस्मयजनक बातें विदित हुईं। उनके उपन्यास वस्तुतः गाँधी युग के सामाजिक इतिहास बन गये और जनता ने उन्हें भरपूर आदर प्रदान किया।

प्रेमचंद के उपन्यासों में प्रेमाश्रम, सेवासदन, कर्मभूमि, गबन, रंगभूमि तथा गोदान विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस युग में प्रेमचंद के

अलावा कई श्रेष्ठ उपन्यासकारों का आविर्भाव हुआ। इस युग में कुछ उच्चकोटि के राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत ऐसे जासूसी उपन्यास लिखे गये जिनका मूल स्वर, क्रान्तिकारी संगठन द्वारा देश को स्वतंत्र कराना था। बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री के उपन्यास लाल पंजा, सफेद शैतान, मृत्युकिरण आदि इसी प्रकार के उपन्यास हैं। ये उपन्यास हिन्दी साहित्य के सर्व श्रेष्ठ जासूसी उपन्यास कहे जा सकते हैं। पता नहीं क्यों, हिन्दी साहित्य के इतिहासों में इनका उल्लेख नहीं किया गया है।

सत्त्व यह है कि इस युग के उपन्यास एक नई युग चेतना को लेकर आगे बढ़े थे। सामाजिक दृष्टि से इन पर आर्य समाज की सुधारवादी विचारधारा का प्रभाव रहा। राजनीतिक दृष्टि से ये गाँधीवाद द्वारा प्रभावित रहे तथा इनकी सांस्कृतिक दृष्टि पर द्विवेदी युगीन सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना का प्रभाव रहा। समग्र रूप में इनका मूल स्वर राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति का रहा। इससे पूर्व उपन्यास क्षेत्र में विभिन्न परन्तु साधारण प्रयोग मात्र किये जा रहे थे। परन्तु प्रथम विश्वयुद्ध के लगभग हमारे साहित्यकार देश और समाज की समस्याओं के प्रति अधिक जागृत उठे। क्योंकि इस युद्ध ने एक ओर तो युद्ध की सहायतार्थ देश में नये-नये उद्योग धन्धे खड़े किये जिनसे व्यापारी वर्ग में समृद्धि आयी और दूसरी ओर उस समृद्धि ने देश के नागरिक जीवन में कई जटिलताएँ उत्पन्न कर दीं। सामाजिक सुधार और स्वतन्त्रता की भावनाएँ जोर पकड़ने लगी। देश की एक नई क्रान्तिकारी चेतना उभरने लगी।

हिन्दी उपन्यास-साहित्य के रंगमंच पर प्रेमचन्द का अवतरण एक युगान्तकारी घटना है। वे एक नयी दृष्टि लेकर अवतरित हुए-चमत्कारप्रियता, कुतूहल वृत्ति के परितोष और मूल्यहीन कल्पना के अभिभाव से मुक्त कर अधर में लटकते हुए हिन्दी-उपन्यासकार और पाठक को भूमि पर ले आये। इस नयी प्रतिभा का चतुर्दिक स्वागत हुआ। साहित्यकारों ने उन्हें 'उपन्यास सम्राट' की उपाधि से सम्मानित किया।

प्रेमचन्द-युग में सुधारवादी दृष्टिकोण को यथार्थ और कलात्मक भूमियों पर उतारा गया, जिससे वह अधिक स्वाभाविक, विश्वसनीय

और व्यापक स्वरूप धारण करता हुआ चला गया। प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में जहाँ समाज का यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत किया है, वहाँ दूसरी ओर उसे एक आदर्श से भी सम्बन्धित कर दिया है। उनके साहित्य में यथार्थ, आदर्श से मिलकर 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' बन गया। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के सम्बन्ध में उन्होंने खूद लिखा है "इसलिए वही उपन्यास उच्चकोटि के समझे जाते हैं जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया है। उसे आप 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' कह सकते हैं। आदर्श को सजीव बनाने के लिए यथार्थ का उपयोग होना चाहिए"^{३५} प्रेमचन्द को गहरी संवेदना और व्यापक सहानुभूति की आँच में तपकर कला एवं वस्तु-तत्त्व का सहज समन्वय हो गया है। मानव-जीवन के विविध पक्ष उनकी नैसर्गिक पर्यवेक्षण-शक्ति एवं समष्टिगत संवेदना से अपने सहज सौन्दर्य में निखर पड़े हैं।"^{३६}

प्रेमचन्द ने हिन्दी के सबसे पहले यथार्थवादी उपन्यासकार होकर भी यथार्थ को बहुत ही सही रूप में परखा। उनका यथार्थबोध न तो प्रकृतिवादियों की तरह मनुष्य को पाशव वृत्तियों का शिकार मात्र मानकर अश्लीलता और विकृत नग्नता के उद्घाटन में कृतकृत्यता अनुभव करता है, न वह मनोविश्लेषणशास्त्रीय की तरह व्यक्ति के एकान्त सत्य को चरम सत्य मानकर जन-जीवन निरपेक्ष साहित्य की रचना में प्रवृत्त होता है और न उग्र समाजवादियों की तरह व्यक्ति को सामाजिक जीवन की एक यांत्रिक इकाई मानकर सामाजिक जीवन को एक विशेष प्रकार की समाजवादी दृष्टि से प्रस्तुत करता है। प्रेमचन्द किसी भी वाद की एकांगिता से पीड़ित न होकर अपने पूरे युग और समाज को उसकी समस्त जटिल वास्तविकता के साथ पकड़ लेना चाहते थे।"^{३७}

प्रेमचन्द और तत्कालीन उपन्यासकार जयशंकर प्रसाद, निराला, कौशिक, जैनेन्द्र, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, श्रीनाथसिंह, सियाराम शरण गुप्त, भगवती प्रसाद बाजपेयी आदि ने सामाजिक समस्याओं को अपने उपन्यासों का विषय बनाया। इनमें नारी-समस्या, आर्थिक असमानता की समस्या आदि ऐसे प्रमुख विषय थे, जिन पर इन लेखकों की लेखनी खुलकर

चली है। 'सेवासदन' में ही दहेज प्रथा, घूसखोरी, अनमेल विवाह और पारिवारिक वैमनस्य आदि की समस्याएँ संग्रहित हैं। मध्यवर्गीय जीवन के चित्रण का आग्रह प्रेमचन्दकालीन प्रायः सभी उपन्यासकारों में है। इतना तय था कि वे आर्थिक पहलुओं के प्रति विद्रोही थे, इसलिए अधिक से अधिक समाज के इसी प्रश्न पर वे केन्द्रित भी होते दिखायी दिये हैं।

इस युग की अन्तिम और सशक्त रचना 'गोदान' है। गोदान में प्रेमचन्द की सम्पूर्ण साहित्यिक और वैयक्तिक उपलब्धियाँ अपने पूरे विश्वास के साथ व्यक्त हुई हैं। यह आधुनिक हिन्दी-साहित्य में वस्तु और शिल्प, विचार और विवेचन, यथार्थ और आदर्श तथा भाषा की दृष्टि से युगसन्धि स्थापित करनेवाली महान कलासृष्टि है। यह महाकाव्यात्मक उपन्यास प्रेमचन्द की ही नहीं, समस्त हिन्दी उपन्यास-साहित्य की अमूल्य धरोहर है। गोदान में समझौते का स्वप्न समाप्त हो गया है और विश्वासों की नीवें ढह गयी हैं। यहीं पर उपन्यास-साहित्य की विचार-भूमि की सन्धि-रेखा है जो पिछले युग में अधिक गहरी, व्यापक मूल्यनिष्ठ और क्रान्तिदर्शिनी है और जिसमें राजनीति तथा मनोविज्ञान की नई प्राप्ति को फैलाने वाला प्रकाश है।

इस युग के अन्तिम चरण में व्यक्तिवादी पाश्चात्य जीवन दर्शनों से प्रभावित उपन्यासों की रचना प्रारम्भ हो गयी थी। उसका विकास परवर्ती युग में हुआ।

मुंशी प्रेमचन्द १८८०-१९३६ के साहित्यिक अस्तित्व की, हिन्दी उपन्यास की भी एक महत्वपूर्ण घटना थी। 'सेवासदन' पूर्ववर्ती कथा-साहित्य का अभूतपूर्व विकास था - इसके पहले कथा-साहित्य में या तो अजीबोगरीब घटनाओं के द्वारा कुतूहल और चमत्कार की सृष्टि रहती थी अथवा आर्यसमाज और तत्समाज अन्य सामाजिक आन्दोलनों से प्रभावित समाज-सुधारों का प्रचार ही उसकी उपलब्धि रह गयी थी; जीवन की सही अभिव्यक्ति का साधन वह नहीं बन पाया था। वैसे प्रेमचन्द ने भी १९१८ ई. के पूर्व उर्दू में कई उपन्यासों की रचना की थी जिनमें से 'प्रेमा अर्थात् दो सखियों का विवाह' हिन्दी में प्रकाशित हो चुका था। उनके अन्य आरम्भिक उपन्यास

‘असरारे मआबिद उर्फ देवस्थान - रहस्य’, ‘किसना’, ‘रूठी रानी’ आदि थे। इनमें प्रेमचन्द ने भी उपन्यास को मनोरंजन से ऊपर उठाकर जीवन के सीधे सम्पर्क में लाने का प्रयत्न किया था। ‘सेवासदन’ उनकी पहली प्रौढ़ रचना है जहाँ से उनके नये औपन्यासिक जीवन का ही नहीं, हिन्दी उपन्यास का एक नये युग का भी उद्भव हुआ।

हिन्दी-उपन्यास को प्रेमचन्द की देन अनेकमुखी है। उन्होंने हिन्दी कथा-साहित्य को ‘मनोरंजन के स्तर से उठाकर जीवन के साथ सार्थक रूप में जोड़ने का काम किया। चारों ओर फैले हुए जीवन और अनेक सामयिक समस्याओं-पराधीनता, जमींदारो, पूंजीपतियों और सरकारी कर्मचारियों द्वारा किसानों का शोषण, निर्धनता, अशिक्षा, अन्धविश्वास, दहेज की कुप्रथा, घर और समाज में नारी की स्थिति, वेश्याओं की जिन्दगी, वृद्ध-विवाह, विधवा-समस्या, साम्प्रदायिक वैमनस्य, अस्पृश्यता, मध्यम वर्ग की कुंठाएँ आदि-ने उन्हें उपन्यास लेखन के लिए प्रेरित किया था।”^{३८}

प्रेमचन्द ने एक-एक कर बड़ी धैर्यता से इन समस्याओं और जीवन के विभिन्न पहलुओं को अपने उपन्यासों में स्थान दिया। ‘सेवासदन’ में उनका ध्यान विवाह से बंधी समस्याओं - दहेज की प्रथा, कुलीनता का प्रश्न आदि। ‘निर्मला’ में दहेज-प्रथा और वृद्ध-विवाह से होनेवाले पारिवारिक विघटन का चित्रण है। किसानों की समस्याओं के चित्रण का प्रथम प्रयत्न ‘प्रेमाश्रम’ में लक्षित हुआ उसे पूर्णता प्राप्त हुई गोदान में। ग्रामीण जीवन का इतना सही, विशाल और प्रभावशाली चित्रण हिन्दी के अन्य उपन्यास में नहीं है।

देश की साम्प्रदायिक समस्या प्रेमचन्द की चिन्ता का प्रधान आशय था। इस समस्या को ‘सेवासदन’ और ‘कायाकल्प’ में प्रकट किया है। उच्चवर्गीय और मध्यमवर्गीय समाज में नारी की हालात तथा अपने अधिकारों के प्रति उसकी उभरती गयी जागरूकता उनके सभी उपन्यासों में चित्रित है। देश की पराधीनता के अहसास से पैदा हुआ दर्द ‘प्रेमाश्रम’, ‘रंगभूमि’, ‘कायाकल्प’, ‘गबन’ और ‘कर्मभूमि’ में स्थान-स्थान पर व्यक्त हुआ है।

सामान्य जीवन की धड़कन तो उनके सभी उपन्यासों में मिलती है। प्रेमचंद ने सहज-सामान्य मानवीय व्यापारों को मनोवैज्ञानिक स्थितियों से जोड़कर उनमें एक सहज-तीव्र मानवीय रूचि पैदा कर दी। उनके आरम्भिक उपन्यासों में 'घटनाओं' की सृष्टि का भी प्रयास होता है, पर धीरे-धीरे वे इस पुराने रोग से मुक्त होते गये, और 'गोदान' में पहुँचकर उन्होंने किस्सागोई की उस कला को प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की।

प्रेमचन्द-युग में मुंशी प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में समाज के विभिन्न वर्गों का चित्रण किया है। अभिजात और नागरिक जीवन का चित्रण उन्होंने बहुत कम किया है; और जहाँ ऐसे स्थल आये हैं वहाँ उनका मन रमा नहीं है। गोदान में नागरिक जीवन के चित्रण की सम्भावनाएं तो थीं, किन्तु उसका प्रामाणिक और पर्याप्त चित्रण वहाँ भी नहीं है। प्रेमचन्द ने अपनी सूक्ष्म अवलोकन-क्षमता से न केवल इसे लक्ष्य किया, किन्तु सहानुभूति के साथ इसे अपने उपन्यासों में प्रस्तुत भी किया।

प्रेमचन्द राष्ट्रप्रेमी और देशभक्त लेखक थे, पर अपने उपन्यासों में वे देश भावना को मजबूत अभिव्यक्ति न दे सके। जगह-जगह ऐसा लगता है कि वे इस ओर बढ़ना तो चाहते हैं, पर उनकी व्यवहारिक बुद्धि जैसे रास्ता रोक देती है। वे सामाजिक सुधारों तथा प्राकृतिक विपत्तियों में सहायता-कार्य करनेवाली सेवा-समितियों के गठन और उनकी गतिविधियों का तो वर्णन करते हैं, पर सत्याग्रह-आन्दोलन या स्वतन्त्रताप्राप्ति के निमित्त किये गये आन्दोलन के चित्रण से बचते हैं। यह बात 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'गबन' और 'कर्मभूमि' सबमें देखी जा सकती हैं।^{३६}

सारांश यह है कि प्रेमचन्द युग में हिन्दी उपन्यास ने एक सुव्यवस्थित एवं सही रूप धारण कर लिया था, जो बहुमुखी रूपों में परवर्ती युग में विकसित हुआ।

✱ प्रेमचन्द-युगीन हिन्दी उपन्यासों की विशेषताएँ

(१) प्रेमचन्द-युग में उपन्यास-साहित्य में सुधारवादी दृष्टिकोण को अधिक महत्त्व दिया है।

- (२) इस युग के उपन्यासों में खास कर प्रेमचन्द ने समाज का यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत किया है, वहाँ दुसरी और उसे आदर्श से भी बाँध दिया है।
- (३) इस युग के उपन्यासों में गहरी संवेदना के दर्शन पाठकों को होते हैं।
- (४) प्रेमचन्द-युगीन उपन्यासों ने मानव-जीवन के विविध पक्ष को समाज के सामने रखा है।
- (५) मध्यवर्गीय अस्तित्व के चित्रण का आग्रह प्रेमचन्दकालीन सभी उपन्यासकारों में है।
- (६) समाज-सुधारों का प्रचार ही इस युग के उपन्यासकारों की उपलब्धि रह गयी थी।
- (७) इस युग के उपन्यासकारों ने उपन्यास को अस्तित्व की अभिव्यक्ति के साधन के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है।
- (८) प्रेमचन्द-युगीन उपन्यासों में अनेक सामयिक समस्याओं सत्य रूप समाज के सामने प्रस्तुत हैं।
- (९) इस युग के उपन्यासों में तटस्थता, व्यावहारिकता और भावुकता के हमे दर्शन होते हैं।
- (१०) प्रेमचन्द-युगीन उपन्यासों में सहानुभूति की व्यापकता दिखाई पड़ती है। सहानुभूति का अभाव किसी भी अवस्था में नहीं है। यह इस युग की और उपन्यासकारों की महत्ता है।
- (११) मानवतावाद का सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व मानव समानता है, वे मानव को उसकी सहज स्थिति में प्रतिष्ठित देखना चाहते थे। उनका दर्शन इस युग में है।
- (१२) इस युग के उपन्यासों में सामाजिक जीवन की अधिकांश समस्याएँ परिवार तथा नारी-जीवन का चित्रण अधिक मिलता है।
- (१३) हिन्दू धर्म का साधना पक्ष लुप्त हो चुका था। बाह्य आडम्बर को ही धर्म समझा जाता था। उनका चित्रण इस युग के उपन्यासों में प्रस्तुत है।

(१४) प्रेमचन्द-युग के शिक्षित वर्ग में बौद्धिकता की प्रधानता थी। इस वर्ग में धर्म के नाम पर चलनेवाले अनाचार, अत्याचारों का विरोध करने में धर्म पर से आस्था उठ गयी थी। ये बातें इस युग के उपन्यासों में हैं।

(१५) इस युग के उपन्यासों में मानवतावाद का प्रभाव, मानवतावादी जीवन-दर्शन प्रस्तुत है।

(१६) इस युग के उपन्यासों में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का दर्शन कराया है।

२.२.२.१ शिखरपुरुष प्रेमचन्द : उपन्यास शिल्पी

प्रेमचन्द इस नवीन क्रान्तिकारी चेतना के अग्रदूत बनकर उपन्यास क्षेत्र में आये। हिन्दी उपन्यासों का वास्तविक आरम्भ प्रेमचन्द से ही मानना चाहिए क्योंकि उन्हीं के समय में उपन्यास प्रेम कथा, तिलस्मी, ऐय्यारी, जासूसी, चमत्कारों तथा धार्मिक उपदेशात्मक क्षेत्रों को छोड़कर सही अर्थों में समाज के क्षेत्र में आया। प्रेमचन्द के उपन्यासों में इस युग का राजनीतिक और सामाजिक आशय साकार हो उठा। इसीलिये कहा गया है कि 'गोदान' के रचनाकार प्रेमचन्द हिन्दी के वर्तमान और भविष्य के शिल्पी हैं।

प्रेमचन्द उस शिखर के समान हैं जिसके दोनों ओर पर्वत के दो भागों के उतार-चढ़ाव हैं। उनके उपन्यास मनोरंजन के साधन भी हैं और सत्य के वाहक भी। प्रेमचन्द में हिन्दी उपन्यास की क्षीण और लक्ष्यहीन धाराएँ सम्मिलित होकर महासागर बनीं। प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में मानव जीवन दर्शन उनका लक्ष्य बना। साथ ही भाषा, कला तथा शील्प विधान के क्षेत्र में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। आदर्श और यथार्थ के चित्रण द्वारा जीवन संघर्ष और चेतना जगत का सुन्दर चित्रण हुआ।

प्रेमचन्द इस युग के शिखर पुरुष और उपन्यास शिल्पी माने गये। साथ-साथ युग के जन्मदाता और उपन्यास सम्राट भी माने गये। उन्होंने मौलिक सामाजिक उपन्यास लिखकर इस क्षेत्र को समृद्ध एवं शक्तिशाली बनाया। इस उपन्यासों में वस्तु चित्रण, कथोपकथन, चरित्र-चित्रण, भाषा शैली, शिल्प आदि के प्रौढ़ रूप के दर्शन हुए। इनके माध्यम से निम्न और मध्य वर्ग के सुन्दर चित्र सामने आये और साथ ही राष्ट्रीय भावना को बल मिला।

“शिखर पुरुष उपन्यास शिल्पी बनकर प्रेमचन्द ने द्विवेदी युग में लिखना आरम्भ किया, छायावादी युग में उनकी कला ने पूर्ण विकास पाया और बाद में प्रगतिशील विचार के साथ वे आगे बढ़े।”^{४०}

प्रेमचन्द को अपने युग के एक तेजस्वी एवं अमर कलाकार के रूप में मान्यता प्राप्त है। प्रेमचन्द महान साहित्यकार थे और कबीर एवं तुलसीदास की परम्परा में इन्हें इसलिए जुड़ा सकते हैं कि इन्होंने अपने युग के समाज, धर्म, संस्कृति और पूरे परिवेश के साथ संबंध स्थापित करते हुए। लोककल्याण के लिए साहित्य का सृजन किया है। उन्होंने शिल्पी और शिखर पुरुष बनकर कबीर के विद्रोह एवं तुलसीदास की समन्वयवादी सांस्कृतिक चेतना को आत्मसात् कर लिया। उनकी दृष्टि जन-जागृत, मानव-कल्याण, जनोत्थान पर केंद्रीभूत थी। अपने युग की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक दासता से मुक्ति का उनका उद्घोष, उन्हें साहित्य क्षेत्र में उपन्यास शिल्पी का अधिकारी बनाता है।

शिखर पुरुष उपन्यास शिल्पी होने के नाते प्रेमचन्द ही मानव-मुक्ति के लेखकों में आगे हैं, जिसके लिए उन्हें स्वामी दयानंद, तिलक, महात्मा गाँधी, कार्ल मार्क्स आदि महान पुरुषों से चेतना एवं शक्ति प्राप्त हुई किन्तु प्रेमचन्द इनमें से किसी के भी अंधे अनुयायी नहीं बने और सबसे बड़ी खासियत यह है कि कहीं भी अपने विचारों को प्रभावित नहीं होने दिया, ताकि विचारों में संघर्ष न हो। प्रेमचन्द ने साहित्य के द्वारा अपने समय में जन-सामान्य के दुःख दर्द को वाणी प्रदान की और अमानवीय व्यवस्था को बदलने का आह्वान किया। भारतीय कृषि-संस्कृति के ध्वस्त होने की प्रक्रिया को उन्होंने पाठकों के सम्मुख रखा और उसकी रक्षा का प्रश्न उपस्थित किया। इस प्रकार प्रेमचन्द ही पहले शिखर पुरुष उपन्यास शिल्पी थे, जिन्होंने साहित्य के धरातल पर इस सांस्कृतिक संकट को पहचाना और उसे वाणी प्रदान की। प्रेमचन्द साहित्य की अनेक मौलिकताएँ हैं, जो उन्हें महान एवं अमर उपन्यास शिल्पी साहित्यकार बनाती हैं।

प्रेमचन्द यथार्थ में शिखर पुरुष थे। साहित्य के ध्रुवतारा बनकर क्रान्ति के अग्रदूत, सर्वहारा वर्ग की जबान, युगीन समस्याओं के चित्रकार तथा मानवतावाद के उद्घोषक के रूप में अपनी कलम से आग और राग दोनों उत्पन्न करते हुए हिन्दी साहित्य के अभिव्यंग्य पक्ष को अमरता प्रदान की है। शिल्पी होने के नाते उन्होंने कहा है- “मैं दुनिया में महात्मा गांधी को सबसे बड़ा मानता हूँ। उनका भी आशय यही है कि मजदूर के लिए आन्दोलन मचा रहे हैं। मैं लिख करके उनको उत्साह दे रहा हूँ। महात्मा गांधी हिन्दू-मुसलमान की एकता चाहते हैं। मैं भी हिन्दी और उर्दू को मिलाकार के हिन्दुस्तानी बनाना चाहता हूँ।”^{४९}

उपन्यास शिल्पी बनकर प्रेमचन्द ने साहित्य को अंतिम शिखर पर पहुँचाया है। उनकी महत्ता का एक अत्यंत प्रबल प्रमाण यही है कि संसार के समस्त साहित्य से परिचित होकर असंख्य नवीन शैलियों तथा विषय-वस्तुओं से अपनी कृतियों को समंचित करते हुए भी आज तक कोई भी हिन्दी उपन्यासकार प्रेमचन्द के कृतित्व के शिखर तक पहुँच नहीं पाया है। पहुँचने की बात तो दूर, उनकी दृष्टि शिखर तक पहुँच ही नहीं सकती। हिन्दी के असंख्य उपन्यासकार अपनी साहित्यिक ऊँचाई में प्रेमचन्द के शीर्ष तक भला कैसे पहुँचते। घुटनों तक उठ पाये हैं। संसार में अब तक दो-तीन ऐसे उपन्यासकार उत्पन्न हुए हैं जिनकी तुलना प्रेमचन्द के साथ की जा सकती है। उदात्तता की दृष्टि से केवल टालस्टाय, रुस के प्रेमचन्द कहे जा सकते हैं। अंग्रेजी के हार्डी और डिकेन्स प्रेमचन्द के समकक्ष ठहरते हैं। ये प्रतिभा को लेकर भी प्रेमचन्द शिखर पुरुष एवं उपन्यास शिल्प रहे हैं।

प्रेमचन्द को शिखर पुरुष एवं उपन्यास शिल्पी कहना उचित है। समूचे भारतीय साहित्य में चार-पाँच ही ऐसे लेखक मिलेंगे जो प्रेमचन्द की तरह दीन दलित मानवों की व्यथा को कथा बनाकर अपनी साहित्यिक प्रतिभा के सारे वैभव को समर्पित कर देते हैं। अन्य साहित्यकार, सभी दृष्टियों से प्रेमचन्द के समकक्ष हो सकते हैं किन्तु अनुभूति की तीव्रता और सहानुभूति की व्यापकता की दृष्टि से वे प्रेमचन्द के अनुज बनते हैं। प्रेमचन्द जनता के सच्चे

दोस्त थे। वे भारत के प्रत्येक मानव को अपना मानकर उनकी कल्याण कामना करते थे। लोगों को वे ऐसे प्यार करते थे जैसे कोई माता अपने बेटे से करती है। यह प्रेमचन्द की शिल्पता है।

प्रेमचन्द के समूचे साहित्य में हमें शिखर पुरुष एवं शिल्पीकार के दर्शन होता है। प्रेमचन्द का समूचा साहित्य इसका जीता-जागता निदर्शन है। कहीं भी वे छिपते नहीं। सामाजिक समस्याओं के प्रति उनकी जो प्रतिक्रिया थी, उसे भी वे कहीं छिपा नहीं सकते। शोषितों के प्रति उनके हृदय में पिघल उठने वाले हिमालय सी सहानुभूति थी। जिन्दगी के कई क्षेत्रों में काम करने के बाद भी, अंत तक किसान की बेबसी से जिन्दगी बितानेवाले प्रेमचन्द के व्यक्तित्व के यथार्थ अथवा सत्य, होरी के रूप में अभिव्यक्त हुआ है तो प्रोफेसर बनने और विनोदपूर्ण जीवन व्यतीत करने की इच्छा ने मेहता के चरित्र के द्वारा अभिव्यक्ति पाई है।”^{४२}

हिन्दी में तुलसीदास, कबीरदास और भारतेन्दु के अलावा कोई अन्य रचनाकार नहीं मिलता जिसमें शिखर पुरुष प्रेमचन्द की सी साहित्यिक वफादारी प्राप्त होती हो। जीवन में भी उनका व्यवहार ऐसा ही सरल और सहज था। वे अपनी हँसी के लिए बहुत प्रसिद्ध थे जो पैतृक संपत्ति के रूप में उसके पुत्र अमृतराय को प्राप्त हुआ है। प्रेमचन्द प्रसन्न होते तो ऐसे ठहाका लगाते कि उस विचित्र हँसी की और सबके सब आकृष्ट हो जाते। भारतीय सामाजिक वर्ण व्यवस्था के प्रति उनके मानस में जो क्रोध था उसको छिपाने की होशियारी उनमें नहीं थी और साहित्य में भी उसे वे छिपा नहीं सके। “प्रेमचन्द का सबसे प्रधान गुण है उनकी व्यापक सहानुभूति सहानुभूति का अभाव किसी भी अवस्था में नहीं है। प्रेमचन्द कहीं भी कठोर नहीं होते और कहीं भी दम्भ नहीं करते। यह उनके व्यक्तित्व की अपूर्व विजय थी।”^{४३}

शिखर पुरुष एवं उपन्यास शिल्पी प्रेमचन्द ने खूद पर गांधीवादी प्रभाव को स्वीकारा है, इन शब्दों में- “मैं दुनिया में महात्मा गांधी को सबसे बड़ा मानता हूँ। उनका भी आशय यही है कि मजदूर के लिए आन्दोलन मचा रहे हैं। मैं लिख करके उनको उत्साह दे रहा हूँ। महात्मा गांधी

हिन्दू-मुसलमान की एकता चाहते हैं। मैं भी हिन्दी और उर्दू को मिलाकर के हिन्दुस्तानी बनाना चाहता हूँ।”^{४४} उन्होंने मानवता का सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व मानव समानता है, वे वर्गभेद के विरोधी हमेशा रहे हैं। वे मानव को उसकी स्थिति में प्रतिष्ठित देखना चाहते थे। इसी वजह से प्रेमचन्द को उपन्यास शिल्पी कहा है।

उपन्यास शिल्पी बनकर प्रेमचन्द ने युग का चित्रण किया है। प्रेमचन्द ने जीवन को निकटता से देखा है, अतः जीवन की व्यापकता को समझ पाये और उसके अंकन में सफलता प्राप्त की। उन्होंने अपनी कृतियों में अपने युग की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों का चित्रण किया है। साथ ही उस युग की कई समस्याओं का उल्लेख कर उन्हें सुलझाने का प्रयत्न भी किया है। प्रेमचन्द का युग राष्ट्रीय-जागरण का युग है। राजनीतिक क्षेत्र में देश की सारी चेतना पराधीनता से व्यथित हो चुकी थी। तब शिखर पुरुष बनकर देश को पराधीनता से बहार निकालने का प्रयत्न किया है।

शिखर पुरुष, उपन्यास शिल्पी प्रेमचन्द के साहित्य में हमें शिव का प्राधान्य देखने को मिलता है। वे कला को जीवन के लिए मानते थे। मनोरंजनपूर्ण साहित्य को वे मदारियों का खेल स्वीकारते थे। उनकी प्रारम्भिक औपन्यासिक कृतियों में आदर्श की अधिकता देखी जा सकती है यह सत्य है कि प्रेमचन्द की कृतियों में शिव की प्रतिष्ठा हुई है लेकिन वे सत्य का भी प्रतिपादन हर एक रचना में करते हैं। उनके सभी उपन्यासों में युग की समस्याओं का सही रूप उभर आता है जिसके निवारण में शिव की प्रतिष्ठा होती है। लोककल्याण की भावना ही शिव है जो प्रेमचन्द के उपन्यासों का प्रमुख आशय है। जीवन के सुन्दर पक्षों का भी चित्रण यत्र-तत्र हुआ है। इस बात को लेकर प्रेमचन्द को शिखर पुरुष उपन्यास शिल्पी भी कहते हैं।

२.२.२.२ प्रेमचन्द युगीन अन्य उपन्यासकार

इस युग के अन्य उल्लेखनीय उपन्यासकारों में प्रसाद, बेचेनशर्मा ‘उग्र’, विश्वम्भरनाथ शर्मा, ‘कौशिक’, प्रतापनारायण श्रीवास्तव,

भगवतीचरण वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, शिवपूजन सहाय, ऋषभचरण जैन, अनूपलाल मंडल, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, सियारामशरण गुप्त, राधिकारमणप्रसाद सिंह, वृन्दावनलाल वर्मा, राहुल सांकृत्यायन तथा सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' आदि प्रमुख हैं।

प्रेमचन्द के समकालीनों में जयशंकर प्रसाद इसलिए उल्लेखनीय है कि वे केवल कविता और नाटक के क्षेत्र में नहीं 'कंकाल' और तितली की रचना द्वारा उपन्यासकार के रूप में भी सामने आये। इनमें से 'कंकाल' ही विशेष उल्लेखनीय है- 'तितली' में ग्रामीण और कृषक जीवन का सामान्य औपन्यासिक फैलाव-मात्र है। 'कंकाल' की विशिष्टता यह है कि इसमें प्रसाद ने समाज की त्याज्य, अवैध और अज्ञात-कुलशील सन्तानों की कथा कहीं है। विषय के चुनाव की दृष्टि से वे घोर प्रकृतिवादी लगते हैं।

उपन्यासकार के रूप में प्रसाद की असफलता का एक अन्य कारण यह है कि उनकी भाषा, बिल्कुल ही उपन्यासोचित नहीं है। इस प्रकार प्रसाद प्रतिभा-सम्पन्न लेखक होते हुए भी हिन्दी उपन्यास को नया आयाम नहीं दे सके।^{४५}

हिन्दी-उपन्यास को प्रेमचन्द-युग में ही नयी दिशा देने का सफल प्रयास जैनेन्द्र कुमार ने किया। इस काल में उनके तीन उपन्यास प्रकाशित हुए- 'परख', 'सुनीता' और 'त्यागपत्र'। 'परख' में समकालीन सामाजिक उपन्यासों की परम्परा से अलग चलने का प्रयास किया गया है। लेखक ने व्यापक सामाजिक जीवन को अपने उपन्यासों का विषय न बनाकर व्यक्ति-मानस की शंकाओं, उलझनों और गुत्थियों का चित्रण किया है। उनके उपन्यासों की कहानी अधिकतर एक परिवार की कहानी होती है और वे शहर की गली और कोठरी की सभ्यता में ही सिमटकर व्यक्ति-पात्रों की मानसिक गहराइयों में प्रवेश करने की कोशिश करते हैं।

जैनेन्द्रजी पर एक बड़ा आक्षेप यह है कि उनके पात्र आध्यात्मिकता और उच्चता के आवरण में लिपटे हुए तो अवश्य हैं, किन्तु वे न

तो आध्यात्मिक है और न उच्च ही। प्रेमचन्द के बाद उन्होंने ही हिन्दी-उपन्यास को विशेष व्यक्तित्व प्रदान किया।

प्रेमचन्द-युग के सबसे अकखड़ और इसलिए सबसे बदनाम उपन्यासकार हुए बेचन शर्मा 'उग्र' जिन्होंने 'चन्द हसीनों के खतूत', 'दिल्ली का दलाल', 'बुधुआ की बेटी', 'शराबी' आदि उपन्यासों में समाज की बुराइयों को, उसकी नंगी सच्चाई को बिना किसी लाग-लपेट के बड़े ही साहस के साथ, किन्तु सपाटबयानी के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने समाज के उस वर्ग को अपने उपन्यासों का विषय बनाया जिसे दलित या पतित वर्ग कहते हैं; और उसके चित्रण में उन्होंने किसी प्रकार के 'शील' या 'अभिजात शिष्टता' का परिचय नहीं दिया।^{४६} इस कारण उनके उपन्यासों में एक सच्चाई अपने नग्न रूप में आयी है, तो दूसरी और वह परचेबाजी के निकट पहुंच जाती है जो किसी कला-रूप में परिणत नहीं होने देती। उग्र के सभी उपन्यास सुधारवादी दृष्टिकोण से लिखे गये हैं, इसलिए भी वे श्रेष्ठ कला-रूप में परिणत नहीं हो पाये हैं। वैसे यह उल्लेखनीय है कि 'चन्द हसीनों के खतूत' पत्रात्मक प्रविधि में लिखा गया हिन्दी का पहला उपन्यास है।

'चतुरसेन शास्त्री' अपनी लौह लेखनी के लिए विशेष प्रसिद्ध है। उग्रजी की भाँति शास्त्रीजी ने भी समाज की गलत अवस्था का बहुत बीभत्स और नग्न चित्रण किया है। उन्होंने 'हृदय की प्यास', 'अमर अभिलाषा', 'वैशाली की नगरवधू' सोमनाथ तथा 'वयं रक्ष्यामः' उपन्यासों की रचना की, किन्तु प्रेमचन्द की रचना-शैली से प्रभावित होने पर भी उन्होंने उसे कौशिकजी की भाँति एकान्ततः ग्रहण नहीं किया है। प्रतापनारायण श्रीवास्तव-कृत 'विदा' और विजय आदर्शवादी उपन्यास हैं। 'विदा' में नागरिक उच्चवर्गीय समाज का चित्रण है और 'विजय' में अभिजातवर्गीय विधवा जीवन की समस्याएँ चित्रित हैं।

वृन्दावनलाल वर्मा-कृत 'संगम', 'लगन', 'प्रत्यागत' और 'कुंडलीचक्र' सामाजिक उपन्यास है तथा 'गढकुंडार' और 'विराट की पद्मिनी' की रचना ऐताहासिक धरातल में हुई है। जहाँ लेखक का विभिन्न सामाजिक

समस्याओं के सन्दर्भ में जीवन का आदर्शात्मक यथार्थ निरूपण प्रतीत होता है, वहां शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना-परम्परा को आरम्भ करने का श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त है।”^{४७}

इस युग के अन्य प्रमुख उपन्यासकारों में भगवतीचरण वर्मा, राधिकारमणप्रसाद सिंह, सियारामशरण गुप्त, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, राहुल सांकृत्यायन, सूर्यकान्त त्रिपाठी ‘निराला’ आदि उल्लेखनीय हैं। भगवतीचरण वर्मा ने ‘चित्रलेखा’ की रचनाकर पाठकों के बीच पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त की थी, पर उपन्यास में जीवन की धड़कन न होने के कारण इसका कोई स्थायी मूल्य न बना १९३६ ई. में इनका ‘तीन वर्ष’ नामक उपन्यास छपा जो अपनी अश्रुपंकिल भावुकता के कारण पाठकों में लोकप्रिय हुआ। राधिकारमणप्रसाद सिंह ने ‘राम रहीम’ में कई सामाजिक पहलुओं का उद्घाटन किया, पर उनका लगभग सारा ध्यान भाषा को ‘चुलबुलाहट’ से युक्त बनाने में ही लगा रहा। सियारामशरण गुप्त-कृत ‘गोद’, ‘अन्तिम आकांक्षा’ और ‘नारी’ गांधी-दर्शन पर आधारित मनोवैज्ञानिक सामाजिक उपन्यास हैं जिनमें लांछनाग्रस्त निरपराध व्यक्तियों की मनोव्यथा, घरेलू नौकरों की अनुकरणीय मर्यादा और नारी-समस्याओं के निराकरण के लिए नये-पुराने मूल्यों के समन्वय पर बल दिया गया है।

विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक के दो उपन्यास ‘माँ’ और ‘भिरवारिणी’ विशेष प्रसिद्ध हैं। उपन्यास-साहित्य में कौशिकजी प्रेमचन्दजी के आदर्शों के ही अनुयायी थे। अपने दोनों उपन्यासों में उन्होंने सामाजिक कुरीतियों का ही चित्रण किया है, और उनके निराकरण के लिए कुछ सुझाव प्रस्तुत किये हैं। कौशिकजी के उपन्यासों में कथावस्तु का विकास वार्तालाप द्वारा होता है। शिवपूजन सहाय ने हिन्दी-उपन्यास को प्रेमचन्द से भिन्न मार्ग पर ले जाने का प्रयास किया। उनका देहाती दुनिया’ उपन्यास प्रचलित रूढ़ि को तोड़ने की दिशा में एक साहसिक कदम था, किन्तु शायद यह कदम समय से पहले उठा लिया गया। इसीलिए इस उपन्यास का उचित मूल्यांकन लगभग आंचलिक उपन्यासों का आविर्भाव होने पर हुआ।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी के उपन्यासों- ‘प्रेमपथ’, ‘मीठी चुटकी’, ‘अनाथ पत्नी’, ‘त्यागमयी’, ‘लालिमा’ आदि - में मध्यवर्गीय पारिवारिक-सामाजिक जीवन का मनोविश्लेषणपरक चित्रण मिलता है। राहुलसांकृत्यायन ने इस काल में मौलिक उपन्यासों के स्थान पर ‘शैतान की आंख’, ‘विस्मृति के गर्भ में’, ‘सोने की ढाल’ प्रभृति अनूदित उपन्यासों की रचना की जिनमें ऐतिहासिक-रोमानी कथानकों को स्थान प्राप्त हुआ है। इस काल में स्वच्छन्दतावादी पद्धति के प्रेममूलक उपन्यासों की रचना का श्रेय ‘निराला’ को है- उनके द्वारा रचित ‘अप्सरा’, ‘अलका’, ‘प्रभावती’ और ‘निरूपमा’ भले ही प्रसाद के कथा-साहित्य की भांति विषय-निरूपण और शैली दोनों की दृष्टि से उनकी कवि-चेतना से प्रभावित है।

इस युग को हिन्दी-उपन्यास का स्थापना-काल कह सकते हैं। जहां प्रेमचन्द ने हिन्दी-उपन्यास को प्रथम बार साहित्य का दर्जा प्रदान किया और जैनेन्द्र ने उसे आधुनिक बनाया वहां अन्य उपन्यासकारों ने भी अपने-अपने ढंग से उसे समृद्धि प्रदान कर उपन्यास साहित्य का विकास किया है।

२.२.३ प्रेमचन्दोत्तर युग के हिन्दी उपन्यास

सन् १९३६ में प्रेमचंद की मृत्यु के बाद का यह काल ‘स्वतंत्रता से पूर्व और ‘स्वतंत्रता के बाद’ के दो भागों में बाँटा जा सकता है। प्रेमचंद की मृत्यु के बाद हिन्दी उपन्यास कई मोड़ों से गुजरता हुआ दिखाई पड़ता है, जिसे डॉ. नगेन्द्र के मतानुसार स्थूल रूप से तीन दशकों में बाँटा जा सकता है, पहला दशक मुख्यतः फ्रायड और मार्क्स की विचारधारा से प्रभावित है। दूसरा प्रयोगात्मक विशेषताओं से और तीसरा आधुनिकतावादी विचारधारा से। फ्रायड से प्रभावित होकर जिस कथा साहित्य की रचना की गई उसकी पृष्ठभूमि जैनेन्द्र पहले ही प्रस्तुत कर चुके थे। जहाँ प्रेमचंद ने समाज के साथ एककृत होने के प्रश्न को महत्व दिया, वहाँ जैनेन्द्र ने व्यक्ति की गुम होती हुई पहचान को उभारकर सामने रखा। आलोच्य युग में प्रकाशित उनके उपन्यासों-कल्याणी, सुखदा, विवर्त, व्यतीत, जयवर्धन आदि में यह प्रवृत्ति

मनोविज्ञान, दार्शनिकता, वैयक्तिकता आदि के माध्यम से विविध रूपों में उभरी है।

अज्ञेयकृत शेखर: एक जीवनी (१९४१) के प्रकाशन के साथ उपन्यास की दिशा में एक नया मोड़ आया। जिसे आज आधुनिकता की संज्ञा दी जाती है, उसका सर्वप्रथम समावेश इसी उपन्यास में दिखाई देता है। इसका मूलमन्तव्य है स्वतंत्रता की खोज। यह खोज अपने को सबसे काटकर नहीं की गई है, बल्कि उन सन्दर्भों में यानी मानवीय परिस्थितियों के बीच की गई है।^{४८} अज्ञेय के दूसरे उपन्यास 'नदी के द्वीप' को सामान्यतः शेखर संवेदना का विकास माना जाता है।

जैनेन्द्र और अज्ञेय, फ्रायड के मनोविज्ञान से प्रभावित हैं, तो इलाचन्द जोशी उसके मनोविश्लेषण से। यद्यपि उनका पहला उपन्यास 'घृणामयी' सन् १९२९ में ही प्रकाशित हो चुका था, किन्तु 'संन्यासी' के द्वारा ही उन्हें उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठा मिली। इस उपन्यास में ही पहली बार मनोविश्लेषणात्मक पद्धति देखी जाती है। 'संन्यासी' के अतिरिक्त उनके 'पर्दे की रानी' (१९४१), 'प्रेत और छाया', 'निर्वासित' उपन्यासों में 'संन्यासी', 'पर्दे की रानी' और 'प्रेत और छाया' में एबनोर्मल चरित्रों को लिया गया है। इसके मुख्य पात्र किसी न किसी मनोवैज्ञानिक ग्रंथी के शिकार हैं।

'प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में अपनी विशिष्ट विचारधारा और सृजनात्मक शक्ति के कारण यशपाल ने स्वतंत्र व्यक्तित्व बना लिया है।' 'गोदान' में प्रेमचन्द ने आदर्शवाद से बहुत कुछ मुक्त होकर जिस यथार्थवादी दृष्टिकोण को ग्रहण किया था, उसकी परम्परा को आगे बढ़ाने का श्रेय यशपाल को है। 'अमिता' और 'दिव्या' शीर्षक ऐतिहासिक उपन्यासों को छोड़कर उनके शेष उपन्यास समाजवादी यथार्थवादी का चित्र प्रस्तुत करते हैं। ये हैं- दादा कामरेड, देशद्रोही, पार्टी कामरेड आदि। ये इसी दशक के उपन्यास हैं। दादा कामरेड में पूँजीवाद, गाँधीवाद और क्रान्तिकारियों के आंतकवाद का विरोध करते हुए समाजवाद का समर्थन किया गया है।^{४९}

यशपाल की परम्परा के उपन्यासकारों में रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' का नाम उल्लेखनीय है- 'पहली धूप' (१९४५), 'नयी इमारत' (१९४६), 'उल्फा' (१९४७) उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों को प्रेमचंद की परम्परा जो १९५० ई. तक चलती रही, के अन्तर्गत रखा जा सकता है। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में जहाँ समसामयिक समस्याओं को चित्रित किया, वहाँ वर्मा जी भी परिवर्तमान ऐतिहासिक धारा को मध्यवर्ग के माध्यम से अंकित करते रहे हैं। आलोच्य अवधि में प्रकाशित उनके उपन्यास में 'टेढे मेढे रास्ते', 'आखिर दाँव', 'भूले बिसरे चित्र', 'सामर्थ्य और सीमा', 'रेखा' और 'सबहि नचावत राम गुसाईं मुख्य है।'^{५०} वर्माजी की भाँति उपेन्द्रनाथ अशक को भी प्रेमचन्द की परम्परा का उपन्यासकार कहा जा सकता है, पर समग्र अर्थ में वे इस परम्परा से जुड़ नहीं पाते। उनके उपन्यासों में 'गिरती दीवारे' (१९४७) सर्वोत्तम है। इधर के उपन्यासकारों में अमृतलाल नागर का विशेष स्थान है। उनके उपन्यास व्यक्ति और समाज के सापेक्षित सम्बन्धों को चित्रित करते हैं। 'नवाबी मसनद', 'सेठ बाँकेमल', 'महाकाल', 'बूँद और समुद्र', 'अमृत और विष', 'शतरंज के मोहरे', 'सुहाग के नूपुर' आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

वृन्दावन लाल वर्मा ने यों तो सामाजिक उपन्यास भी लिखे हैं, पर उनकी ख्याति विशेषतः 'विराट की पद्मिनी', 'झांसी की रानी', 'कचनार', 'मृगनयनी', 'अहिल्याबाई', 'माधोजी सिंधिया', 'भुवनविक्रम' आदि ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। इनमें 'झांसी की रानी' और 'मृगनयनी' मुख्य हैं। 'मृगनयनी' में तत्कालीन परिवेश को उसकी समग्रता में आकलित करने का प्रयास दिखायी पड़ता है। बीच-बीच में ऐसे प्रसंग भी आ गये हैं जो आज की समस्याओं से भी जुड़ जाते हैं। किन्तु, पूरे उपन्यास को इस धरातल पर नहीं उतारा गया है। उपन्यासकार ने ग्वालियर के महाराजा मानसिंह और ग्रामीण मृगनयनी के प्रणय-रोमांस के ताने-बाने में उस समय के सांस्कृतिक वातावरण को उसके विभिन्न आयामों में चित्रित करके जीवन्त बना दिया है।

प्रेमचन्दोत्तर युग में मन्मथनाथ गुप्त, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय, लक्ष्मीनारायण लाल, राजेन्द्र यादव आदि नवीन सामाजिक चेतना के उपन्यासकार हैं। इनमें से पहले तीन मार्क्सवादी दृष्टिकोण के प्रतिबद्ध लेखक हैं। मन्मथनाथ गुप्त का 'बहता पानी', भैरवप्रसाद गुप्त के 'मशाल' और 'गंगा मैया' तथा अमृतराय-कृत 'बीज', 'नागफनी का देश' और 'हाथी के दांत' वर्ग-संघर्ष और प्रगति के मिथक के सूचक उपन्यास हैं। लक्ष्मीनारायण लाल ने 'मन वृन्दावन', 'धरती की आंख', 'काले फूल का पौधा' और 'रूपाजीवा' में उपरते स्तर की सामाजिक चेतना को उभारने की कोशिश की है। राजेन्द्र यादव के उपन्यास हैं। 'उखड़े हुए लोग' में कथा-विन्यास सुसम्बद्ध है। आज की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था व्यक्ति के आदर्शवादी सपनों को नष्ट कर उसे समझौतावादी बनने के लिए किस प्रकार बाध्य करती है, यही इसका प्रधान प्रतिपाद्य है।

प्रेमचन्दोत्तर युग में आधुनिकता-बोध के उपन्यास का भी अधिक महत्व बताया है। आस्थाविहीन समाज, अनिश्चय की हालात में लटके हुए इन्सान और आत्मनिर्वासन की अभिव्यक्ति देने की पहल मोहन राकेश ने अपने उपन्यास 'अन्धेरे बन्द कमरे' में की। निर्मल वर्मा का 'वे दिन' आधुनिक संवेदना से समलैंगिक यौनाचार में लिप्त स्त्रियों की कहानी है। नरेश महेता का उपन्यास 'यह पथ बन्धु था' तथा 'नदी यशस्वी है' रचनात्मक स्तर पर आधुनिक हैं, श्रीलाल शुक्ल-कृत 'राग दरबारी' रिपोर्ताज शैली में लिखा गया उपन्यास है।^{११}

इस युग का विकास करने में प्रेमचन्दोत्तर युग के सभी उपन्यासकारों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। और अपने-अपने ढंग से उसे समृद्धि प्रदान कर उपन्यासकारों का मार्गदर्शन किया।

२.२.३.१ प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यास के विभिन्न प्रकार :

एक दृष्टि

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी-उपन्यास का व्यापक विकास हुआ है। यह विकास प्रेमचन्द की यथार्थवादी पृष्ठभूमि पर ही आधारित है। प्रेमचन्द

ने एक और सामाजिक जीवन की यथार्थ समस्याओं को उद्घाटित किया, तो दूसरी और परिस्थिति-सापेक्ष मन सत्तों को अभिव्यक्ति दी। प्रेमचन्द में यथार्थ के जिन दो आयामों (सामाजिक और मनोवैज्ञानिक) का उद्घाटन हुआ, वे प्रेमचन्द के बाद अलग-अलग धाराओं में बँटकर तथा अपनी-अपनी धारा की अन्य सूक्ष्म बातों से मिश्रित होकर बहुत तीव्र और विशिष्ट रूप में विकसित होते गये। अतः एक और मनोविज्ञान की धारा बही, दूसरी और समाजवाद की।

(क) सामाजिक उपन्यास :

प्रेमचन्द के बाद सामाजिक उपन्यासों की एक लम्बी परम्परा है, जो सामाजिक जीवन के यथार्थ को बिंदु बनाकर चली है। इनमें व्यक्ति की अपेक्षा सामाजिक जीवन को अधिक महत्व दिया गया है। इन उपन्यासों में लेखक किसी विशिष्ट जीवन-दर्शन से बंधा नहीं रहता। इनमें समाज की अनेक समस्याओं को उठाया गया है और उनके समाधानों की ओर भी संकेत किया गया है। जाति-पाँति, अंधविश्वास, किसानों के शोषण, चुनाव के दृश्य एवं नारी आदि की समस्याएँ अपनी बहुरंगी पृष्ठभूमि के साथ इन उपन्यासों में बजता हैं। इस युग के उपन्यासकारों में उदयशंकर भट्ट, डॉ. रांगेय राघव, उपेन्द्रनाथ 'अश्व', राजेन्द्र यादव एवं प्रभाकर माचवे आदि प्रमुख हैं।

(ख) समाजवादी उपन्यास :

मार्क्सवादी सिद्धान्तों से प्रतिपादित उपन्यास ही समाजवादी नाम से अभिहित हैं। सामाजिक और समाजवादी दोनों उपन्यास समाजकेन्द्रिय होते हैं। किन्तु दोनों में मूलभूत अन्तर है। सामाजिक उपन्यासों में सामाजिक जीवन का चित्रण रहता है, किन्तु उसे देखने की लेखक की कोई निर्देशित दृष्टि नहीं रहती यानी दृष्टि तो होती है किन्तु वह किसी प्रकार की हो सकती है- लेखक की अपनी भी हो सकती है और किसी संस्था की भी। किन्तु समाजवादी उपन्यासों की एक निर्दिष्ट दृष्टि होती है वह दृष्टि लेखक की अपनी निजी दृष्टि नहीं हो सकती, वह मार्क्सवादी होती है।^{५२}

(ग) आंचलिक उपन्यास :

स्वतन्त्रता के बाद हमारे साहित्यकारों की दृष्टि लोक-संस्कृति की ओर अधिक उन्मुख हुई है। लेखकों ने जीवन के यथार्थ में गहरे उतर कर जनवादी साहित्य-सृजन की आवश्यकता महसूस की है। हमारे देश में विभिन्न संस्कृतियों, धर्मों, वेश-भूषाओं और विचारधाराओं का भंडार है। विभिन्न अंचलों के जन-जीवन को चित्रित करने के आशय से ही उपन्यासकार इस ओर प्रवृत्त हुए और आंचलिक उपन्यासों की रचना हुई। इसलिए आंचलिक उपन्यास एक प्रकार की अनिवार्यता की उपज है। समय की दृष्टि से सर्वप्रथम मारिया एजवर्ड ने सन् १८०० में प्रकाशित अपने 'कैसल रेकरेंट' नामक लघु उपन्यास द्वारा 'रिजनल नावेल' का प्रयोग किया। उन्होंने ही सर्वप्रथम आयरलैंड के क्षेत्रीय जीवन को लेकर कुछ उपन्यास लिखा, जिसे 'रिजनल नावेल' (आंचलिक उपन्यास) नाम दिया गया। खूद हार्डी के कथनानुसार उनके उपन्यास भी स्थानीय प्रकार के कहे जाते रहे हैं। हिन्दी में सर्वप्रथम आंचलिक शब्द का प्रयोग फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने सन् १९५४ में प्रकाशित अपने उपन्यास 'मैला आंचल' की भूमिका में किया। तभी से यह शब्द प्रचलित हो गया।

आंचलिक उपन्यास राष्ट्रीय भावना के उपन्यास है। इनके द्वारा विशाल देश के अनेक भूखंडों की चेतना का बोध होता है और समग्र रूप से एक व्यापक राष्ट्रीय भावना खड़ी होती है। खंड-खंड से मिलकर ही अखंडता बनती है। अतः यह शंका निमूल है कि इन उपन्यासों के प्रचार से राष्ट्रीय एकता की भावना में व्यवधान पैदा होता है। भारत जैसे विभिन्न संस्कृतियों वाले देश के आंचलिक उपन्यासकार अंचलों की संस्कृति के विभिन्न पक्षों का चित्रण करके दूसरे अंचलों में जागरण की भावना फैलाने का कार्य बड़ी सुगमता से कर सकते हैं।^{५३}

हिन्दी के आंचलिक उपन्यास प्रमुख रूप से या तो किसी अंचल विशेष के जन-जीवन का चित्रण करते हैं या किसी अपरिचित और आदिम जातियों के जीवन का चित्रण करते हैं। इन उपन्यासों के दो प्रधान भेद

किये जा सकते हैं। पहले प्रकार के वे उपन्यास हैं। जिनमें अंचल विशेष के जन-जीवन का चित्रण होता है। इस प्रकार के उपन्यासों में नागार्जुन के 'बलचनमा', 'बाबा बटेसर नाथ', 'रतिनाथ की चाची' डॉ. रांगेय राधव के 'काका', 'धरती मेरा घर' फणीश्वर नाथ 'रेणु' के 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' तथा शिवप्रसाद सिंह का 'अलग अलग वैतरणी' आदि प्रधान हैं। दूसरे प्रकार के वे हैं, जिनमें किसी जाति विशेष का जीवन चित्रित होता है। इस प्रकार के उपन्यासों में उदयशंकर भट्ट का 'सागर लहरें और मनुष्य' रांगेय राधव का 'कब तक पूकारूँ' तथा देवेन्द्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिए' आदि महत्वपूर्ण हैं।

(घ) ऐतिहासिक उपन्यास :

ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास और वर्तमान का तथा यथार्थ एवं कल्पना का बहुत सन्तुलित और दिया जानेवाला समन्वय होता है। इन उपन्यासों में तत्कालिन वातावरण की अवतारणा उनकी अनिवार्यता होती है। ऐतिहासिक उपन्यास के निर्माण की मूल प्रेरणाओं का विश्लेषण करते हुए डॉ. जगदीश गुप्त ने लिखा है कि उपन्यासकार इन सात भावनाओं से प्रेरित होकर इतिहास की ओर प्रवृत्त हुए: 'वर्तमान से पराजित अथवा श्रेष्ठ एवं महत्वपूर्ण समझते हुए उसके पुनर्स्थापन की भावना, कतिपय ऐतिहासिक पात्रों या घटनाओं के प्रति न्याय की भावना; वर्तमान को शक्तिशाली बनाने के लिए अतीत से उपजीव्य खोजने की भावना, इतिहास-रस में लिप्त रहने की सहजभावना, जातीय गौरव, राष्ट्र-प्रेम, आदर्श-स्थापना तथा वीर-पूजा की भावना, जीवन की किसी नवीन व्याख्या को प्रस्तुत करने की भावना'^{१४} इन भावनाओं में से कोई एक या कई संयुक्त होकर प्रमुख अथवा गौण रूप से प्रेरणा देते हुए ऐतिहासिक उपन्यास का बीज प्रस्तुत कर सकती हैं। हिन्दी-साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रणयन राष्ट्रीय जागरण तथा स्वतंत्रता आन्दोलन के समानान्तर हुआ। इसलिए उनमें जात्याभिमान, राष्ट्र-प्रेम तथा वीर-पूजा की भावना प्रधान रूप से मिलती है। ऐतिहासिक उपन्यासकारों में वृन्दावनलाल

वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, यशपाल एवं डॉ. रांगेय राघव का प्रमुख स्थान है।

(च) मनोवैज्ञानिक उपन्यास :

प्रेमचन्द के बाद के उपन्यासों की सबसे प्रधान मौलिक प्रवृत्ति मनोविज्ञान है। यह प्रवृत्ति प्रेमचन्द के मनोविज्ञान से वस्तुतः अलग है, जो मनोविज्ञान की नवीन खोजों से प्राप्त सत्यों को आधार बना कर चली। मनोविज्ञान मनुष्य के चेतन व्यक्तित्व की अपेक्षा अवचेतन व्यक्तित्व को विशेष महत्व देता है और वह अवचेतन व्यक्तित्व बड़ा ही जटिल, उलझा हुआ, रहस्यमय और असामान्य है।

हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का प्रारम्भ जैनेन्द्रकुमार के 'परख' और 'सुनीता' से माना जाता है। जैनेन्द्रकुमार ने प्रथमतः रूढिवादी श्रृंखला और बँधी हुई परिस्थितियों से मुक्त होकर मन की परीक्षा की। उनका 'परख' मानसिक द्वन्द्वों और संघर्षों का सूक्ष्म अवलोकन करके व्यक्तित्व की रेखाएँ खींचता है। 'सुनीता', 'परख' से भिन्न कृति है। इसमें उपन्यासकार का दर्शन अधिक उभर आया है। यही प्रवृत्ति उनके अन्य उपन्यास 'विवर्त', 'व्यतीत', जयवर्धन आदि उपन्यासों में पायी जाती है। परन्तु जैनेन्द्रजी मनोवैज्ञानिक वस्तुनिर्माण के साथ जब से दर्शन का पुट अधिक मिलाने लगे तब से उनकी रचनाओं का प्रभाव और उत्कर्ष संदिग्ध हो गया है। कदाचित् मनोवैज्ञानिक चित्रण और परिस्थिति-निर्देश की प्रमुखता रखने वाले उपन्यासों को दार्शनिक तत्त्वज्ञान के सम्पर्क में लाना ही खतरनाक है।^{५५}

जैनेन्द्र के बाद इलाचन्द्र जोशी ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर कथा और कला का संयोजन किया है। इनके उपन्यास 'संन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'प्रेत और छाया', 'निर्वासित', 'मुक्तिपथ', 'जहाज का पंछी' आदि में युवकों के असाधारण जीवन का विश्लेषण है। इन्होंने जैनेन्द्रकुमार की तरह अपने को गांधी-युग की प्रवृत्तियों से प्रभावित नहीं होने दिया। जहाँ तक मनोविश्लेषण के सिद्धान्त का प्रश्न है, कहा जा सकता है कि जोशीजी पर तीनों मनोविश्लेषणवादियों-फ्रायड, एडलर और युंग का प्रभाव

है। वे सबसे निकट युग के हैं, क्योंकि वे उसके सामूहिक अवचेतनवाद से बहुत दूर तक सहमत हैं। इसके अतिरिक्त जोशी पर मार्क्सवाद का भी प्रभाव लक्षित होता है, इसलिए वे अन्तरचेतना का विश्लेषण एक वैज्ञानिक की तरह करके चुप नहीं हो जाते वरन् सामाजिक जीवन के साथ अलगाव पैदा करनेवाली उसकी वृत्तियों पर आघात भी करते हैं।

हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों को प्रौढ़रूप देने का श्रेय अज्ञेय को ही है। अज्ञेय में मनोविश्लेषण की अपूर्व क्षमता है, जाग्रत और सूक्ष्म सौन्दर्यबोध है। उनमें कलात्मक के प्रति ईमानदारी की चेतना है और अनुकूल शिल्प सृष्टि करने की शक्ति है। 'शेखर : एक जीवनी' में उन्होंने एक व्यक्ति के जीवन-तथ्यों का चित्रण प्रस्तुत किया है। यह संस्मरणात्मक उपन्यास नायक की दमित वासनाओं को दूर कर रख देता है। 'नदी के द्वीप' इने गिने पात्रों के आधार पर जीवन के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण को प्रतिपादित करने का प्रयास है। विभिन्न चौराहों पर खड़े होकर लेखक ने बार-बार पात्रों की मनः स्थितियों का चित्र खींचा है। ये पात्र बाहर की अपेक्षा भीतर-ही-भीतर जीते हैं, आत्म-मंथन करते हैं, मंथन के फलस्वरूप जो सत्य उपलब्ध होते हैं, उन्हें शक्तियों के रूप में व्यक्त करते हैं।

२.२.३.२. प्रेमचन्दोत्तर युग के सशक्त हस्ताक्षर : श्रीलाल शुक्ल

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज को समझने के लिए जिन रचनाकारों ने अपने तर्क निर्मित किये हैं, उनमें श्रीलाल शुक्ल का महत्व अद्वितीय है। विलक्षण गद्यकार श्रीलाल शुक्ल वस्तुतः हमारे समय का विदग्ध भाष्य रचते हैं। उनकी सबसे बड़ी खासियत यह है कि वह जटिल और संश्लिष्ट जीवन के प्रति पूर्ण सचेत दिखते हैं। उनका लेखन किसी आन्दोलन या विचारधारा से प्रभावित नहीं रहा, वह भारतीय समाज के आलोचनात्मक परीक्षण का रचनात्मक परिणाम है।

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय यथार्थ के अत्यन्त सतर्क और विलक्षण उद्घाटनकर्ता हैं श्रीलाल शुक्ल। उन्होंने रचनात्मकता का जैसा जादु बिखेरा, वैसा उनके अतिरिक्त अन्य किसी से सम्भव न हुआ। उपन्यास,

कहानी, निबन्ध, व्यंग्य, आलोचना आदि विविध विधाओं में फैला उनका साहित्य भारतीय समाज का महायथार्थ प्रकट करता है। साथ ही वह भाषा और शिल्प के अभूतपूर्व और अप्रतिम रूपों का आविष्कार भी करता है। स्वातंत्र्योत्तर साहित्य के महान गद्यकारों की कतार श्रीलाल शुक्ल के बिना अपवित्र मानी जाएगी। वह सशक्त होने के साथ-साथ अपूर्व रचनाकार भी हैं। अपूर्व इस अर्थ में कि उन्होंने यथार्थ को जिस दृष्टि से देखा और अभिव्यंजना के जिन नये रूपों में प्रकट किया, वैसा उनके पहले सम्भव न था और बाद में भी उनके अलावा कहीं सम्भव न हुआ। इस प्रकार श्रीलाल शुक्ल का लेखन कम से कम हिन्दी संसार के लिए विलक्षण घटना की तरह रहा है।

श्रीलाल शुक्ल यथार्थ में प्रेमचन्दोत्तर युग के सशक्त हस्ताक्षर रहे हैं। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास-साहित्य में बाबू श्रीलाल शुक्ल लिखित उपन्यास 'राग दरबारी' का विशिष्ट स्थान है। यह उपन्यास साठोत्तरी व्यंग्य उपन्यासों की परम्परा में मील का पत्थर है और उसे हिन्दी उपन्यासों की ऐतिहासिक उपलब्धि कहा जा सकता है। सम्पूर्ण उपन्यास साहित्य में व्यंग्येतर सामग्री के साथ जीवन के विविध क्षेत्रों की असंगतियों की ऐसी तीक्ष्ण अभिव्यक्ति, विडम्बनाओं की ऐसी विद्रुपात्मक अभिव्यंजना तथा दूषित व्यवस्था के विरुद्ध ऐसा तीव्र आक्रोश मूलक स्वर अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।

श्रीलाल शुक्ल की समस्त रचनाओं में 'राग दरबारी' प्रभावी रचना है। वस्तुतः श्रीलाल शुक्ल ने स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी के व्यंग्यात्मक उपन्यासों की परम्परा का बदलाव अपने 'राग दरबारी' में प्रस्तुत किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की भारत की राजनैतिक व्यवस्थाओं का ऐसा तेजाबी एवं व्यंग्यात्मक प्रस्तुतीकरण सर्वप्रथम हुआ है। "उनकी सशक्तता इसमें है कि श्रीलाल शुक्ल हिन्दी के व्यंग्योपन्यासों की परम्परा का कीर्तिस्तम्भ रहा है।"^{५६}

सशक्त हस्ताक्षर श्रीलाल शुक्ल ने हिन्दी साहित्य की परम्परा में बढावा करने के बजाय उसके समानांतर खड़े होने का जोखिम उठाया। न केवल इतना, बल्कि उनके लेखन ने रुढ़िगत साहित्य की जड़ता, और अपनेपन की बड़ी पिटाई की। स्वाभाविक था कि इस प्रकार की प्रवृत्तियों

से तल्लीन साहित्य के चाहकों की चेतना पर भी व्यथा प्रकट हुई। इस सम्बन्ध में यह कहना भी अनुचित नहीं होगा कि अपने समय के हिन्दी आलोचक को जितना असहाय और हास्यास्पद श्रीलाल शुक्ल ने बनाया, उतना अन्य किसी रचनाकार ने नहीं। उनके 'राग दरबारी' उपन्यास को लें, उसकी यथार्थ-सम्पन्नता और कलात्मक आविष्कृति से उस समय की हिन्दी आलोचना का एक हिस्सा विमूढ हो गया था। निस्संदेह श्रीलाल शुक्ल ऐसे रचनाकार हैं जिन्हें उनकी कृतियों की शक्ति और उनके प्रति लाखों पाठकों की दीवानगी ने सफलता के शिखर पर पहुंचाया और आलोचकों को उन्हें समझना तथा स्वीकार करना पड़ा।

स्वतंत्रोत्तर या प्रेमचन्दोत्तर युग के सशक्त हस्ताक्षर बनकर श्रीलाल शुक्ल रुढ़िग्रस्त हकहरेपन, अध्यात्म, प्रेम, ऋतुविषयक चित्रण मात्र से साहित्य का सरोकार अस्वीकृत करते हैं। उनके मतानुसार किसी लेखक के लिए उसका देश, काल और समग्र परिवेश साहित्य का प्रधान रिश्तेदार होता है। रचनाकार की मूल प्रतिबद्धता को श्रीलाल शुक्ल किसी बनी-बनायी सैद्धांतिक शब्दावली में परिभाषित नहीं करते हैं इसलिए अपने लेखन को तटवर्ती मानते हुए धारा के बीच जाकर लहरों का मुकाबला करने का साहस और ताकत को लेखन के माध्यम से प्राप्त करने का विश्वास प्रकट करते हैं। बाबू श्रीलाल शुक्ल के साहित्य में व्यंग्य एक ढंग न होकर साहित्याविष्कार का सशक्त माध्यम है। विसंगतियों का मार्मिक चित्रण करते हुए हँसते-हँसते विचारोन्मुख कर देने वाली सहज भावाकुलता बाबू श्रीलाल शुक्ल के औपन्यासिक व्यंग्य की विशेषता है।

श्रीलाल शुक्ल यथार्थ में सशक्त, बलवान उपन्यासकार, व्यंग्यकार है। अपने एक साक्षात्कार के दौरान उन्होंने कहा था- “उपन्यास लिखने में जो उपकथाएँ होती हैं, उन्हें मैं पूरी तरह सौचता नहीं हूँ, उनका आविष्कार लिखते समय ही होता है। बाद में पहले की घटनाओं का रूप भी बदलना पड़ता है और कभी-कभी वे घटनाएँ खारिज भी कर दी जाती हैं। जहाँ मुझे भाषागत कृत्रिमता नजर आती है या पता चला कि भावना का आवेग

उसमें ज्यादा है या अनावश्यक विशेषणों की भरमार हो रही है तो मैं उसको काटता-छाँटता हूँ। कोशिश करता हूँ कि वह देखने में, पढ़ने में बहुत ही साधारण मालूम हो, हाँ ध्वनि उसकी असाधारण हो।’^{१५७}

श्रीलाल शुक्ल की सशक्तता इस बात में है कि वे लेखन और अस्तित्व दोनों में ही अलग हैं। उनकी अलगता का स्रोत क्या है ? शायद ‘परस्पर विरुद्धों का खूबसूरत उपयोग’। यह श्रीलाल शुक्ल ही हैं जिनमें एक साथ ग्रामीण और आधुनिक शहरी एक साथ उपस्थित हैं। उनकी ज्यादातर रचनाओं में दोनों जीवन-दृष्टियों का सहमेल दिखाय देता है। इसीलिए उनका लेखन ग्रामीण यथार्थ को लेकर रोमान, करुणा और हाय-हाय से मुक्त है तो शहरी जीवन के अजनबीपन, आत्मदया जैसे नुस्खों से भी सुरक्षित है। केवल ग्रामीण और शहरी के संबंध में ही नहीं, अनेक ढंग से वे दो विरुद्धों की शक्ति अपनाकर तीसरी महाशक्ति बन जाते हैं। उनके व्यक्तित्व को ही लें, पहनावा, रहन-सहन, खान-पान हर जगह आपको देहात और नगर का सहजीवन दिखेगा। वह सूट-बूट-टाई में दिखेंगे तो धोती-कुर्ते में भी दिखेंगे। फाग में गाव जाना नहीं भूलेंगे तो हो सकता है कि उपन्यास लिखने के लिए वह गर्मी में किसी हिल स्टेशन चले जाएँ।

श्रीलाल शुक्ल का हस्ताक्षर स्वातंत्र्योत्तर भारत की जनतंत्र की कथित आधुनिक और विकास की आलोचना है। वह अपने गहरे अर्थों में सभ्यता-समीक्षा का सर्जनात्मक प्रतिरूप है। उनके उपन्यासों, कहानियों, निबंधों और व्यंग्यलेखों को मिलाकर समग्र पाठ किया जाए तो हम पाएंगे कि उन्होंने लोकतंत्र के पक्ष से भारतीय जनतंत्र की असफलता और उसकी हिंसा की निर्मम भर्त्सना की है। इसी बिन्दु पर वह नारे की शक्ल में नहीं, लेकिन लेखकीय भूमिका में भारतीय सत्ता का प्रतिपक्ष प्रस्तुत करते हैं।

२.३ साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास एवं उत्तरशती तक के हिन्दी

उपन्यास की विकासयात्रा : एक विहंगावलोकन

आधुनिक हिन्दी साहित्य में स्वातंत्र्योत्तर काल तो अपना विशेष महत्त्व रखता ही है किन्तु सन् साठ का वर्ष भी अपनी अलग पहचान,

विशेषता लिए हुए है। साठोत्तरी युवा लेखकों ने अपनी रचनाओं को जिन अनछूई दिशाओं की ओर मोड़ दिया है उसके फलस्वरूप साठोत्तरी हिन्दी साहित्य अनेक सामयिक पत्र-पत्रिकाओं तथा समीक्षकों में चर्चा का मुख्य विषय रहा है। साठ के बाद के 'साठोत्तरी उपन्यास' आदि फतवे भी दिए जा रहे हैं। बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध एक अजीब असन्तोष, अविश्वास, अस्वीकार, बौद्धिक तथा वैचारिक संघर्ष, मानसिक कशमकश और परम्परागत जीवन-पद्धति के खोखलेपन के एहसास का जन्मदाता है। स्वतन्त्रता के बाद मूल्यहीनता, स्वार्थ, सत्तालोलुपता तथा भ्रष्टाचार के बढ़ते जाने के कारण १९६० तक पहुँचते-पहुँचते भारतीय समाज सर्वाधिक अनुशासनहीन, विघटित, सर्वाधिक स्वार्थी एवं अव्यवस्थित बन गया। आन्तरिक और बाह्य संघर्ष ने भारतीय जनमानस को परास्त कर डाला। इस बात को लेकर सन् १९६० ई. के बाद हिन्दी उपन्यासों में अनेक नई प्रवृत्तियों का उद्भव और विकास हुआ।

साठोत्तरी-युग के प्रमुख उपन्यासकार हैं- श्रीलाल शुक्ल, अमृतलाल नगर, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, रांगेय राघव, नागार्जुन, फणीदेवराज, अज्ञेय, राजेन्द्र यादव, लक्ष्मीकान्त वर्मा, लक्ष्मीनारायण लाल, मन्मथनाथ गुप्त, शैलेश मटियानी, शिवप्रसाद सिंह, गिरिराज किशोर विनोदकुमार शुक्ल, नरेन्द्र कोहली, हरिशंकर परसाई, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, प्रभाकर माचवे, विष्णु प्रभाकर, रवीन्द्र कालिया, हिमांशु श्रीवास्तव, मुद्राराक्षस, रमाकांत, रामदरश मिश्र, रमेश बक्षी, जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, विवेकीराय, भीष्म साहनी, महीम सिंह, भैरवप्रसाद गुप्त, गंगाप्रसाद विमल, निर्मल वर्मा, गिरीश अस्थाना, गोपाल उपाध्याय, ठाकुरप्रसाद सिंह, कमलेश्वर, मनोहरश्याम जोशी, गोविंद मिश्र, मनमोहन सहगल, देवेश ठाकुर, विपिन चतुर्वेदी, काशीनाथ सिंह, सत्येन्द्र शर्मा, योगेश गुप्त, हजारी प्रसाद द्विवेदी, कमलकांत त्रिपाठी, शरत्कुमार, रघुवंश, अरुण प्रकाश, अब्दुल बिस्मिल्लाह, राजकमल चौधरी, राजकुमार भ्रमर, सुरेन्द्र वर्मा आदि।

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों में कृष्णा सोबती, ममताकालिया, उषा प्रियंवदा, मन्नु भंडारी, शशिप्रभा शास्त्री, मंजुल भगत, मेहरुन्सिसा परवेज, निरुपमा सेवेती, सूर्यबाला, कुसुम अंसल, मृदुलागर्ग, मैत्रेयी पुष्पा, राजी सेठ, चित्रा मुद्गल, नासिरा शर्मा, अलका सरावगी, डॉ. इन्दुवली, मृणाल पाण्डेय, कृष्णा अग्निहोत्री, मालती जोशी, मीनाक्षी पुरी आदि महिला उपन्यासकारों साठोत्तरी कालखंड में महत्वपूर्ण उपन्यास लिखकर इस काल को बढावा दिया है।

“साठोत्तरी उपन्यासों में प्रयोगशीलता को प्रमुखता प्राप्त हुई है और इनमें कथ्य, शिल्प एवं शैली के इतने अधिक स्वर बुलन्द हो रहे हैं कि इसे हिन्दी उपन्यास का ‘प्रयोगकाल’ ही कहा जा सकता है।”^{५५} सन् १९६० के आसपास मध्यवर्गीय और बुद्धिजीवियों की जो नई पीढ़ी सामने आई उसने खूद के साथ समस्त समाज को अन्धकार में पाया। उन्होंने अपने चारों ओर फैले हुए मध्यवर्गीय और निम्न मध्यवर्गीय समाज की विवशताओं कठिनाइयों को देखा। निम्न वर्ग जी-तोड़ श्रम, महेनत तथा प्रयत्नों की पराकाष्ठा के बावजूद गरीबी एवं लाचारी की भट्ठी में उबलते जा रहे हैं। धूर्त, भ्रष्ट, पदलोलुप और दल बदलू नेताओं के कारण बनी अराजकता जिसके फलस्वरूप निरंकुश शासन में जनता को कोई विश्वास नहीं रह गया है। व्यक्तिगत स्वार्थ ने सामाजिक एवं राष्ट्रीय दायित्व भुलाने को मजबूर कर दिया। बढ़ती आबादी तथा उससे निर्मित बेरोजगारी की समस्या ने देश को एक संकटमय स्थिति में घेर लिया। व्यवसनाधीन भ्रष्ट पुलिस व्यवस्था तथा कमजोर कानून व्यवस्था से देश में अव्यवस्था के साथ अराजकता फैल गई। युवा साहित्यकारों के लिए सन् १९६० के बाद का काल मोहभंग एवं विद्रोह का विकट दौर है। लेकिन सामूहिक रूप से देखने पर इन युवा साहित्यकारों का विद्रोह एक सशक्त विचारधारा की भूमि पर खड़ा पाया जाता है। यह विद्रोही स्वर साठोत्तरी उपन्यासों में उग्र रूप से दिखाई देता है।

साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासकारों की जो नई पीढ़ी उभरी उसमें अपने युग की समस्त चेतना, संवेदना की चमक देखी जा सकती है। इस

युग के उपन्यासकारों ने उपन्यास क्षेत्र में अनेक नए प्रयोग किये हैं। साठ के बाद का हिन्दी उपन्यास व्यक्तिबोध, युगबोध, भावबोध और नये संवेदन का उपन्यास है। इसमें यथास्थितिवाद के स्थान पर संघर्ष और विद्रोह का आग्रह परम्परागत मूल्यवादी दृष्टि के स्थान पर अनास्था एवं मूल्यहीनता का स्वर, घिसीपिटी भाषा के स्थान पर प्रसंगवत भाषा का प्रयोग प्रमुखता से किया जा रहा है। आज का उपन्यास इतनी विभिन्न दिशाओं की ओर नए प्रयोग के साथ बढ़ रहा है क्योंकि समय बदल चुका है तथा युग की माँग भी बदल गई है। इसलिए साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास अपने पूर्ववर्ती परम्परागत मान्यताओं, मूल्यों तथा जीवनगत समस्याओं के साथ वही नहीं रुका बल्कि बहुत आगे बढ़ गया है।

आज का साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास व्यक्ति, समाज, देश तथा परिवेश में भागे हुए क्षणों की तीव्र अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। वह समाज एवं राष्ट्र की मृत मान्यताओं, हर दिन टूटकर बिखरती हुई परम्पराओं तथा सामाजिक, राजनीतिक अनैतिकता के विरोध में अत्यन्त अशांत युवा मानस की अभिव्यक्ति है। उसे आज की एकांतिक कटी हुई दोहरी जिन्दगी एवं क्षणप्रतिक्षण बदलते मानवीय सम्बन्धों की अभिव्यक्ति का माध्यम कहा जा सकता है।^{१५६}

साठोत्तरी युवा उपन्यासकारों ने अपनी चिकित्सक बौद्धिकता से इन सबका अभ्यास तो किया है लेकिन उसे पचाकर विशुद्ध बौद्धिक स्तर पर अपनी सर्वथा अलग शैली में उसे रूपायित किया है। इस अर्थ में साठोत्तरी उपन्यास बौद्धिका से विशुद्ध बौद्धिकता की ओर अग्रसर हो रहा है। उसमें भावुकता थोड़ी परन्तु तर्क-वितर्क अधिक पाया जा रहा है। इसमें स्थूल बातों, प्रसंगों आदि के स्थान पर उनकी सूक्ष्मता तथा बारीकियों पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है। उपन्यास का अब यह आशय माना जाने लगा है कि उसके माध्यम से मनुष्य का अपने भोगे हुए यथार्थ से साक्षात्कार हो और प्रकृति, परिवेश, सामाजिक व्यवस्था तथा अन्तरंग भावना के बीच तथा अर्थपूर्ण सामंजस्य स्थापित हो सके। यह उपन्यास अब समाज के वर्ग से हटकर

व्यक्ति तथा उसकी अतः चेतना को अत्यधिक प्रधानता दे रहा है। व्यक्ति एवं उसकी सूक्ष्म मानसिक जटिलताएँ, समस्याएँ अथवा विशिष्ट चेतना साठोत्तरी उपन्यास का बिन्दु है।

साठोत्तरी उपन्यास आज के अस्तित्व तथा उसके आयाम को पूर्ण रूप से विविधता के साथ प्रस्तुत करने का प्रामाणिक प्रयास कर रहा है। भारतीय जीवन के महानगर, कस्बा तथा गाँव की जिन्दगी की विविध समस्याएँ तथा उनके रूप इन उपन्यासों में यथार्थ धरातल पर चित्रित किए जा रहे हैं। इस पीढ़ी में राही मासूम रजा का 'आधा गाँव', श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी', मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी', कमलेश्वर का 'समुद्र में खोया हुआ आदमी', विवेकी राय का 'लोककण', राजेन्द्र यादव का 'सारा आकाश', राजकमल चौधरी का 'मछली मरी हुई', रामदरश मिश्र का 'जल टूटता हुआ', शिवप्रसाद सिंह का 'अलग-अलग वैतरणी', ममता कालिया का 'बेघर', मणिमधुकर का 'सफेद मेमने', गिरिराज किशोर का 'चिड़ियाघर', रमेश बक्षी का 'अठारह सूरज के पौधे', जगदम्बाप्रसाद दीक्षित का 'मुरदाघर', शरद देवड़ा का 'कॉलेज स्ट्रीट के नए मसीहा' तथा गोविन्दमिश्र का 'लाल-पीली जमीन' आदि उपन्यास उल्लेखनीय हैं।

इस पीढ़ी के साठोत्तरी उपन्यासकारों ने समाज के विभिन्न वर्गों की अनेकविध समस्याओं के साथ ही भ्रष्ट एवं आलसी नौकरशाही, दिन-प्रतिदिन टूटती न्याय-व्यवस्था, आपातकाल का उत्पीड़न आदि प्रश्नों को प्रस्तुत किया है। फिर भी नई पीढ़ी के उपन्यासकारों का ध्यान अभी तक जीवन के अनेक अनछूए पहलुओं की ओर नहीं गया है क्योंकि इन अनछूए पहलुओं को विषय-वस्तु बनाकर सफल उपन्यासों का सृजन अत्यन्त कम हुआ है या हुआ ही नहीं है। युद्ध की घटनाओं पर एक या दो रचना का निर्माण हुआ है परन्तु आधुनिक परिवेश में पाकिस्तान तथा चीन के साथ लड़े गए युद्धों ने जहाँ समस्त भारत को झकझोर डाला, वहाँ हिन्दी उपन्यास मौन ही रहा है।

“आज का उपन्यासकार ऐतिहासिक, सामाजिक या राजनीतिक उपन्यास नहीं लिखता, वह उनके माध्यम से आधुनिक व्यक्तिचेतना को परखता, प्रतिष्ठित करता और उसका मूल्यांकन करता है।”^{६०}

साठोत्तरी उपन्यास आधुनिक युग में जनता का संघर्षशीलता के प्रति भरोसा और २१वीं सदी के प्रति आशाएँ जगाते हैं, क्योंकि पिछले अनेक वर्षों से उपन्यासकारों में अद्भूत सक्रियता दिखाई देती हैं। नयी भावुक्ता, अस्तित्व वैविध्य को लेकर औपन्यासिक बदलाव हुआ है। इसी समय उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनके उपन्यास में वैविध्य परिलक्षित है। “श्रीलाल शुक्ल का आशय है अपने समय में अपने समाज को खोजना और उसकी वास्तविक पहचान का पुनर्सृजन करना। उनका यथार्थ एक नई व्याख्या मांगता है। उन्होंने उपन्यास लिखने के लिए कभी भी मात्र कुशलता का सरल मार्ग नहीं अपनाया, न उन्होंने इतिहास की शरण ली, न पुराणों की। उनके लिए अपना समय, अपना समाज और अपने लोग ही महत्वपूर्ण हैं। एक उपन्यासकार के रूप में वे आजादी के बाद के समाजशास्त्री और इतिहासकार हैं। वे तरह-तरह से स्वतंत्रता के बाद के समाज की मूल्यहीनता और आधुनिकता के संकट के साथ-साथ राजनीति के हाथों पराजित होते समाज को इतिहास में प्रवेश दिलाते हैं।”^{६१}

साठोत्तरी युवा उपन्यासकारों का अनुभव-अत्यन्त सीमित होने के कारण वे इन विषयों पर सफल रचनाओं का निर्माण नहीं कर सके। यह बात काफी हद तक सही भी है मगर धने नी हार को छेदकर बाहर आना कठिन कार्य नहीं है। आज की प्रतिभाशाली युवा उपन्यासकार पीढ़ी से और भी अधिक आशाएँ हैं जिससे हिन्दी का उपन्यास अपने अंतिम विकास की ओर पहुँच सकता है।

● संदर्भ सूची ●

- (१) डॉ. त्रिभुवनसिंह : साहित्यिक निबन्ध, पृ.३३२
- (२) वही, पृ.३३२
- (३) डॉ. नवीन कलार्थी : हिन्दी-गुजराती उपन्यासों में गाँधीवाद, पृ.८७
- (४) डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त : साहित्यिक निबंध, पृ.४१७
- (५) डॉ. विजयपाल सिंह : आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.१४७
- (६) डॉ. सुरेन्द्रकुमार यादव : समसामयिक संदर्भ, पृ.४५
- (७) डॉ. त्रिभुवनसिंह : साहित्यिक निबन्ध, पृ.३३३
- (८) डॉ. अमरप्रसाद जायसवाल : हिन्दी उपन्यासों का वर्गगत अध्ययन पृ.१७३
- (९) डॉ. नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.४७२
- (१०) गोपालराय : हिन्दी उपन्यास का इतिहास, पृ.१६३
- (११) डॉ. नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.५११
- (१२) इन्द्रनाथ मदान : आज का हिन्दी उपन्यास, पृ.६६
- (१३) वही, पृ.६७
- (१४) डॉ. प्रतापनारायण टंडन : हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास, पृ.२१३
- (१५) डॉ. सुरेन्द्रकुमार यादव : नागार्जुन का उपन्यास साहित्य, पृ.५२
- (१६) वही, पृ.५१
- (१७) डॉ. त्रिभुवनसिंह : साहित्यिक निबन्ध, पृ.३३३
- (१८) डॉ. देवकृष्ण मौर्य : उपन्यास शिल्पी अज्ञेय, पृ.१७०

- (१६) इन्द्रनाथ मदान : आज का हिन्दी उपन्यास, पृ.६३
- (२०) डॉ. नरेन्द्र मोहन : आधुनिक हिन्दी उपन्यास, पृ.१०५
- (२१) डॉ. विजयपालसिंह : आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.१४६
- (२२) वही, पृ.१५०
- (२३) डॉ. राजनाथ शर्मा : साहित्यिक निबन्ध, पृ.५८०
- (२४) डॉ. नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.४७३
- (२५) डॉ. विजयपालसिंह : आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.१५१
- (२६) डॉ. कृष्णदेव शर्मा : अनुपम साहित्यिक निबन्ध, पृ.५१८
- (२७) डॉ. लक्ष्मीकांतसिंहा : हिन्दी उपन्यास साहित्य का उद्भव और विकास, पृ.१८७
- (२८) डॉ. विजयपालसिंह : आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.१५३
- (२९) राजनाथ शर्मा : साहित्यिक निबन्ध, पृ.५८२
- (३०) सं. डॉ. नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.५१३
- (३१) डॉ. विजयपालसिंह : आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.१४३
- (३२) डॉ. नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.४७२
- (३३) डॉ. त्रिभुवनसिंह : साहित्यिक निबन्ध, पृ.३३४
- (३४) डॉ. प्रतापनारायण टंडन : हिन्दी उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास, पृ.१६७
- (३५) डॉ. रामदरश मिश्र : हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा, पृ.३६
- (३६) महेन्द्र चतुर्वेदी : हिन्दी उपन्यास, पृ.५६
- (३७) सं. कान्तीप्रसाद शर्मा : प्रेमचन्द के विचार, पृ.५०
- (३८) डॉ. विजयपाल सिंह : आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.७३

- (३६) डॉ.नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.५७५
- (४०) डॉ.विजयपालसिंह : आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.१५४
- (४१) सं.कान्तीप्रसाद शर्मा : प्रेमचन्द के विचार, पृ.७१
- (४२) शिवकुमार मिश्र : हिन्दी उपन्यास परम्परा और प्रेमचन्द पृ.८५
- (४३) डॉ.एम.विमला : प्रेमचन्द के उपन्यासों में चित्रित समस्याएँ, पृ.४५
- (४४) सं.कान्तीप्रसाद शर्मा : प्रेमचन्द के विचार, पृ.१२४
- (४५) डॉ.नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.५७६
- (४६) डॉ. विजयपालसिंह : आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.१५५
- (४७) डॉ. सुरेशसिन्हा : हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास, पृ.११३
- (४८) डॉ. सुरेन्द्रकुमार यादव : नागार्जुन का उपन्यास साहित्य, पृ.५५
- (४९) रमेशचन्द्र गुप्ता : भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और हिन्दी उपन्यास, पृ.१७१
- (५०) डॉ.नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.६७६
- (५१) डॉ.ब्रह्मस्वरूप शर्मा : हिन्दी उपन्यास की विकासयात्रा, पृ.१४२
- (५२) डॉ. रामदरश मिश्र : हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा, पृ.१३७
- (५३) मृत्युंजय उपाध्याय : हिन्दी के आंचलिक उपन्यास, पृ.२७३
- (५४) डॉ.कान्ती वर्मा : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, पृ.२३५
- (५५) डॉ.महेन्द्र चतुर्वेदी : हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण, पृ.१७७
- (५६) डॉ. कल्ला नंदलाल : व्यंग्यात्मक उपन्यास तथा रागदरबारी, पृ.४१
- (५७) डॉ.पी.वी. कोटमे : श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों का शिल्पविधान, पृ.२१
- (५८) डॉ.दंगलझाल्टे : उपन्यास समीक्षा के नये प्रतिमान, पृ.०७

- (५६) डॉ. वाष्णेय लक्ष्मीसागर : द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी
साहित्य का इतिहास, पृ. १६०
- (६०) डॉ. बेचन : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, पृ. १५२
- (६१) पत्रिका : उत्तरप्रदेश, जनवरी-१९६६, पृ. ०२

तृतीय अध्याय

- ३.० श्रीलाल शुक्ल का जीवन विकास : व्यक्तित्व एवं कृतित्व
- ३.१ प्रस्तावना
- ३.२ श्रीलाल शुक्ल का जीवन विकास
 - ३.२.१ जन्म एवं जन्मस्थान
 - ३.२.२ पारिवारिक परिचय
 - ३.२.३ बाल्यावस्था एवं शिक्षा-दिक्षा
 - ३.२.४ जीवनयात्रा का साधन
 - ३.२.५ विवाह एवं पारिवारिक जीवन
 - ३.२.६ आराधक मित्र
 - ३.२.७ धार्मिक जीवन
 - ३.२.८ प्रेरणा-एवं प्रोत्साहन
- ३.३ व्यक्तित्व
 - ३.३.१ शुक्लजी की स्वभावगत विशेषताएँ
- ३.४ शुक्लजी का कृतित्व-संसार
- ३.५ श्रीलाल शुक्लजी का कृतित्व-परिचय
 - ३.५.१ उपन्यास साहित्य
 - ३.५.२ कहानी संग्रह
 - ३.५.३ हास्य-व्यंग्य संग्रह
 - ३.५.४ जीवनी लेखन
 - ३.५.५ आलोचना
 - ३.५.६ सम्पादन
 - ३.५.७ बाल-साहित्य
 - ३.५.८ अनुवाद
 - ३.५.९ सम्मान, पद एवं पुरस्कार

३.० श्रीलाल शुक्ल का जीवन विकास : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

३.१ प्रस्तावना

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज को समझने के लिए जिन रचनाकारों ने अपने विचार, अपनी बातें प्रस्तुत की हैं, उनमें बाबू श्रीलाल शुक्ल का योगदान अद्भूत है। प्रभावशाली गद्यकार श्रीलाल शुक्ल वस्तुतः हमारे समय में बलवान साहित्य लिखते हैं यह किसने कहा? श्रीलाल शुक्ल की खासियत यह है कि वह साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने के पक्षपाती हैं। उनकी रचनात्मक दृष्टि के केन्द्र में व्यक्ति है। वे साहित्य में भारतीय रचनाकर्मी की समाज धर्मिता को उग्र स्थान प्रदान करते हैं। अपनी साहित्य-सफर के युग से ही श्रीलाल शुक्ल कठिन और बनावटी अस्तित्व के प्रति पूर्ण-जागरूक दिखते हैं। हिन्दी साहित्य के शिखर रचनाकार श्रीलाल शुक्ल की प्रतिभा का गुणगान कई साहित्यकारों ने किया है।

बाबू श्रीलाल शुक्ल ऐसे गद्यकार हैं जिन्होंने लेखन के मिजाज को तो बदला ही, साथ में अपनी रचनाओं में भी पिछले को त्यागकर नया अपनाने की प्रक्रिया से गुजरते रहे। उनके उपन्यासों को ही लिया जाए तो, उनके हर नये उपन्यास ने पिछले उपन्यासों तक के पाठकों को अपनी नयी छवियों-भंगिमाओं के कारण चौंकाया है। अपने पहले उपन्यास 'सूनी घाटी का सूरज' से पहले पाठक श्रीलाल शुक्ल को 'अंगद के पांव' के व्यंग्यकार के रूप में पहचानते थे। पर 'सूनी घाटी का सूरज' में वह एकदम संजीदा साहित्य लेकर उपस्थित होते हैं।

विलक्षण गद्यकार श्रीलाल शुक्ल स्वातंत्र्योत्तर युग के प्रमुख व्यंग्यकारों में से एक हैं। इनका 'अंगद का पांव' व्यंग्य संग्रह १९५६ में प्रकाशित हुआ, जिसने उन्हें हिन्दी के समर्थ व्यंग्यकार के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। इनके व्यंग्य लेखन में एक विशिष्ट तनाव बना रहता है। उन्होंने सामाजिक सम्बन्धों के विखराव का संयमपूर्ण चित्रण प्रस्तुत किया है, साथ ही देश की टूटती अर्थव्यवस्था को उभारने का प्रयास भी किया है। सामाजिक,

राजनीतिक, साहित्यिक विसंगतियों और विकृतियों को उन्होंने अपने व्यंग्य का विषय बनाया है। शिक्षा जगत् की वर्तमान परीक्षा प्रणाली एवं अध्यापकों के नैतिक पतन पर चोट करते हुए वे कहते हैं- आज की परीक्षाएँ छात्रों के लिए भले ही बेकार हों, मास्टर्स के लिए बड़े काम की हैं। मानवीय गरिमा प्राप्त करने के प्रयास में पाशविकता की ओर झुके हुए संभ्रान्त समाज की खिल्ली उड़ाते हुए श्रीलालजी अपनी व्यंग्य रचना का परिचय दिया है।

बाबू श्रीलाल शुक्लजी की व्यंग्य-रचनाओं में ज्यादातर सात्त्विकता के दर्शन होते हैं। साहित्यिक अतिरंजना, भाषणबाजी, शहर देहात की समस्या, बेरोजगारी, अंग्रेजियत जैसे विषयों पर उन्होंने कठोर व्यंग्य किये हैं। व्यंग्यकार श्रीलाल शुक्ल व्यंग्य को एक हथियार के रूप में स्वीकार करते हुए कहते हैं - मैंने व्यंग्य को आधुनिक जीवन और आधुनिक लेखन के एक अभिन्न अस्त्र और एक अनिवार्य शर्त के रूप में पाया है। श्रीलाल शुक्ल के समग्र साहित्य में सभी विशेषताएँ बरकरार हैं। चाहे ग्राम्य जीवन के बारे में हो या शहरी संस्कृति के बारे में अभिव्यक्ति का कोई संकट नहीं है। हिन्दी जगत के सुपरिचित व्यंग्यकार तथा कथाकार श्रीलाल शुक्ल के संदर्भ में हिन्दी के अनेक समीक्षकों ने बहुचर्चा की है।

बाबू श्रीलाल शुक्ल की साहित्य साधना एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। उसमें अस्तित्व का स्वाद है। बल्कि जीवन को अभिव्यक्त करने की प्रक्रिया में ही वह प्रकट हुई है। वह प्रयोग, हुनर, चमत्कार की छाप छोड़ने और आलोचक की सहायता पाने की गरज से नहीं जन्मी है। इसका एक गवाह यही है कि संसार के नये से नये साहित्य और सिद्धान्तों के गहन सम्पर्क के बावजूद वह ऐसे रचनाकार हैं जिसने फैशनेबल साहित्यांदोलनों, नये 'वाद' आदि को कभी भी मदद नहीं दी, न ही उनकी सहायता ली। दूसरी और साठोत्तरी रचनाकार और नयी प्रवृत्तियाँ हमेशा उनकी जिज्ञासा, अपनापन और भरोसे को प्राप्त करती हैं। युवा लेखकों को उनके जितना पढ़ने वाले कम लेखक होंगे। यह ढूंढने में बड़ी समस्या होगी कि वह कौन सा महत्वपूर्ण उपन्यास है जिसे उन्होंने नहीं पढ़ा है।

श्रीलाल शुक्ल अपने उपन्यास लेखन का प्रारंभ व्यक्ति की अंतरात्मा में उथल पुथल मचाती स्वेच्छाचारिता और अराजकता के चित्रण से नहीं करते। निर्मम तटस्थता और नयी तार्किक समजदारी से उनके साहित्य को सामान्यतया 'प्रोत्साहन और सद्भाव' से अपनाया गया। वह अपने समकालीनों की तरह नवीन रोमांटिक आग्रह के शिकार न बने। यथार्थ को समझने में उन्होंने जिस बौद्धिक ईमानदारी का परिचय दिया, उसे सत्ता तंत्र कुंठित न कर पाया। परम्परा, अतीत, पुरातन संस्कार आदि पर भी नये ढंग के संदेहवादी रूख का परिचय देकर चीजों को उनके ऐतिहासिक संदर्भों में परिभाषित करने में उन्हें कोई मुश्किल न हुई। उनकी रचनाशीलता के केन्द्र में उस जमाने का अपरिभाषित निरा यथार्थ छाया हुआ दिखाय देता है। उस यथार्थ को पकड़ने के लिए कला के पुराने परखे हुए, आजमाये हुए और घिसे हुए औजारों का वे इस्तेमाल ही नहीं करते।

श्रीलाल शुक्ल हरिशंकर परसाई के समकालीन रहें हैं। उन्होंने 'स्वर्णग्राम और वर्षा' नामक रचना से व्यंग्य के क्षेत्र में प्रवेश किया। 'अंगद का पाँव' की रचनाएँ जो सन् १९७० से पूर्व लिखी गई थीं, श्रीलाल शुक्लजी को व्यंग्यकार के रूप में प्रतिष्ठित करने में समर्थ हैं किन्तु उनका उपन्यास 'राग दरबारी' उन्हें श्रेष्ठ व्यंग्यकार के पद पर बिराजमान करता है। 'राग दरबारी' में सामयिक यथार्थ को सहजता और गहराई के साथ रखा गया है। इस उपन्यास की अनोखी बात तो यह है कि इसमें किसी समस्या विशेष या पात्र विशेष पर व्यंग्य नहीं है बल्कि सारे देश को ही व्यंग्य का विषय बनाया गया है। यहाँ इतना कह देना पर्याप्त है कि श्रीलाल शुक्ल अपने व्यंग्यबोध के लिये प्रसिद्ध हुए। परिवेश में व्याप्त विसंगतियों को उन्होंने खूद अनुभव किया है इसी कारण सशक्त व्यंग्य प्रहार करने में वे कुशल हैं।

हिन्दी में व्यंग्य विधा को स्थापित कर उसकी तेजी में अधिकाधिक निखार लानेवालों में श्रीलाल शुक्ल का नाम भी बड़े आदर के साथ लिया जाता है। हम यह जान ही चुके हैं कि शुक्लजी का व्यंग्यफलक बहुत अधिक विस्तृत है। सन् १९७० से सन् १९९० तक के उनके प्रकाशित व्यंग्य

संकलनों में न केवल इस व्यापकता के अधिक दर्शन होते हैं अपितु यह सिद्ध होता है कि द्विदशकों की इस विशिष्ट अवधि में भी शुक्लजी की पैनी नज़र ने अपने आसपास होती हुई घटनाओं को बारीकी से देखा है तथा उनमें जो असंगतियाँ दिखायी दीं, उनमें वे अनदेखा-सा व्यवहार नहीं कर पाये हैं। उन्होंने उन असंगतियों को अपनी लेखनी द्वारा आवाज़ प्रदान की है। उक्त द्विदशक की अवधि में शुक्लजी ने राजनीति, नेता, प्रशासन आदि में ही नहीं, संस्कृति, साहित्य, शिक्षा, नौकरी, दूरदर्शन, समाचारपत्र, अमीरी-गरीबी, युवावर्ग हर कहीं असंगतियों का फैलाव देखा है और इन असंगतियों को दूर करने की इच्छा से उन्हें वे पाठकों के सामने लाते हैं। इनके साथ ही कभी वे बुद्धिजीवियों पर व्यंग्य कसते हैं तो कभी आत्मव्यंग्य करते हुए भी नज़र आते हैं।

श्रीलाल शुक्लजी द्विदशकों में राजनीति तथा नेता समाज पर पूरी तरह छाये हुए दिखाई देते हैं किन्तु क्या राजनीति तथा नेता के द्वारा सचमुच समाज की सेवा की जा रही है ? आज तो केवल निजी स्वार्थ हेतु लोग राजनीति में प्रवेश करते हुए दिखायी देते हैं। जनता को बड़े-बड़े शब्दों के जाल में फँसाकर अपना असली रूप छुपाते हैं। आज़ादी से पहले गरीब भारतीयों को विशेषकर किसानों को खूब सताया गया था किन्तु आज़ादी के बाद भी आर्थिक उभार तथा राजनीति का फायदा किसानों को नहीं मिल पाया। वे तो आज भी गरीब है, कमजोर बीमार हैं जिन्हें कोई आर्थिक सहायता नहीं मिलती। सत्तापतियों के दिमाग में सिर्फ अपनी बात होती है। झूठे सेवाभाव को दिखाकर वोट पाने तक के लिए मात्र आज का नेता कार्यरत है। राजनीति के इस विगड़े तथा और अधिक बिगड़ते जा रहे रूप को देखकर ही शुक्लजी व्यथित हुए हैं।

साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत शुक्लजी के 'राग दरबारी' उपन्यास में भी भरपूर व्यंग्य देखने को मिलता है। राजनीतिक दल, चुनाव, आंतक, प्रशासन, पुलिस की अकर्मण्यता, शिक्षा, समाज, वन महोत्सव, मिलावट जैसे विविध विषयों पर इस उपन्यास में तीव्र कटाक्ष किया गया है। शुक्लजी अपनी शैली तथा भाषा से अपने व्यंग्य साहित्य को रोचक बनाने में संपूर्ण सफल हैं।

इस तरह बड़ी ईमानदारी के साथ श्रीलाल शुक्ल साहित्य कला, धर्म, संस्कृति, राजनीति, इतिहास आदि किसी भी क्षेत्र की कमियों को पाठक के सामने लाकर उसे जागृत करने का प्रयास करते हैं। इन क्षेत्रों की विकृतियों की मानों वे शल्य चिकित्सा कर इनमें सुधार लाना चाहते हैं। वे समाज का पतन देखकर चुप नहीं रह सकते। औरों को भी अपने साथ लेकर उसके सुधार कार्य में जुट जाना चाहते हैं। इसलिए गिरते हुए समाज को संभालकर उठने-उठाने की वे प्रेरणा देते हैं। इस सब को देखकर हम उन्हें निस्संदेह, प्रमुख व्यंग्यकारों की पंक्ति में विराजमान देखकर प्रसन्न होते हैं। अंत में कहा जाय तो श्रीलाल शुक्ल के साहित्य में अनेक सुधार छिपे हुए हैं।

१.२. श्रीलाल शुक्लजी का जीवन विकास

श्रीलाल शुक्लजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को प्रकट करने से पहले उनके जीवन विकास का परिचय उपलब्ध कर लेना मुनासिब होगा। उनके जीवन विकास को देखे तो पहले उनका चरित्र उद्भव एवं जन्मस्थान को लेकर बाबू श्रीलाल शुक्लजी को प्रस्तुत करना चाहिए। इसके बाद अस्तित्व विकास में उनके माता-पिता, उनको आगे बढ़ाने में उनका क्या योगदान रहा है।

श्रीलाल शुक्लजी के जीवन विकास में उनका बचपन, शिक्षा-दिक्षा, जीविकार्जन, विवाह, पारिवारिक अस्तित्व, साहित्य सेवी स्नेही, प्रेरणा-स्त्रोत आदि। इसको त्यागकार जीवन विकास में सृजन, साहित्ययात्रा, पुरस्कार को चित्रित कर सकते हैं।

१.२.१ जन्म एवं जन्मस्थान

साठोत्तरी युग के विलक्षण गद्यकार, स्वातंत्र्योत्तर या प्रेम-चन्दोत्तर युग के गुणवता युक्त साहित्यकार बाबू श्रीलाल शुक्लजी का जन्म लखनऊ जनपद के मोहनलालगंज कस्बे के निकटवर्ती ग्राम अजरौली में ३१ दिसंबर १९२५ अर्थात् बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक को एक सात्त्विक, सदाचार, सुसंस्कृत कृषक परिवार में हुआ।

१.२.२ पारिवारिक परिचय

बाबू श्रीलाल शुक्लजी ने अपने पिता को लेकर आपने ही लिखा है कि “मेरे पिता को निर्धनता, सात्त्विकता और लिपिबद्ध विचार तथा संगीत का संस्कार विरासत में मिला”^१ बाबू श्रीलाल शुक्ल के दादा पंडित गदाधर प्रसाद शुक्ल संस्कृत, हिन्दी, उर्दू एवं फारसी भाषा के बहुत बड़े पंडित तथा संगीत प्रेमी थे। कुछ वर्ष वह नजदीक के एक स्कूल में अध्यापक भी थे। किसी वजह से त्यागपत्र देकर एक बड़े पंडित लेकिन सामान्य कृषक बनकर रह गये। उन्होंने आधी उम्र में सितार बजाना भी सीखा था। बाबू श्रीलाल शुक्ल के जन्म के कुछ ही समय पहले उनकी मृत्यु हुई। उनके पिता पंडित ब्रजकिशोर को संस्कृत, हिन्दी एवं उर्दू भाषा का सामान्य ज्ञान था तथा कसरत और संगीत का भी शौक था उन्हें हिन्दी और उर्दू की बहुत सी कविताएँ याद थी, जिनमें से अधिकांश कविताएँ उन्होंने अपने पुत्र को बचपन में धरोहर, अमानत के रूप में दे दी थी। पिताजी का कोई कारोबार नहीं था। वे अस्तित्व के पूर्वार्द्ध में अपने पिता पर बाद में फिर कुछ वर्ष तकदीर तथा लगातार कम होती हुई खेती पर और जीवन के अंतिम समय में अपने बड़े पुत्र पर आधारित थे। सन् १९४५ में जब बाबू श्रीलाल शुक्ल प्रयाग विश्वविद्यालय में पढ़ रहे थे, तब पिता ब्रजकिशोर का जीवन-काल समाप्त हुआ।

श्रीलाल शुक्ल ने अपने एक आत्मकथ्य में ‘उन्नीसवीं सदी के अंत में पैदा होने और बराबर गाँव में रहने वाली’ अपनी माँ का जिक्र करते हुए लिखा है : “खास बात यह है कि जन्दगी के बहुरंगी पक्षों के प्रति उनका उत्साह कभी कम नहीं हुआ। बाद में मेरे साथ रहते हुए वह क्रिकेट और बैडमिण्टन का मैच बड़ी दिलचस्पी से देखती थीं। उन्हें सिनेमा देखने और गाना सुनने का भी खास शौक था। जब वह ५७ साल की थीं, मैंने उन्हें राइफल चलाना सिखाया और उनका निशाना अच्छा-खासा हो गया था।”^२ माता देहाती अस्तित्व से बंधी हुई थी। गाँव के वातावरण में रहकर भी उन्हें पढ़ने लिखने का मौका मिल गया था और उन्हें हिन्दी और अंक की सामान्य जानकारी थी। साधनहीन होते हुए भी उसमें उदारता तथा द्रढ संकल्प भरा पड़ा था। सन्

१९६० में अपने सबसे छोटे पुत्र बाबू भवानी शुक्ल के पास अल्मोड़ा में उनका जीवनांत हुआ।

१.२.३ बालावस्था एवं शिक्षा-दीक्षा

अजरौली गाँव में बाबू श्रीलाल शुक्ल के वंश के अनेक परिवार थे, जिनमें दो उन्नतिशील थे, बाकी परिवार बहुत गरीब था। शुक्लजी का परिवार अपनी गरीबी के होते हुए भी पिछली तीन पिढ़ियों से अध्ययन की परम्परा से बंधा हुआ था। लेखक खुद कहते हैं- “बालावस्था(बचपन) से लेकर सन् १९४८ तक जब मुझे संकटग्रस्ता के कारण एम.ए. और- कानून का अभ्यास त्यागना पड़ा, निर्धनता और शिक्षा तथा साहित्य के प्रति प्रबल आग्रह इन सत्वों के द्वारा मेरे व्यक्तित्व का परिष्कार होता रहा।”^३ अजरौली या आसपास के गाँव में जमींदारी प्रथा थी। गाँव में अलग-अलग जातियों की अपनी-अपनी मन्यताएँ, रीत-रसमे, अपने तौर तरीके थे। गंदी गलियाँ, रास्ते आदि थे और एक भी सही बंधा हुआ मकान नहीं था। अजरौली गाँव के तीन और जमीन थी और आयामी जंगल था। गाँव की चौथी दिशा की ओर लखनऊ जानेवाली सड़क थी और विशाल आमका- बाग फैला हुआ था। इसी अजरौली गाँव में बाबू श्रीलाल शुक्लजी का दो भाइयों तथा दो बहनों के बीच लड़कपन बीता। बचपन के दिनों में उन्हें कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था।

बाबू श्रीलाल शुक्ल की प्रारंभिक शिक्षा लखनऊ जनपद के मोहनलालगंज कस्बे में हुई। उनके बड़े भाई पंडित शीतला सहाय ने उनकी अधिक सहायता की थी। वह अभावग्रस्त लड़कपन, परिश्रम और व्यथाओं से परिपूर्ण छात्र अस्तित्व था। उन्होंने मिड़ल पास मोहनलाल गंज लखनऊ जनपद से किया था। इसके अलावा बाबू श्रीलाल शुक्लजी ने कान्यकुब्ज कोलेज, कानपुर से भी उन्हें अपनी थोड़ी शिक्षा ग्रहण की। क्योंकि शुक्लजी के बड़े भाई कानपुर हाईस्कूल में नौकरी करते थे। इस बात को लेकर उन्होंने वहा शिक्षा ग्रहण करने का मौका मिला। सन् १९४५ में इंटरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण कर उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक पूर्ण किया। बाबू श्रीलाल शुक्ल की थोड़ी शिक्षा प्रयाग विश्वविद्यालय से भी जुड़ी हुई है। उन्होंने लखनऊ

विश्वविद्यालय में अनुस्नातक तथा कानून के अभ्यास में प्रवेश लिया, पर अभ्यास अपूर्ण रहा। बाबू शुक्लजी ने यथार्थ शिक्षा तो ग्रहण की, लेकिन शिक्षा-दिक्षा को प्राप्त करने के लिए अधिक मेहनत भी करनी पड़ी।

१.२.४ जीवनयात्रा का साधन

बाबू श्रीलाल शुक्लजी ने स्नातक के बाद कुछ समय इन्टर कालेज लखनऊ में अध्यापन कार्य किया। उसके बाद सन् १९४६ में स्टेट सिविल में उनको नियुक्ति मिली। बाद में आई.ए.एस. हो जाने से बढ़ती मिली। नौकरी करते समय “वह उन अधिकारियों में नहीं थे जो न मोटर के नीचे पैर रखना चाहते थे, नहीं सड़क के नीचे उतरना। मीलों पैदल चलना हो या घंटों भर धूप में खड़े रहना हो, सेहत पर कोई फर्क नहीं पड़ेगा। पद से मिलने वाले लाभों के वह बंदीवान नहीं थे। मेहनत, इमानदारी, शीघ्र निर्णय तथा व्यवहारिक स्वभाव होने के कारण प्रशासन में नाम था, दबदबा था, एतबार था। हाजिरी बजाना स्वभाव में नहीं था। सेवा ही उनकी हाजिरी थी, वही दरबार था, वही खुश करनेवाली बात, आदर-सत्कार था।”^४ इस तरह जीवनयात्रा के लिए राज्य प्रशासनिक सेवा, उत्तरप्रदेश तथा भारतीय प्रशासनिक सेवा में कार्य करते हुए वर्ष सन् १९७३ से आई.ए.एस. में बढ़ती, विशेष सचिव, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य के पद, अधिकार स्तर पर वे वित्त और सहकारिता मंत्रालयों से जुड़े रहे हैं। कुछ वर्षों तक उन्होंने इलाहाबाद के एडमिनिस्ट्रर के रूप में कार्य किया और ३० जून १९८३ को रिटायर हुए। वे गद्यात्मक या पद्यात्मक रचना और नौकरी दोनों के प्रति कुरबान और ईमानदार रहे हैं। उन्होंने अपनी जीविकार्जन सेवा से उपलब्ध प्रत्यक्ष ज्ञान साधना का सदाचरण गद्यात्मक या पद्यात्मक रचना सृष्टि में भी किया।

श्रीलाल शुक्लजी ने अपनी सेवा से भी बहुत अनोखे अनुभव प्राप्त किये और उन्होंने कच्चे माल की तरह इस अनुभव सम्पदा का उपयोग किया। “शासन के वरिष्ठ अधिकारी होने के नाते अनेक मुख्यमंत्रियों, विधायकों और उनके दलालों का अध्ययन करने का उन्हें अवसर मिला। यही कारण है कि एक से एक दिग्गज राजनेताओं की जन्मपत्री उनके पास है।

उनकी योग्यताओं, अयोग्यताओं, आकांक्षाओं और उनके अंतर्विरोधों को वह बखूबी समझते हैं।”^५

१२.५ विवाह एवं पारिवारिक जीवन

बाबू श्रीलाल शुक्लजी जब कान्यकुब्ज वोकेशनल इन्टर कालेज, लखनऊ में अध्यापन कार्य कर रहे थे। तब सन् १९४८ में उनका विवाह कानपुर के सुसंस्कृत परिवार की कन्या ‘गिरिजाजी’ से हुआ।

बाबू श्रीलाल शुक्लजी को अपने परिवार से अपार अपनापन, प्रेम है, वे पत्नी गिरिजा और संतानों के प्रति पूरी तरह प्रत्यर्पित हैं। उनका पारिवारिक जीवन सुखी रहा है, कभी कानपुर में, कभी लखनऊ में, कभी इलाहाबाद में, इस समय लखनऊ में इंदिरानगर में रह रहे हैं। व्यंग्य का वागीश बाबू श्रीलाल शुक्ल को संतति के रूप में तीन पुत्रियाँ रेखा, मधूलिका, विनीता तथा एक पुत्र आशुतोष है। सभी खुशहाल जीवन बीता रहे हैं।

बाबू श्रीलाल शुक्लजी बड़े परिवारनिष्ठ व्यक्ति हैं। मुझे उनके इस रूप का परिचय तब मिला जब १९६१ में उनकी पत्नी गिरिजा जी बीमार हुई। उनकी बीमारी के छः वर्ष तक बराबर उतार चढ़ाव आते रहे। छः वर्ष के इस लम्बे समय के दौरान श्रीलालजी ने जितने प्रेम और लगन से उनकी सेवा, उनकी देख रेख की, वैसे उदाहरण बहुत कम देखने में आते हैं। श्रीलालजी की इस समर्पित सेवा के बावजूद वह चली गयीं और १९६७ की फरवरी में उनका देहावसान हो गया। इस घटना ने श्रीलाल शुक्लजी को गहराई तक व्यथित कर रख दिया। वे बेहद टूटे हुए और अकेले पड़ गये। ऐसी टूटन और पीड़ा उन्हीं रिश्तों को लेकर होती है जो हमारी जिन्दगी का एक अनिवार्य हिस्सा होते हैं और उनके न रहने पर हमें लगता है कि हमारे जीवन का एक हिस्सा टूट कर हमसे अलग हो गया है।

श्रीलाल शुक्लजी गिरिजाजी के अंतिम वर्षों में अपनी पुरानी संगीत की साझेदारी स्मृतियों को पुनरावृत्ति करते थे। गिरिजाजी की बीमारी ने उनकी दिनचर्या ही बदल डाली थी। इस समय श्रीलाल जी लेखक थे, न आरामपसंद अवकाश उपलब्ध अधिकारी, वह मात्र पति थे, प्रेमी थे, दोस्त

थे। उनके बारे में रवीन्द्र वर्मा कहते हैं “जो लोग श्रीलाल जी को जानते हैं और उनके उपन्यास ‘मकान’ के सितारवादक नायक नारायण को पहचानते हैं वे शायद मुझसे सहमत होंगे कि सम्भवतः नारायण अपने सर्जक का ही एक प्रतिरूप है जो अपनी प्रेमिकाओं के बीच भटकता हुआ, दूसरे शहर में रह रहे अपने परिवार के लिए बिसूरता है और रेडियो स्टेशन पर जब अपना टेप सुनाता है तो अपने सितारवादन के चरम पर कहता है : “मैं यही हूँ। मैं यही हूँ।”^६ आज बाबू श्रीलाल शुक्लजी लखनऊ में अकेले जीवन बीता रहे हैं।

१२.६ आराधक मित्र

बाबू श्रीलाल शुक्ल के इलाहाबाद में पुराने दोस्ते थे केशवचन्द्र वर्मा, उनके साथ धर्मवीर भारती, विजयदेव नारायण साही, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, गिरिधर गोपाल, जगदीश गुप्त आदि से सम्पर्क हुआ। इस बारे में बाबू श्रीलाल शुक्लजी कहते हैं- “पर मेरी स्थिति बहुत हद तक तटवर्ती रही, वहाँ मैं प्रैक्टिसिंग साहित्यकार न था।”^७ अन्य मित्रों में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय, कवि धूमिल, विद्यानिवास मिश्र, रवीन्द्र कालिया, रवीन्द्र वर्मा, कृष्ण राघव, शीला संधू, ममता कालिया, एस.एन. वाजपेयी आदि मित्र हैं।

१२.७ धार्मिक जीवन

श्रीलाल शुक्लजी नियम धर्म का भी बहुत विचार करते हैं। उनके जीवन विकास में धार्मिकता जुड़ी हुई है। इस बात को लेकर कहा गया है कि उन्हें कुंवारी कन्याओं और विधवा स्त्रियों से भी अधिक व्रत करते हुए देखा जा सकता है। नवरात्रि में वे और कुछ तो क्या पानी भी पीते होंगे या नहीं, यह बताना मुश्किल है।

१२.८ प्रेरणा एवं प्रोत्साहन

जीवन-विकास में प्रेरणा-स्रोत की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। श्रीलाल शुक्लजी ने मिली हुई प्रेरणा से उनका सभी दृष्टियों से विकास हुआ है। बाबू श्रीलाल शुक्लजी पहले से ही परिश्रमी, प्रतिभाशाली तथा साहित्यिक रुचि के थे। उनके एक चाचा चन्द्रमौलि पिता के चचेरे भाई थे।

उन्होंने हिन्दी में अधिक साहित्य लिखा। साहित्य जगत से शुक्लजी का परिचय चचेरे चाचा के पुस्तकों तथा वे साथ जो पत्रिकाएँ लाते, उससे हुआ। उन्हीं के शब्दों में चाँद, माधुरी, सुधा, सरस्वती, गंगा, हंस, सुकवि, काव्यकलाधर आदि पढ़ने का मौका था। मैंने प्रेमचन्द और प्रसाद की कई पुस्तकें जो उन्हें भेंट की गयी थी, उन पर साहित्यकारों के हस्ताक्षरों को बार-बार गौर से देखा था। नागरी प्रचारिणी सभा और गंगा पुस्तकमाला वर्मा और निराला की कृतियाँ भी थी।”⁵ उसके बाद भारती, विजयदेव नारायण साही और केशवचंद वर्मा जैसे मित्रों के प्रोत्साहन से मैंने नियमित लेखन शुरू कर दिया।

३.३ व्यक्तित्व

बाबू श्रीलाल शुक्लजी का व्यक्तित्व अन्दर और बाहर एक जैसा है। इसके विपरीत जीवन के विविध रूपों में उनकी गहन दिलचस्पी है। श्रीलाल शुक्ल ‘पाखंड विखंडन के मास्टर लेखक है। वास्तव में श्रीलालजी का व्यक्तित्व और लेखन बहुत पेचीदा नहीं है। उसका सौन्दर्य उसकी सहजता और मौलिकता में है। श्रीलालजी में अफसरी बू भी बहुत कम है, नही के बराबर, अवकाश प्राप्ति के बाद तो एकदम नहीं है। उनके व्यक्तित्व का सबसे महत्वपूर्ण गुण उनकी उदारता और गरिमा है। उदारता और गरिमा का बखूबी चित्रण, वर्णन व्यंग्य के सदाचार ने अपनी रचनाओं में भी प्रस्तुत किया है। उन्होंने स्थान-स्थान पर अपनी गरिमा और उदारता कायम रखी है। कई बार उनके सामने परेशानियाँ और समस्याओं ने उसे अपनी पकड़ में लिया, पर उन्होंने बराबर बड़े धीरज और समझदारी पूर्वक उनका सामना किया, और उन पर फतेह पायी। उनके व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण विशेषता है उनकी धैर्यता। एक साहित्यकार की योग्यता से उनका स्पष्ट विचार है कि एक लेखक की हैसियत उनका स्पष्ट विचार है कि “लेखक को समझना अपने पालतू कुत्ते को समझने के मुकाबले ज्यादा महत्वपूर्ण कार्य है।”⁶

श्रीलाल शुक्लजी के व्यक्तित्व की यह विशेषता है कि किसी एक विषय को लेकर प्रहार करते समय अनेकानेक विषयों पर अप्रत्यक्षतः

व्यंग्यार्थ प्रस्तुत करना है। जैसे- “आज की परीक्षाएँ छात्रों के लिए भले ही बेकार हों, मास्टर्स के लिए बड़े काम की हैं।”^{१०}

श्रीलाल शुक्लजी के व्यक्तित्व में हम प्रतिबद्धता को देखते हैं। उन्होंने अपनी आँखों से धूर्त व्यवस्था को देखा और परखा है। “उन्होंने छल, कपट और सरकार के दैनिक भ्रष्टाचार को बहुत करीब और कायदे से देखा है। शायद वे इसी ‘पाखंड’ को देखने के लिए सरकारी अफसर बने हो। वे प्रशासक रहे, लेकिन अपने भीतर के परिवेश को नहीं बदला।”^{११} उनकी दृष्टि पैनी रही है, उन्होंने देश में हो रहे भ्रष्टाचार, रिश्वत, फरेब, गरीब लोगों की परेशानियाँ सभी को उन्होंने नजदीक से देखा। शुक्लजी को अपने नौकर और चपरासियों में कभी-कभी अपने रिश्तेदार या अपना अतीत अंधेरा नजर आता है। वह प्रतिभा और ज्ञान से भरपूर है। वे स्मरण के धनी हैं। उनके व्यक्तित्व की एक महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्हें अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, संस्कृत आदि भाषा पर सामर्थ्य हासिल हुआ है। वे आसानी से चारों भाषा में पद सुना सकते हैं। उनके जीवन में अगर कोई अभाव है तो केवल एक-दो प्रेयसी का।

श्रीलाल शुक्ल के स्वभाव में अपनापन, लगाव की मात्रा भरपूर है। ये अपने साहित्य को भी इंसान की दृष्टि से देखता है। वह अपने व्यक्तित्व का परिचय देते हुए कहते हैं कि किसी पर्वतीय स्थान में लेखन की सुविधा होनी चाहिए। वह नियम धर्म का भी बहुत ख्याल रखते हैं। धर्म में लगाव की वजह से उन्होंने कन्याओं, स्त्रियों से भी अधिक व्रत करते हुए देखा जा सकता है। सच, नैतिकता, ईमानदारी, इंसानियत उसमें अधिक है। उनके व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण बातें ये हैं कि श्रीलाल शुक्ल वेदना का फोटोग्राफ नहीं बल्कि वेदना कार्टून रचते हैं।

श्रीलाल शुक्लजी के व्यक्तित्व को देखे तो उन्हें जिन्दगी में गहरा विश्वास है। कुछ-कुछ ग़ालिब की तरह वह भी आस्तिक की आखिरी बूंद तक का स्वाद पाना चाहते हैं। वह आस्तिक हैं, लेकिन संसार के भौतिक जीवन में, उसके अपने वस्तुगत नियमों तर्कों में उनकी आस्था, नास्तिकों से कम गहरी नहीं है। ज्योतिष, जादू, महात्माओं, प्रवचनकर्ताओं के लिए उनके

भीतर हमेशा अवज्ञा, वितृष्णा और नाराजगी भरी रहती है। इसके अलावा जीवन के विविध रूपों में उनकी गहन दिलचस्पी है। नये-नये मनुष्यों, स्थलों, आविष्कारों, खेल, संगीत, सिनेमा, समाजशास्त्र, प्रकृति, वनस्पतियों से अपार प्रेम, अपनापन और उनका ज्ञान शुक्लजी में समाया हुआ है।

श्रीलाल शुक्लजी में गुणवत्ता अधिक है। उनका पहनावा, रहन-सहन, खान-पान हर जगह आपको देहात और नगर का सहअस्तित्व दिखेगा। वह सूट-बूट टाई में दिखेंगे तो धोती-कुर्ते में भी दिखेंगे।^{१२} वे पहले पान-तम्बाकू लेते थे, लेकिन बाद उन्होंने पान-तम्बाकू की लत छोड़ दी है। सिर्फ कभी-कभी सुरापान करते हैं। उनके व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण विशेषता ये है कि उन्हें सिर्फ शाकाहारी भोजन प्रिय लगता है। वह एक अच्छे मित्र भी है। मित्रता बीस वर्षीय युवक से लेकर अस्सी वर्षीय वृद्ध तक सबके प्रति समान अपनापन है। उनकी सहानुभूति हमेशा उत्पीडित के साथ है, दूसरे गलत लोगों के साथ नहीं। श्रीलाल शुक्लजी के व्यवहार में निष्कपटता ही सौन्दर्य का लक्षण है। उन्हीं के शब्दों में- “नये व्यक्तियों नये विचारों के प्रति मुझमें तीव्र जिज्ञासा रहती है। इन सबको जानने समझने या कहूं किसी नये मानवीय अनुभव के लिए मेरा दिमाग ज्यादा खोजपूर्ण है।”^{१३}

३.३.१ शुक्लजी की स्वभावगत विशेषताएँ

- (१) श्रीलालजी का कई भाषाओं पर अधिकार है; अवधी, हिन्दी संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी आदि पर। इनमें से किसी भी भाषा में फरटि से बातचीत कर सकते हैं।
- (२) वह जीवन की विसंगतियों और यथार्थ की विडम्बनाओं और परस्पर विरोधी स्थितियों की परतें उघाड़ते जाते हैं।
- (३) श्रीलाल जी किसी बात को छिपाते नहीं, अपने आत्मीय जनों के बीच इसका खुला इज़हार कर सकते हैं। इस प्रकार हम उनके स्वभाव में पारदर्शिता के दर्शन करते हैं।
- (४) उनकी बातों में एक खुलापन रहता है। कई बार तो एक शिशु सा भोलापन भी महसूस होता है।

- (५) उनकी जिजीविषा का स्थान असाधारण है। इसी प्रकार उनकी दिलचस्पियां विविध हैं।
- (६) उनके स्वभाव में जो सहज शालीनता दिखाई पड़ती है वह ईमानदारी के बगैर आ ही नहीं सकती। इसीलिए उन्होंने कभी पैतरेबाजी नहीं की और न ही कभी जहां-तहां गोटियां बैठाने की मजबूरी महसूस की।
- (७) बाबू श्रीला शुक्लजी बड़े परिवारनिष्ठ व्यक्ति हैं, ये उनके स्वभाव का एक सशक्त पक्ष है।
- (८) नोबेल पुरस्कार-विजेता उपन्यासकार 'विलियम फाकनर' ने एक अच्छे लेखक की तीन विशेषताएं बतायी हैं- “अनुभव, सूक्ष्मदृष्टि और कल्पनाशीलता।”^{१४} ये तीनों बातों को हम व्यंग्य के वागीश में देखते हैं।
- (९) श्रीलालजी के स्वभाव का सबसे प्रिय तत्व यही है उदारता और बड़प्पन।
- (१०) शाकाहारी भोजन जो भी ठीक ढंग से बना हुआ हो, वही अच्छा लगता है। मिर्च मसाले ज्यादा पसंद नहीं हैं।
- (११) पान तम्बाकू की लत थी लगभग तेरह वर्ष पहले छोड़ दी। कभी-कभी शराब पी लेते हैं।
- (१२) अवधी में गाँव घर की बातें करने का शुक्लजी को अटूट आकर्षण है। साथ-साथ उनके व्यवहार में निष्कपट भी भरी है। उन्हीं के शब्दों में- “अत्यंत बहिर्मुखी प्रवृत्ति न तो मुझे पुरुष मित्रों में अच्छी लगती है, न नारी मित्रों में ही। और कहने की शायद जरूरत नहीं, व्यवहार में निष्कपटता भी सौन्दर्य का लक्षण है।”^{१५}
- (१३) बाबू श्रीलाल शुक्लजी में हम सरलता, सहजता, सादगी, नम्रता, विनयशीलता, अपनापन, स्वाभिमान, मधुर भाषा ये उनका स्वभाव रहा है।
- (१४) अपनी बात कहने का उनका अंदाज निराला है। ‘राग दरबारी’ की रचना प्रक्रिया पर वह कुछ इस अंदाज में अपने विचार प्रकट करते हैं :

“किताब लिखना दिमाग के लिए कठोर और शरीर के लिए कष्ट प्रद कार्य है।”^{१६}

(१५) चुगली-चपाटी, मज़ाक और अपमान से हमेशा दूर रहे है।

(१६) श्रीलाल, प्रेमचन्द और अज्ञेय के अधिक नज़दीक पड़ते है, जो टूटे हुए मूल्यों की स्थापना के लिये प्रयत्नशील हैं और बंकिम के तो बहुत निकट हैं क्योंकि वह भी बराबर उसकी याद दिलाते हैं जो टूट चुका है, पर टूटकर नष्ट होने योग्य नहीं था।”^{१७}

(१७) गिरते हुए समाज को संभालकर उठने-उठाने की प्रेरणा देना उनका स्वाभाविक गुण है।

३.४ शुक्लजी का कृतित्व-संसार

स्वातंत्र्योत्तर कालीन हिन्दी साहित्य में सन् १९५५ से प्रारंभ हुई बाबू श्रीलाल शुक्लजी की लेखन यात्रा अनेक संघर्षों, समस्याओं से चलते हुए आगे बढ़ी है और आज वह यात्रा सशक्त रूप धारण कर सामने प्रस्तुत हुई है। ‘राग दरबारी’ जैसी कालजयी रचना ने उसे हिन्दी के सुप्रतिष्ठित और प्रभावी कथाकार बना दिया है। उनका लेखन आज भी यथार्थ का बोध कराते हुए रफ्तार से आगे बढ़ा जा रहा है। उनकी निम्नलिखित रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं-

उपन्यास

१.	सूनी घाटी का सूरज	सन् १९५७
२.	अज्ञातवास	१९६२
३.	राग दरबारी	१९६८
४.	आदमी का ज़हर	१९७२
५.	सीमाएँ टूटती हैं	१९७३
६.	मकान	१८७६
७.	पहला पड़ाव	१८७८
८.	बिस्रामपुर का संत	१९९८
९.	बब्बर सिंह और उसके साथी	१९९९

१०.	राग-विराग	२००१
११.	संजय और विजय	१९९४

कहानी-संग्रह

१.	यह घर मेरा नहीं	१९७६
२.	सुरक्षा तथा अन्य कहानियाँ	१९९१
३.	उमरावनगर में कुछ दिन	१९९३
४.	इस उम्र में	२००३
५.	दस प्रतिनिधि कहानियाँ	२००३

व्यंग्य-संग्रह

१.	अंगद का पाँव	१९५८
२.	यहाँ से वहाँ	१९७०
३.	मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ	१९७६
४.	कुछ ज़मीन पर कुछ हवा में	१९९०
५.	आओ बैठ लें कुछ देर	१९९५
६.	अगली शताब्दी का शहर	१९९६
७.	जहालत के पचास साल	२००३
८.	खबरों की जुगाली	२००५

जीवनी लेखन

१.	भगवती चरण वर्मा	१९८६
२.	अमृतलाल नागर	१९९४

आलोचना

१.	अज्ञेय : कुछ रंग, कुछ राग	१९९६
----	---------------------------	------

सम्पादन

१.	हिन्दी हास्य-व्यंग्य संकलन	२०००
----	----------------------------	------

३.५ श्रीलाल शुक्लजी का कृतित्व-परिचय

बाबू श्रीलाल शुक्लजी ने अपने लेखन में उपन्यास, कहानी, व्यंग्य, आलोचना, निबंध, सम्पादन, साक्षात्कार, अनुवाद विभिन्न गद्यात्मक

एवं पद्यात्मक साहित्य को अपनाया हैं। लेकिन उनका साहित्यिकसंसार काव्य-रचना से आरम्भ हुआ था, फिर भी उनको यह एहसास हो गया था कि वे एक कवि की तुलना से अधिक सक्षम लेखक हो सकते हैं। श्रीलाल शुक्लजी में साहित्य-सृजन के बीज वचपन से ही विद्यमान थे, जिन्हें गाँव के साहित्यिक वातावरण में पनपने का मौका मिला। बारह-तेराह साल की उम्र में उन्होंने घनाक्षरी-सवैये लिखना प्रारंभ किया था। एक रेडियो नाटक की रूमनियत और अवास्तविकता से भरी हुई प्रवृत्ति के खिलाफ प्रतिक्रिया दिखाते हुए उन्होंने 'स्वर्णग्राम और वर्षा' नाम की एक यथार्थपरक व्यंग्यपूर्ण रचना लिखी। लेकिन उन्होंने कविता त्यागकर सब कुछ लिखा। उन्होंने आगे गद्य लेखन के माध्यम से हिन्दी साहित्य में प्रवेश किया और कुछ प्रसिद्ध रचनाएँ दी। इन रचनाओं में काल अस्तित्व के संपूर्ण वातावरण को प्रकट किया है।

३.५.१ उपन्यास साहित्य

बाबू श्रीलाल शुक्लजी को 'उपन्यास' साहित्य में अधिक कामयाबी मिली हैं। उनका प्रारंभिक उपन्यास है- सूनी घाटी का सूरज, इसके बाद अज्ञातवास, रागदरबारी, आदमी का जहर, सीमाएँ टूटती हैं, मकान, पहला पड़ाव, विस्रामपुर का सन्त, राग-विराग, बब्बर सिंह और उसके साथी आदि। इसमें औपन्यासिक कृति 'राग दरबारी' का विशिष्ट स्थान है। 'राग दरबारी' के सर्जन मात्र से इन्होंने प्रथम श्रेणी का स्थान हिन्दी व्यंग्य के इतिहास में प्राप्त किया है।

श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' एक देहात-शिवपालगंज की कथा है जो संपूर्ण भारत की कथा बनती है क्योंकि सही भारत देहात में ही बसता है। इसलिए शिवपालगंज के बारे में कहा गया है- "जो कहीं नहीं है वह यहाँ है और जो यहाँ नहीं है, वह कहीं नहीं है।"^{१८}

रचना-परिचय

(१) सूनी घाटी का सूरज

श्रीलाल शुक्ल का पहला उपन्यास 'सूनी घाटी का सूरज' १९५७ लिखा गया है। 'सूनी घाटी का सूरज' एक ग्रामीण युवक के बारे में है

जो शिक्षित और प्रतिभाशाली होने के बावजूद खुद को एक समाज में पाता है, जहाँ उसकी सोच, आदर्शों और गुणों के व्यापारी प्रतिष्ठित हैं। लेकिन उस बाजार में अपनी गुणवत्ता उपयोगिता को साबित करने के लिए उसके पास न तो सिफारिश है, न उसके संबंध किसी बड़े से हैं और न ही रिश्वत देने के लिए उसके पास धन है। उसने अपने पिता को कर्जदार होकर एक खानदानी ठाकुर के यहाँ बंधुआ जैसा जीवन जीते देखा है, और उनकी मृत्यु के बाद उसकी अपनी पढ़ाई एक हैडमास्टर के पास अनाथ की तरह रहकर, सेवा करके और ट्यूशन आदि करके पूरी हुई, इसी तरह उसने एक मेधावी छात्र के रूप में प्रथम श्रेणी की डिग्रियाँ हासिल कीं। लेकिन अपनी उन सीमाओं के चलते जिनके लिए वह खुद नहीं, बल्कि व्यवस्था जिम्मेदार हैं, इस प्रकार से प्रस्तुत किया गया है।

‘सूनी घाटी का सूरज’ एक चरित्र प्रधान उपन्यास है किन्तु रामदास का चरित्र जिस रूप में प्रस्तुत हुआ है, उससे वह एक पूरी पीढ़ी का प्रतिनिधि बन जाता है जो शिक्षा के लिए न जाने किस-किस तरह के कितने-कितने संघर्ष करने पड़ते हैं। ‘सूनी घाटी का सूरज’ में अपने ग्रामीण परिवेश का बहुत सूक्ष्म और प्रामाणिक अंकन प्राप्त होता है। यहां आजादी के पहले का वह समाज चित्रित होता है जो आज अतीत हो चुका है। ऋण के कारण छोटे किसान मजदूर बन अपनी ही जाती के लोगों के शोषण का शिकार बनते थे और फिर न केवल वे ही अपितु उनकी आगे की पीढ़ियाँ भी बंधुआ मजदूर की जिन्दगी जीने को विवश होती थी।^{१६}

‘सूनी घाटी का सूरज’ आदर्शवाद की आँखों से देखा यथार्थ है। रामदास का संघर्ष, उसका स्वप्नदर्शी स्वभाव, सत्या का अन्तर्द्वन्द और उस समय तक आए समजशास्त्रीय विकास के अनेक आयाम मिलकर इस प्रारम्भिक उपन्यास को पठनीय बनाते हैं। उपन्यास की फलश्रुति है, गाँव में जाना। दलितों की शक्ति बनना। अशिक्षितों को विद्या देना। उनकी निराशा, उनकी मूर्च्छा को समाप्त करके उन्हें नई चेतना देना झूलसी हुई पहाड़ियों की छाया में,

एक दूसरे संध्या के मलिन आंतक में पाए हुए कुछ किशोर संस्कारों को साकार करना। ये सब महान उद्देश्य हैं।

इस प्रकार आत्मकथानक शैली का 'सूनी घाटी का सूरज' में निर्वाह करने के लिए सत्या और रामदास का वार्तालाप तथा रामदास की आत्मकथा, सत्या द्वारा पढ़ना आरंभ करना, इस घटना को उपन्यास के आरंभ में प्रस्तुत किया गया है। आगे का उपन्यास सत्या आत्मकथा पढ़ रही है- इस प्रकार से प्रस्तुत किया गया है। ग्रामीण जीवन का चित्रण, शहरी जीवन का चित्रण, यथार्थ के विविध रूपों का चित्रण, ठेकेदारों के शोषण का चित्रण, राजनीतिक सत्ता-लोलुपता, भ्रष्टता, अराजकता का चित्रण, बेरोजगारी का चित्रण, श्रमिक वर्ग का चित्रण, मूल्य-हास, वर्ग विषमता आदि का चित्रण किया है।

(२) अज्ञातवास

बाबू श्रीलाल शुक्लजी का दूसरा उपन्यास 'अज्ञातवास' सन् १९६१ में प्रकाशित हुआ है। 'अज्ञातवास' पहले उपन्यास का ही एक कथा विस्तार है। किसान और दलित किस तरह नए बन रहे समाज में शोषण के शिकार हो रहे हैं, इस पर उपन्यासकार की नजर गई है। इसमें मनुष्य की अंतः प्रवृत्तियों और यथार्थ के कारणों का उद्घाटन किया है। "आप हमारे बारे में कुछ भी नहीं जानती यह घसीटे बनमानुषों की तरह झोपड़ी में पड़ा रहता है। दमा में हाफता है।"^{२०}

'अज्ञातवास' उपन्यास में मनुष्य की अपने आपको खोजने की कथा प्रस्तुत है। इसमें उत्तरप्रदेश के एक स्थान विशेष का सुन्दर चित्रण हुआ है। उपन्यास में मनुष्य, उसका अपनापन, उसका अस्तित्व, उसका संघर्ष, उसका प्रयोजन और सबसे अधिक उसकी देन को महत्व दिया है। रजनीकांत जैसे पात्र के माध्यम से लेखक ने मनुष्य की चेतना को दृष्टि दी है। उसका अकेलापन उपन्यास का प्रधान विषय है। उसमें मानसिक शोषण, शारिरिक शोषण, आर्थिक शोषण, प्रशासनिक शोषण, सामाजिक शोषण देखने को मिलता है।

(३) राग दरबारी - सन् १९६८

राग दरबारी एक ऐसा उपन्यास है जो गाँव की कथा के माध्यम से आधुनिक भारतीय जीवन की मूल्यहीनता को सहजता और निर्ममता से अनावृत करता है। शुरु से आखीर तक इतने निस्संग और सोद्देश्य व्यंग्य के साथ लिखा गया हिन्दी का शायद यह पहला बड़ा उपन्यास है। फिर भी 'राग दरबारी' व्यंग्य-कथा नहीं है। इसका संबंध एक बड़े नगर से कुछ दूर बसे गाँव की जिन्दगी से है, जो इतने वर्षों की प्रगति और विकास के नारों के बावजूद निहित स्वार्थों और अनेक अवांछनीय तत्वों के सामने घिसट रही है। यह उसी जिंदगी का दस्तावेज है।

१९६८ में 'राग दरबारी' का प्रकाशन एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक घटना थी। १९७० में इसे साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया और १९८६ में एक दूरदर्शन-धारावाहिक के रूप में इसे लाखों दर्शकों की सराहना प्राप्त हुई।

श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' एक देहात-शिवपालगंज की कथा है जो संपूर्ण भारत की कथा बनती है क्योंकि सही भारत देहात में ही बसता है। इसलिए शिवपालगंज के बारे में कहा गया है- "जो कहीं नहीं है वे वह यहाँ है और यहाँ नहीं है, वही कहीं नहीं है।"^{२१} शिवपालगंज केवल देहाती कथा बनकर नहीं रह जाता है। इसमें आज की समस्त सभ्य विकृतियाँ विद्यमान हैं जो हमारी नई संस्कृति की देने हैं। बुद्धिजीवियों की लाचारी और निष्क्रियता, वकीलों के हथकंडे, राजनीतिओं की पैतरेबाजियाँ, संस्थानों की गुटबाजियाँ, गबन, बाबा और पंडित-पुरोहितों की धोखेबाजी, सरकारी अफसरों की रिश्वतखोरी और कर्तव्य-विमुखता, प्रजातंत्र का खोखलापन, शिक्षा की निरर्थकता, बाप-बेटे के झगड़े, अदालतों की झूठी गवाहियाँ, चोरी-जुआ, भाँग-शराब, भाई-भतीजावाद, औरतों का व्यापार, इश्कबाजी, जुआ खेलना, शराब पीना, सरकारी ग्रांट को खा जाना, दहशत फैलाना आदि है।

‘राग दरबारी’ उपन्यास पर इतना कहा, सुना, लिखा और पढ़ा जा चुका है कि पाठकों तथा आलोचकों का रोना-रोने वालों पर विस्मय होता है। वास्तविकता यह है कि इस उपन्यास के बाद हिन्दी गद्य का समय दो हिस्सों में विभक्त हो जाता है। राग दरबारी से पहले और राग दरबारी के बाद का हिन्दी गद्य। इस उपन्यास ने हिन्दी रचनाशीलता को राष्ट्रीय और आंतराष्ट्रीय सुयश दिलाया। इससे मिली प्रेरणाएँ जाने कितनी कथा-रचनाओं में पढ़ी जा सकती हैं। यह कहना असंगत न होगा कि राग दरबारी के कथाप्रसंग, चरित्र, विवरण, शिल्प, भाषा-विधान आदि मिथकीय ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। वैधजी, रंगनाथ, सनीचर, रूपन, बद्री, जोगनाथ, लंगड़ आदी भारतीय लोकतंत्र के दरबार में जारी राग दरबारी के प्रतीक बन गये हैं। स्वतंत्रता से जुड़े स्वप्नों की शोकगाथा और सामाजिक मूल्यों की ट्रेजेडी को व्यंग्य विदग्ध शैली में प्रस्तुत करनेवाला यह उपन्यास एक क्लासिक रचना है।

श्रीलाल शुक्ल-कृत ‘राग दरबारी’ रिपोर्ताज शैली में लिखा गया उपन्यास है। यद्यपि इसकी कथा ग्रामांचल से सम्बद्ध है, फिर भी यह आंचलिक नहीं है। इसमें स्वतन्त्र देश की नवीन व्यवस्थाओं का, जो नारों के रूप में ही जीवंत है, गहरा मखौल उड़ाया गया है। पुनरावृत्ति इस उपन्यास की कमजोरी है। फिर भी ‘राग दरबारी’ हिन्दी के कुछ कालजयी उपन्यासों में एक है।”^{२२}

(४) आदमी का ज़हर-सन् १९७२

‘आदमी का ज़हर’ एक अपराध कथा है जो रहस्यपूर्ण प्रसंगों से भरी है। एक तरह से अगम्भीर होने का खतरा उठाकर इसे लिखा गया है। इसके बावजूद, इससे उद्घाटित होता सामाजिक यथार्थ स्मरणीय है। नामवर सिंह मानते हैं, “आज के खौफनाक बाजार तंत्र और मीडिया के रंग-ढंग को देखें तो ‘आदमी का ज़हर’ एक आश्चर्यजनक पूर्वाभास है- पच्चीस तीस साल पहले का लिखा हुआ। इसमें ‘जासूस’ या ‘अन्वेषी’ की युक्ति से उनकी कई रचनाएँ लाभान्वित हुई हैं।

‘आदमी का ज़हर’ एक रहस्यपूर्ण अपराध कथा है। इसकी शुरुआत एक ईर्ष्यालु पति से होती है जो छिपकर अपनी रूपवती पत्नी का पीछा करता है और एक होटल के कमरे में जाकर उसके साथी को गोली मार देता है। पर दूसरे ही दिन वह साधारण दीखनेवाला हत्याकांड अचानक असाधारण बन जाता है और घटना को रहस्य की घनी परछाइयाँ ढकने लगती हैं। उसके बाद के पन्नों में हत्या और दूसरे भयंकर अपराधों का घना अँधेरा है जिसकी कई पतों से हम पत्रकार उमाकांत के साथ गुजारते हैं। घटनाओं का तनाव बराबर बढ़ता जाता है और अंत में वह जिस अप्रत्याशित बिन्दु पर टूटता है, वह नाटकीय होते हुए भी पूरी तरह विश्वसनीय है।

‘आदमी का ज़हर’ उपन्यास में अजीतसिंह नामक पत्रकार की ज़हर देने से मौत की कथा प्रस्तुत है। उपन्यास में हत्या के बीच हत्या की खोज को रहस्यमयता से स्पष्ट किया है। राजनीति में वर्चस्व बनाए रखने तथा अपने सभी गलत कारनामों, भ्रष्टाचारों को छिपाने के हेतु निर्ममता से पत्रकार को जहर देकर, उसका काँटा रास्ते से नेता साफ कर देते हैं। इस तरह मनुष्यता को तिलांजली देने वाले नेता समाज में ज़हर की भाँति समाज को विनाश में ले जाने वाले हैं। वे आदमी के खाल में छिपे मनुष्यता की मौत करानेवाले घातक ज़हर हैं।

उपन्यास का एक सामान्य दिखने वाला हत्याकांड असामान्य रहस्यमयता से बंधता जाता है और उपन्यास के अंत तक जा पहुँचता है। वह हत्याकांड भद्र समाज की नंगी सच्चाइयों को रोशनी में लाता है। डॉ. परमानंद श्रीवास्तव के अनुसार - “श्रीलाल शुक्ल ने तनावपूर्ण और अमूर्त विषयों पर लिखने की जगह रहस्यमय विसंगत यथार्थ पर लिखने का रास्ता चुना है। उनका मानना है कि चरम प्रश्नों पर अमूर्त लेखन प्रायः तटवर्ती लेखन ही होता है जो खतरे की लहर को नहीं स्पर्श करता।”^{२३}

सामान्य पाठक समुदाय के लिए हिन्दी में शायद पहली बार एक प्रतिष्ठित लेखक ने ऐसा उपन्यास लिखा है। इसमें पारम्परिक जासूसी कथा-साहित्य की खूबियाँ तो मिलेंगी ही, सबसे बड़ी खूबी यह है कि कथा

आज की सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों के बीच से निकली है। इसमें संदेह नहीं कि यह उपन्यास, जिसे लेखक खुद मनोरंजन-भर मानता है, पाठकों का मनोरंजन तो करेगा ही उन्हें कुछ सोचने के लिए भी मजबूर करेगा। इस प्रकार 'आदमी का ज़हर' उपन्यास भयानक यथार्थ का उद्घाटन करता है जिसका इशारा देखने को मिलता है।

(५) सीमाएँ टूटती हैं- सन् १९७२

'सीमाएँ टूटती हैं' आधुनिक और गतिशील जीवन के अवरोधों की पहचान तथा चरित्रों की अंतःपरख के कारण महत्वपूर्ण है। दुर्गादास को एक हत्या के जुर्म में जनमकैद हो गई है। उसके बाद ही मानवीय सम्बन्धों की हत्या के प्रयास और उन सम्बन्धों की सर्वोपरिता की यह कथा शुरू होती है।

इसमें जिस बहुरंगी संसार की रचना हुई है, वहाँ वास्तविक संसार जैसा ही उलझाव है। उसकी विश्रृंखलता में एक ओर कोई तारानाथ पारम्परिक विश्वासों के सहारे व्यवस्था खोजने की कोशिश करता है और उस प्रक्रिया में अपने को खड़ा करने की ताकत पाता है, दूसरी ओर विमल किसी भी स्थिति के लिए अपने को पहले से तैयार न पाकर सिर्फ कुछ होने की प्रतीक्षा करता रहता है। और धर्म, प्रेम और अपराध-जैसी तर्कातीत वृत्तियों में बँधी हुई जिन्दगी इस अव्यवस्थित उलझाव से निरन्तर जूझती रहती है। अपराध-कथा के प्रवाहवाली यह रचना वास्तव में बृहत्तर जीवन की कथा है जो पाठक को सहज अवरोह के साथ अंत तक लाते-लाते उसे मानवीय नियति की अप्रत्याशित गहराइयों में उतार देती है।

उपन्यास में केवल उच्च, मध्यवर्ग की मानसिकता का चित्रण है। उसमें विरोध या विद्रोह का उद्भव असन्तोष से होता है। व्यक्ति या वर्ग अपनी अभावग्रस्त स्थितियों से असंतुष्ट होता है, वह उससे ऊबरना चाहता है परंतु स्थापित मान्यताएँ और व्यवस्थाएँ उसे ऊबरने नहीं देती। इन सबसे निर्धारित सीमाएँ टूटती हैं। उपन्यास में विमल और चाँद के माध्यम से शारिरिक भोग-विलास और उसके प्रभाव से बनते-बिगड़ते सम्बन्धों को प्रस्तुत

किया है। डॉ. रामविनोद सिंह के मतानुसार- “चाँद और विमल का सखापन किसी वैचारिक समानता का परिणाम नहीं है, बल्कि शारीरिक आवेग की देन है। ऐसे सम्बन्धों में स्थायित्व नहीं हो पाता है। यही कारण है कि चाँद और विमल का सम्बन्ध टूट जाता है।”^{२४}

सुविख्यात उपन्यास ‘राग दरबारी’ की रचना के पाँच साल बाद प्रकाशित होनेवाला श्रीलाल शुक्ल का यह उपन्यास उनकी अन्य कृतियों से सर्वथा भिन्न है और उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा के कई ऐसे आन्तरिक स्रोतों का परिचय देता है जिनका उपयोग हिन्दी कथा-साहित्य में प्रायः विरल है। उपन्यास में मानव संबंधों की सीमाएँ टूटने का संकेत करते हुए मानवीय रिश्तों के यथार्थ की पहचान को केंद्रियता प्रदान की गई है जो मुनासिबत पूर्ण है।

(६) मकान - सन् १९७६

‘मकान’ एक भिन्न और जटिल उपन्यास है। भले ही यह लेखक की मकान तलाशने की स्थूल मानसिकता से प्रारम्भ हुआ हो, लेकिन सितारवादक नारायण बनर्जी की विडम्बनाओं और उनके सूक्ष्म अर्थ विस्तार के कारण ‘मकान’ श्रीलाल शुक्ल की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचनाओं में से एक है। लेखक ने अनेक रोचक उपशीर्षकों में इसे संयोजित किया है। “इसका मर्म है, ‘यह जीवन की दूसरी ट्रेजेडी है कि हम जैसों के जीवन को, जिनकी ललकार दसों दिशाओं में गूँज रही है, शेर चीते नहीं, छोटे-छोटे चूहे खाते हैं। शेरों और मछलियों को चकमा देनेवाले अक्सर खटमलों द्वारा खत्म किए जाते हैं, यह विडम्बना ही है। नारायण की खोज, श्यामा-सिम्मी की कथा, नरक और स्वर्ग का सहमेल और कामुकता का कलह झेलती कला-इन सबसे बना यह उपन्यास जीवन की तुच्छता और उच्चता का आख्यान है।”^{२५}

‘मकान’ उपन्यास का प्रधान चरित्र नारायण एक सितारवादक है। जीविका के लिए वह परिवार को दूसरी जगह छोड़कर अपने पुराने शहर में आता है और यहाँ से मकान की तलाश शुरू होती है। इस दौरान उसका सितार से साथ छूटने लगता है; और अब वह जिनके साथ जुड़ता है उनमें मकान बाँटनेवाला अफसर है, कर्मचारी-यूनियन का नेता बारीन हालदार

है, पुरानी शिष्या श्यामा है, वेश्या-पुत्री सिम्मी है और वे तमाम तत्व हैं जो जिंदगी के बिखराव को तीखा बनाते हैं।

इस संघर्ष, शोषण और अव्यवस्था के दौर से गुजरते हुए तीक्ष्ण प्रतिक्रियाएँ व्यक्त होती हैं : ‘मकान’ की खोज से उपन्यास का आरंभ होता है और उसका समापन मकान पाने पर होता है। मकान पाने वाले की आकस्मिक हत्या हो जाती है। रोटी, कपड़ा, मकान जीवित मनुष्य की मुख्य मूलभूत आवश्यकताएँ हैं। रोटी कपड़े की जरूरत नौकरी की तनख्वाह से पूरी होती है, लेकिन मकान मिलना इतना दुःसाध्य है कि उसके लिए जीवन की बलि चढ़ जाती है। मकान सामान्य मनुष्य और मानव-जीवन की सहजता का भक्षक हो जाता है। उपन्यास में मकान की खोज एक अविराम खोज है और वह एक रहस्य से दूसरे रहस्य तक ले जाती है।

‘मकान’ यशस्वी कथाकार श्रीलाल शुक्ल की बहुप्रशंसित कृति है। वस्तुतः संगीत की पृष्ठभूमि में कलाकार के जीवन की आकांक्षाओं, जिम्मेदारियों, विसंगतियों और तनावों को केन्द्र बनाकर लिखा गया हिंदी में अपनी तरह का यह पहला उपन्यास है।

(७) पहला पड़ाव - १९८७

‘पहला पड़ाव’ बेरोज़गारी, अपराध, दुराचार, हत्या, शोषण से घिरे-भरे समाज को सत्ते, जसोदा, मेड़राम उर्फ नेता, पप्पी, इंजीनियर साहब और दूसरे पात्रों के द्वारा प्रस्तुत करता है। श्रीलाल शुक्ल का कथाकार यहाँ किस्सागोई के कुछ नए प्रारूप रचता है। बिलासपुरी मजदूरों के नेता की हत्या के बाद सत्ते और जसोदा के जीवन में उथल-पुथल होती है। फिर अँधेरे बन्द कमरों और तहखानों से लगे तहखानों का रहस्य उजागर होता है। मेम साहब इस रचना का अविस्मरणीय चरित्र है। उपन्यास का अन्त एक व्यावहारिक आदर्शवाद में होता है- “दिवास्वप्न पीछे छूट रहे थे। ठोस ज़मीन पर पाँव टिकाकर जो भी चाहूँ वह करने के लिए मैं अब मजबूर नहीं, आज़ाद हूँ। कानून की पढ़ाई मेरे लिए अब पेट पालने की मजबूरी नहीं, एक लौहजाल तोड़ने की तैयारी होगी।”^{२६}

श्रीलाल शुक्ल ने अपने इस नये उपन्यास को राजमजदूरों, मिस्त्रियों, ठेकेदारों, इंजीनियरों और शिक्षित बेरोज़गारों के जीवन पर केन्द्रित किया है और उन्हें एक सूत्र में पिरोये रखने के लिए एक दिलचस्प कथाफलक की रचना की है। संतोषकुमार उर्फ सत्ते परमात्मा जी की बनती हुई चौथी बिल्डिंग की मुंशीगीरी करते हुए न सिर्फ अपनी डेली-पैसिंजरी, एक औसत गाँव-देहात और 'चल-चल रे नौजवान' टाइप ऊँचे संबोधनों की शिकार बेरोज़गार जिन्दगी की बखिया उधेड़ता है, बल्कि वही हमें जसोदा उर्फ 'मेमसाहब' - जैसे जीवंत नारी चरित्र से भी परिचित कराता है। इसके अलावा उपन्यास के प्रायः सभी प्रमुख पात्रों को लेखकने अपनी गहरी सहानुभूति और मनोवैज्ञानिक सहजता प्रदान की है और उनके माध्यम से विभिन्न सामाजिक-आर्थिक अंतर्विरोधों, उन्हें प्रभावित-परिचालित करती हुई शक्तियों और मनुष्य-स्वभाव की दुर्बलताओं को अत्यंत कलात्मकता से उजागर किया है।

श्रीलाल शुक्ल की यह कथाकृति बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में ईंट-पत्थर होते जा रहे आदमी की त्रासदी को अत्यन्त मानवीय और यथार्थवादी फलक पर उकेरती है।

(८) बिस्त्रामपुर का संत-१९६८

'बिस्त्रामपुर का संत' राजनीतिक उपन्यास है ! शायद इसमें हमारी अपेक्षा का आधार यह हो कि उपन्यास का बड़ा हिस्सा भूदान आंदोलन की राजनीति और उसके विमर्श से सम्बंधित है। 'बिस्त्रामपुर का संत' कुँवर जयन्ती प्रसाद सिंह की 'महामहिम' में निहित भयावह वास्तविकता की गाथा है।

श्रीलाल शुक्ल अपने अनुभवों से लाभ उठाते हुए राजनीति, प्रशासन और सामाजिकता की आन्तरिकता उद्घाटित की है। भूदान या ग्रामदान का संकेत केवल परिशिष्टात्मक महत्व का ही है। सामन्ती प्रवृत्ति के कुँवर जयन्ती प्रसाद के चरित में अतृप्तियों का जमघट है और उनका पुत्र विवेक सकारात्मक इच्छाओं का स्वरूप। सुन्दरी, सुशीला, जयश्री में एक अलग तरह का स्त्री विमर्श है। नियति एक अहेरी को आहार बना डालती है और एक

सहानुभूतिविहीन मैदान में कुँवर साहब की ट्रैजेडी ठहर जाती है। सुन्दरी के आश्रम में 'बिस्त्रामपुर का संत' जैसा जीवन बिताने के इच्छुक कुँवर साहब अपने अन्त के साक्षी बनकर रह जाते हैं।''^{२७}

'बिस्त्रामपुर का संत' समकालीन जीवन की ऐसी महागाथा है जिसका फलक बड़ा विस्तीर्ण है और जो एक साथ कई स्तरों पर चलती है। एक और यह भूदान आंदोलन की पृष्ठभूमि में स्वातंत्र्योत्तर भारत में सत्ता के व्याकरण और उसी क्रम में हमारी लोक-तांत्रिक त्रासदी की सूक्ष्म पड़ताल करती है, वहीं दूसरी ओर एक भूतपूर्व तअल्लुकेदार और राज्यपाल कुँवर जयंतीप्रसादसिंह की अंतर्कथा के रूप में महत्वाकांक्षा, आत्मछल, अतृप्ति, कुंठा आदि की जकड़ में उलझी हुई जिंदगी को पर्त-दर-पर्त खोलती है। फिर भी इसमें सामंती प्रवृत्तियों की हासोन्मुखी कथा भर नहीं है, उसी के बहाने जीवन में सार्थकता के तंतुओं की खोज के सशक्त संकेत भी हैं।

सुप्रसिद्ध लेखक श्रीलाल शुक्ल की यह नवीनतम कृति, कई आलोचकों की निगाह में, उनका सर्वोत्तम उपन्यास है।

(६) राग-विराग-सन् २००१

'राग-विराग' दलित विमर्श, प्रेमकथा और बाज़ारवाद की समेकित संश्लिष्ट रचना है। श्रीलाल शुक्ल अपने प्रिय व परिचित शिल्प को तजकर नाट्यप्रविधि के सहारे इस नातिदीर्घ उपन्यास को विकसित करते हैं। सुकन्या और शंकर 'बेसिक कल्चर' के कारण विवाह नहीं कर पाते। उल्लेखनीय है कि शंकर का दलित होना अवरोधक तत्त्व नहीं है। सुकन्या अपनी मौसी से बताती है, 'मौसी मैं उसका बड़ा सम्मान करती हूँ और एक हद तक प्यार भी। सच तो यह है कि आपसी सम्मान के बिना प्यार सम्भव ही नहीं है। फिर भी मैं अपने को कभी इस भूमिका में नहीं देख पाती कि मैं उसकी बेसिक कल्चर में शरीक हो जाऊँ। आत्मदया के विलास को परे हटाता यह छोटा-सा उपन्यास स्थूल जाति विमर्श और वर्गबोध को एक भिन्न अर्थ प्रदान करता है।

३.५.२ कहानी संग्रह

बाबू श्रीलाल शुक्लजी को कहानी साहित्य में भी उपन्यास की तरह अधिक सफलता मिली है। उनके महत्वपूर्ण कहानी संग्रह है - 'यह घर मेरा नहीं, सुरक्षा तथा अन्य कहानियाँ, उमरावनगर में कुछ दिन, इस उम्र में तथा दस प्रतिनिधि कहानियाँ आदि।

(१) यह घर मेरा नहीं - १९७६

इस कहानी संग्रह में बाबू श्रीलालजी की प्रकाशित कहानियाँ, टिप्पणियाँ संग्रहीत हैं। साथ-साथ इस संग्रह में निबंध को भी स्थान दिया है। कहानियों की संख्या नौ है तथा टिप्पणी निबंध दस हैं। संग्रहित कहानियाँ लगभग बत्तीस वर्ष की अवधि में लिखी गयी है। 'सर का दर्द' और 'अपनी पहचान' सन् १९४६ की, 'दिन ढलते', 'मेरी भाभी', 'शिकारियों के बीच' और 'एक चोर की कहानी' सन् १९५६ की, एक लुढ़कता हुआ पत्थर' तथा 'यह घर मेरा नहीं' सन्-१९६१ की तथा 'छुट्टियाँ' सन् १९७८ की हैं।

'यह घर मेरा नहीं' संग्रह समकालीन साहित्य में दस्तावेजी लेखन है। इसकी प्रथम कहानी 'छुट्टियाँ' है, जिसमें एक अध्यापक के नीरस, ग्रीष्म कालीन छुट्टियों का वर्णन है। 'यह घर मेरा नहीं' में उस नव-घनाढ्य वर्ग की कहानी है जो अपने बच्चों को तमाम भौतिक सुविधाएँ प्राप्त कराते हैं पर प्रेम का व्यवहार नहीं करते। 'एक लुढ़कता हुआ पत्थर' में मनुष्य के चरित्र के छल को प्रस्तुत किया है। 'एक-चोर की कहानी' में एक चोर की निरीहता का, 'सर का दर्द' में एक युवक के कल्पनाशीलता और जीवन के कटु यथार्थ का 'अपनी पहचान' में व्यक्ति के असत्य दिखावे तथा शान का तथा 'शिकारियों के बीच' में अनमेल शादी का चित्रण है। 'मेरी भाभी' में स्त्री के दुहरे चरित्र, कुटिलता भरी मधुरता और दूसरी पत्नी के माध्यम से पति को मीठी वाणी से अपने वश में करने का वर्णन है। 'दिन ढलते' में गलत रास्ता अपनावाले रईसों का चित्रण है।

(२) उमरावनगर में कुछ दिन-सन् १९८८

इस संग्रह में श्रीलाल शुक्ल का पैनापन वर्तमान है, हास्य कुछ दूर चला गया है। 'उमरावनगर में कुछ दिन' में राष्ट्रीय विकास से जुड़े कुछ लोगों की कहानी को केन्द्र में रखकर, उनके माध्यम से, इस विकास की वास्तविक प्रकृति को उद्घाटित किया है। इसमें तीन कथा हैं - उमरावनगर में कुछ दिन, कुन्ती देवी का झोला और मम्मीजी का गधा।

संग्रह की आधार कथा है : 'उमरावनगर में कुछ दिन'। उमरावनगर यानी एक ऐसा गाँव, जिसे नियोजित विकास का चमत्कार दिखाने के लिए चुना गया है, लेकिन जिसके सार्वजनिक जीवन में आजादी के बाद पनपे अवसरवाद और भ्रष्टाचार के साथ हुए तमाम समझौते मौजूद हैं।

'कुन्ती देवी का झोला' में डाकुओं और पुलिस के आतंकवाद का बेजोड़ चित्रण है, जिसका शिकार अन्ततः निर्दोष जनता को बनना पड़ता है। 'मम्मीजी का गधा' में अफसरशाही के अह को विषय बनाया गया है और प्रसंगतः इस बात की भी खबर ली गई है कि नेता लोग अर्थहीन-सी स्थितियों का किस प्रकार लाभ उठाते हैं। निश्चय ही यह संग्रह श्रीलाल शुक्ल की सुपरिचित व्यंग्य-प्रतिभा को नई ऊँचाई सौपता है।

(३) सुरक्षा और अन्य कहानियाँ-सन् १९९१

सुरक्षा और अन्य कहानियाँ शुक्लजी की प्रसिद्ध कहानियों का महत्वपूर्ण संकलन है। सामाजिक सरोकारों से सुगुंफित ये कहानियाँ हमें भावोद्वेलित ही नहीं करतीं, सामाजिक विद्वेषताओं से साक्षात्कार भी कराती हैं। इस कहानी संग्रह में उनकी दस कहानियाँ संग्रहित हैं। वस्तुतः यह व्यक्ति और व्यवस्था के बीच निरन्तर चल रहे घात-प्रतिघात की कहानियाँ हैं, जो काल के बनावटी जीवन को प्रकट करती हैं।^{२८}

इस संग्रह की पहली कहानी 'सुरक्षा' का नायक मि.टंडन रिटायर हो चुके हैं, अधिकार की लगाम अब उनके हाथों में नहीं, पर वर्गीय अहंकार उनमें मौजूद है। प्रशासन के नाम पर जो तरह-तरह के नाटक होते हैं, उसका अंतरंग परिचय है उनकी 'गिरफ्तारी' कहानी में अपनी नगण्य-सी

सुविधा के लिए मानवीय जीवन के साथ यह चरम हिंसा व्यवहार शुक्लजी की तीसरी 'सँपोला' कहानी में अमानवीकरण एक और हालात को प्रस्तुत करती है।

सुरक्षा तथा अन्य कहानियाँ संग्रह की 'दुराचरण' कहानी के मुख्य पात्र नेतराम दलित जाति के युवा नेता है जो कभी विरोधी दलों की सरकार में मंत्री थे और जब उनकी पार्टी सत्ता से हट गयी तो वे दल-बदलकर सत्तावाली पार्टी में शामिल हुए। यह कहानी का दो तरह का केन्द्रिय भाव रहा है। आगे की कहानी 'दंगा' के नायक पुलिस है, उन्हें पुलिस महानिदेशक से आदेश मिलता है कि एक गाँव में दंगा हुआ, दो व्यक्ति मारे गए हैं और तत्काल वहा पहुँचना चाहिए। इसमें दंगे की सत्यता का सात्त्विक वर्णन हुआ है। 'वे बच जायेंगे मगर...' कहानी में एक भूतपूर्व मंत्री के जीवन संकट का बड़ा ही सजीव और प्रामाणिक चित्रण हुआ है। 'वह किसी को नहीं बख्शती' कहानी में आज की राजनीति का और अलग-अलग पार्टी का चित्रण किया है। 'एक लुढ़कता हुआ पत्थर' कहानी में बस यात्रा का वर्णन हुआ है। 'परीदीन की प्रेम-गाथा' में ग्रामीण जीवन के अनुभवों का चित्रण हुआ है। 'सपने' कहानी में एक सामान्य व्यक्ति का ड़र चित्रित किया है, जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। सभी कहानियों में हमें मानवीय भावों के दर्शन होते हैं।

(४) इस उम्र में - सन् २००३

हिन्दी साहित्य के शिखर रचनाकार श्रीलाल शुक्ल की नई कहानियों का संग्रह है 'इस उम्र में'! इस संग्रह में उनकी अलग-अलग प्रकार की ग्यारह कहानियाँ संग्रहित हैं। इसमें तीन ऐसी भी हैं जिन्हें 'कथा' के रूप में प्रस्तुत किया है। इसमें सामाजिक यथार्थ पर अचूक पकड़ और उसे बयान करने की उसकी अद्भूत कला का साक्ष्य है। इसकी कहानियाँ हिन्दी कहानी की रूढ़ियों, फार्मूलों, खायतों से दूर खड़ी है और रचना के संसार में नई निर्मितियाँ तैयार कर रही हैं।

'इस उम्र में' कहानी संग्रह की कहानियाँ तीक्ष्ण अन्वीक्षण क्षमता से सम्पन्न होकर भारतीय समाज की गहन मीमांसा करती हैं। इनमें

मौजूद समय में प्रकट हो रहे नये बदलावों की संवेदनात्मक आहटें हैं। यहाँ तक कि कई समसामयिक घटनाएँ, प्रवृत्तियाँ और रुझान भी दर्ज हैं। न केवल इतना, श्रीलाल शुक्ल ने सामाजिक संरचना में तेजी से उभर रही नई शक्तियों के प्रतिरोध और परिवर्तन को भी पहचान कर उसे प्रकट किया है।”^{२६}

‘इस उम्र में’ संग्रह की कहानियों में कई बार पुरानी वास्तविकता को नई जीवनदृष्टि से उलट-पुलट दिया जाता है तो कई बार नई पीढ़ियों, दुखों और क्रूरताओं को पुरानी धारणाओं के प्रहसनात्मक विखंडन के जरिए उजागर किया गया है। श्रीलाल शुक्ल यहाँ अभिव्यक्ति के नये-पुराने रूपों में ऐसी तोड़-फोड़ करते हैं, फिर उनका ऐसा अजीब मिलाप कराते हैं कि समाज का चेहरा उजागर हो जाता है और हिन्दी कहानी का चेहरा बदल जाता है। ये कहानियाँ अपनी गहन शैली के लिए भी लम्बे समय तक याद की जाएँगी। वातावरण तथा चरित्रों की जैसी सघन पड़ताल और बात कहने के लिए जैसी भाषा ‘इस उम्र में’ की रचनाओं में सतत मौजूद है, वह हिन्दी कहानी में विरल है।

३.५.३ हास्य-व्यंग्य संग्रह

श्रीलाल शुक्लजी आज के प्रमुख व्यंग्यकारों में से एक हैं। उन्होंने “स्वर्णग्राम और वर्षा” नामक रचना से व्यंग्य के क्षेत्र में प्रवेश किया। इनका ‘अंगद का पाँव’ व्यंग्य-संग्रह १९५६ में प्रकाशित हुआ, जिसने उन्हें हिन्दी के समर्थ व्यंग्यकार के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। इनके व्यंग्य लेखक में एक विशिष्ट तनाव बना रहता है। उन्होंने सामाजिक सम्बन्धों के बिखराव का संयमपूर्ण चित्रण प्रस्तुत किया है, साथ ही देश की टूटती अर्थव्यवस्था को उभारने का प्रयास भी किया है। सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक विसंगतियों और विकृतियों को उन्होने अपने व्यंग्य का विषय बनाया है।

श्रीलाल शुक्ल को व्यंग्य का वागीश और सटायर का सम्राट कहा जा सकता है। ‘अंगद का पाँव’ तथा ‘यहाँ से वहाँ’ ये दोनों व्यंग्य संकलन सर्वप्रथम प्रकाशित हुए सन् १९७० से पहले। इनकी ताज़गी के कारण उसके बाद भी पुनः प्रकाशन हो यह स्वाभाविक है। शुक्लजी के अनुसार उनकी जो

सर्वश्रेष्ठ व्यंग्य रचनायें हैं उन्हें 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनायें' में संकलित किया गया है। बालेन्दुशेखर तिवारीजी के अनुसार "साहित्य और समाज की विविध विसंगतियों को श्रीलाल शुक्ल ने एक साधारण दर्शक की निगाह से देखा है और उनपर अपने ढंग से प्रहार किया है।"^{३०}

श्रीलाल शुक्ल की व्यंग्य रचनाओं में मनोरंजन की सस्ती भावना के स्थान पर परिष्कार मूलक व्यंग्यबोध अधिक जागृत दीखता है। 'अंगद का पाँव', 'यहाँ से वहाँ', 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ', 'कुछ ज़मीन पर कुछ हवा में', 'आओ बैठ लें कुछ देर', 'अगली शताब्दी का शहर', 'जहालत के पचास साल', 'खबरो की जुगाली' आदि व्यंग्य-संग्रहों का परिचय निम्नलिखित है।

(१) अंगद का पाँव सन् १९५८

'अंगद का पाँव' श्रीलाल शुक्ल जी का पहला व्यंग्य संग्रह है, जिसमें कूल मिलाकर बीस व्यंग्य रचनाएँ संग्रहीत हैं। इस प्रथम-संग्रह से ही व्यंग्य लेखन के रूप में उन्हें प्रसिद्धि मिली है। प्रसिद्ध कथाकार कमलेश्वर कहते हैं- "इस संग्रहने शुक्लजी का स्थान हिन्दी के महान व्यंग्यकारों में स्थापित कर दिया।"^{३१}

'अंगद का पाँव' संग्रह की सभी व्यंग्य-रचनाएँ हमारे अपने जीवन, हमारे अपने समाज के जीवन्त प्रश्नों को हमारे समक्ष उपस्थित कर संवाद कायम करने की चेष्टा करती हैं। प्रथम व्यंग्य 'संस्कृत पाठशाला में प्रसाद' में अध्यापकों पर करारा प्रहार है। विद्यार्थियों को अर्थ का अनर्थ तथा विषयान्तर में भ्रमित करने वाले अध्यापक की दुर्बलता का चित्रण किया है। आगे की व्यंग्य रचना 'साहित्योद्यान सुमनगुच्छा : एक समीक्षा' में कालों में होनेवाली समीक्षाओं पर व्यंग्य है। 'शीर्षकों का शीर्षसिन' में अनुपयुक्त नामकरण रखने पर तथा 'सकल बन ढूँढ़ूँ : एक सांगीतिक' में सफेदपोशों द्वारा होने वाली निरर्थक बहस की जानकारी है। 'पुराना पेन्टर और नयी कलम' में एक चित्रकार की अहंभावना का चित्रण है। 'प्रभात-समीरण उर्फ सुबह की हवाएँ' में लेखक ने आज की फार्मूला फिल्मों पर जानकारी दी है। 'शेर का

शिकार' तथा 'आधा तीतर' रचनाओं में झूठे दिखावे तथा आत्मप्रचार पर कटाक्ष है। 'बया और बन्दर की कहानी : एक रिसर्च स्कालर की ज़बानी' में शोध को लेकर वर्णन है। 'बैलगाड़ी से' में तीन छात्रों द्वारा बैलगाड़ी-यात्रा को अलग-अलग शैली से परिभाषित किया है।

'अंगद का पाँव' व्यंग्य संग्रह में संस्मरण के रूप में 'शोका भूमिका भाष्य' में विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा भूमिका लिखवाने की परंपरा पर तथा बारहवीं रचना 'सुकवि सदानन्द के संस्मरण' में विभिन्न कविता आंदोलनों में बहने वाले एक कवि पर व्यंग्य है। 'स्वर्णग्राम और वर्षा' लेखक के नियमित लेखन का प्रथम व्यंग्यात्मक निबंध है। 'दो पुराने आदमी' में पुरानी पीढ़ी को अयोग्य और संभावनाहीन बताये जाने पर तथा 'पहली चूक' में एक पढ़े-लिखे युवक द्वारा कृषि में असफल होने पर व्यंग्य है। 'दुभाषिये' में भ्रष्ट नौकरशाही पर तथा 'साहब का बाब' में बच्चे के अति लाड़-प्यार का यथार्थ है। 'कालिदास का संक्षिप्त इतिहास' में कालिदास को लेकर इतिहासकारों में चल रहे मत की जानकारी है। 'अखिल भारतवर्षीय आत्महत्या निवारण समिति' में नित्य बननेवाली समितियों में व्याप्त भ्रष्टाचार को दिखाया है। पुराण में से ली गयी कथा 'अंगद का पाँव' पर इस संग्रह का शीर्षक हुआ है। इसमें बनावटी, कृत्रिम मान्यताओं पर व्यंग्य है।

(२) यहाँ से वहाँ-सन् १९७०

'यहाँ से वहाँ' बाबू श्रीलाल शुक्लजी के उन्नीस व्यंग्य का संग्रह है। विभिन्न शैलियों में लिखी गयी ये रचनाएँ वर्तमान भारतीय समाज और चिन्तन की क्षुद्रताओं, कुंठाओं, विषमताओं और कुटिलताओं का विद्रुपतात्मक चित्र प्रस्तुत करती हैं। संग्रह की प्रथम रचना 'लखनऊ' रिपोतार्ज शैली में है। आधुनिक महानगर के दंभी, नाटकीय जीवन, बुद्धिजीवी बहसों, शारीरिक व्यापार तथा ज्योतिषी व बाबा प्रेम जैसे धनाढ्यों का यथार्थ इसमें है। 'एक हारे हुए नेता का इंटरव्यू' एक नये स्वर में देशसेवा के नाम पर राजनीति करने वाले जातिवादी साँप-सीढ़ी पर चढ़ने वाले तथा ज्योतिषी में फसे नेताओं

पर व्यंग्य है। 'जीवन का एक सुखी दिन' में एक शिक्षक के जीवन के माध्यम से आज के दिखाऊ अस्तित्व पर प्रहार किया है।

'भारतीय इतिहास का एक स्वर्णीम पृष्ठ' में वर्तमान व्यवस्था द्वारा साहित्य, संगीत तथा कला के उन्नयन के कारण किये गये कार्यों और उनमें व्याप्त सार्वजनिक अपव्यय वृत्ति तथा दिशाहीनता पर व्यंग्य है। 'एक पद्मभूषण का अभिनंदन' में संस्थाओं-समितियों के माध्यम से आज के युवक-युवतियों के रोमानी प्रेम पर प्रहार है। 'हम बहशी नहीं हैं : एक परिसंवाद' में दो मित्रों के संवाद के माध्यम से अंग्रेजों से उत्तराधिकार में प्राप्त गलत न्याय व्यवस्था पर चोट है।

'यहाँ से वहाँ' व्यंग्य में एक स्टेडियम के पास एक के बाद कया ? 'श्री जनता होटल' होजरी-सिलाई की दुकाने तथा डिस्पेन्सरी की दो नर्सों के आकर्षण से वह स्थान गुलजार हो जाता है।''^{३९}

'यहाँ से वहाँ' संग्रह की अगली रचना 'भंगोडे : पत्नीवादी साहित्य का एक नौसिखिया प्रयास' में चार दृश्यों के माध्यम से पत्नी के अतिशय प्रेम से ऊबे दो व्यक्तियों द्वारा तीन दिन के लिए अज्ञातवास में चले जाने का वर्णन है। 'नसीहतें' में एक बुजुर्ग की अयाचित-न माँगा हुआ नसीहतों पर 'हमारे विचित्र पशु-पक्षी' में अजायबघर में भ्रमण कर रही महिला, उसके पति तथा अन्य व्यक्तियों की मनोवृत्तियों पर व्यंग्य किया है। 'बेचारे डाकू' में डाकू हमले के फलस्वरूप उत्पन्न पुलिस तथा ग्रामीणों के भ्रष्ट आचरण पर, 'जैसी करनी वैसी भरनी : एक बोध कथा' में रिश्वत तथा लालची प्रवृत्ति पर, तथा 'मृत्यु : एक दिग्दर्शनिक निबंध' में आभिजात्य लोगों पर व्यंग्य किया गया है।

'यहाँ से वहाँ' व्यंग्य-संग्रह की आगे की रचना 'देवता पुराने और नये' में एक मंदिर में अलग प्रकार के भाविकों का चित्रण है। मंदिर में जब अमरीकी शांति सेना के तीन जवान तथा एक युवति का प्रवेश होता है, तो भक्तगण अपने देवताओं को त्यागकर इन नये देवताओं की ओर आकर्षित हो जाते हैं और तब तक उनके पीछे लगे रहते हैं जब तक कि वे पास के विलायती

शराबखाने पर जाकर अन्तर्धान नहीं हो जाते। 'एक मुक़दमा' में कवि-स्वभाव तथा न्यायालय के निर्णयों पर व्यंग्य है। 'कुत्ते और कुत्ते' में खुशामदी व्यापारियों तथा उनके खुशामदी आयकर अधिकारी पर व्यंग्य किया है।

'यहाँ से वहाँ' व्यंग्य संग्रह की अगली रचना 'भविष्य-निर्माण का कारखाना' में एक रेस्तरा में इक्ठ्ठे चार कक्षा के लोगों में नेता, जनता, पुलिस तथा विद्यार्थी की दिशाहीनता, विवेकहीनता तथा उत्तरदायित्वहीनता पर प्रहार हैं। संग्रह की अंतिम रचना 'एक शरीफ दोस्त के नाम चार पत्र' के माध्यम से विदेश-भ्रमण तथा उसके संस्मरण लिखे जाने की जानकारी है, विदेश भ्रमण में, रेलयात्रियों तथा भ्रष्ट राजनेताओं पर पत्र है, राजनीति और रेलगाड़ी, परिचय के अभाव में कहीं भी कार्य न करने की प्रवृत्ति पर अपने लोगों पर तथा एक कवि की मृत्यु पर होने वाली शोक-सभा की रस्म पर पत्र का नाम है एक शोक-प्रस्ताव। संग्रह की सभी रचनाओं की आवाज़ व्यंग्य हैं।

(३) मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ-सन् १९७६

'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ' संग्रह में कूल मिलाकर बाईस व्यंग्य रचनाएँ संग्रहीत हैं। संग्रह की तीन रचनाएँ 'अंगद का पाँव' संग्रह से 'दो पुराने आदमी', 'अंगद का पाँव' और 'बया और बन्दर की कहानी : एक रिसर्च स्कालर की ज़बानी' तथा चार 'यहाँ से वहाँ' संग्रह से 'जीवन का एक सुखी दिन', 'लखनऊ', 'एक शोक प्रस्ताव', 'कुत्ते और कुत्ते' ली गयी हैं। दो उपन्यास अंश-'राग दरबारी' और 'मकान' भी हैं। इसके अलावा संग्रह में तेरह असंग्रहीत रचनाएँ हैं। लेखक के अनुसार संग्रह की "सभी कृतिया उसकी श्रेष्ठतम रचनाएँ हो, ऐसा उचित नहीं, क्योंकि यह भी विचार रहा है कि इसमें ऐसी अपेक्षाकृत अच्छी रचनाएँ भी आ जाए जो संग्रह रूप में अभी तक आयी न हो।"^{३३}

'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ' संग्रह की तेरह रचनाओं में 'रवीन्द्र जन्मशती की रिपोर्ट' में सम्मेलन-प्रेमियों पर, 'घुड़सरी का कवि-सम्मेलन' में ग्रामीणों की गंवारपन व सस्ती रूचि तथा कवि-स्वभाव पर,

‘एक देहाती की नजर में शहर के सौ मीटर’ में गाँव के प्राइमरी स्कूल के एक अध्यापक की शहर-यात्रा और उसी बहाने समाज में फैली असमानता तथा विसंगतियों का वर्णन है। ‘दीवाली, जुआ और कविगण’ में जुआ और प्रसिद्ध कवियों की कविताओं में साम्यता का चित्रण किया गया है। ‘आह ! वे दिन’ में अंग्रेजी युग को अनावश्यक रूप से महिमा-मंडित किये जाने की प्रवृत्ति पर तथा ‘मनीषीजी की एक रात’ में ऐतिहासिक शोध करने वाले विलासी मनीषी पर करार व्यंग्य किया है।

‘मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ’ संग्रह की अगली रचना ‘आधुनिक कविता में भक्तिकाल’ में आधुनिक कविता में भक्तिकालीन प्रवृत्तियों को तलाशने का प्रयास है। ‘छात्रों में अनुशासन हीनता कैसे रोकी जाय ?’ में छात्रों की अनुशासन हीनता और दिशाहीनता पर व्यंग्य है। ‘दो संस्मरण’ में विद्यार्थी जीवन के दो संस्मरण है। ‘धोखा’ में एक सुशिक्षित युवक मन्नालाल निगम के जीविका के संघर्ष को दिखाया है। ‘चौराहे पर’ रचना में स्वाधीनता सेनानी देवीदीन की मोटर-दुर्घटना में हुई मौत को राजनीतिज्ञों द्वारा किस प्रकार भुनाया जाता है उनका चित्रण है। ‘शिवपालगंज’ राग दरबारी उपन्यास का भाग है, जिसमें शिवपालगंज कस्बे का सजीव तथा व्यंग्यात्मक चित्रण है। संग्रह की आखिरी रचना ‘मियाँ की जूती मियों के सिर’ में संगीतकार नारायण द्वारा शहर में मकान की तलाश का चित्रण है। यह रचना उनके ‘मकान’ उपन्यास का भाग है। सभी रचनाओं का मूल स्वर जीवन की यथार्थता का उद्घाटन करना है।

(४) कुछ ज़मीन पर, कुछ हवा में-सन् १९६०

‘कुछ जमीन पर, कुछ हवा में’ तीन प्रकार की रचनाएँ हैं। इन निबंधों में श्रीलाल शुक्ल की रचना-दृष्टि विभिन्न वस्तु-सत्यों को उकेरती दिखाई देती है। इनमें से पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित निबंधों के लिए ‘ज़मीन पर’ और रेडियो तथा दूरदर्शन से प्रसारित निबंधों के लिए ‘हवा में’ कहकर भी उन्होंने जिसे व्यंग्यार्थ की व्यंजना की है, उसकी ज़द में सर्वप्रथम वे स्वयं भी आ खड़े हुए हैं। इसमें उनके व्यंग्य की ईमानदारी भी है और अंदाज़ भी। सामाजिक

विसंगतियों, विडंबनाओं और समकालीन जीवन की विकृतियों की बेलाग शल्य-चिकित्सा में उनका गहरा विश्वास है।

‘कुछ जमीन पर, कुछ हवा में’ में एक व्यंग्य में आज की राजनीति, नेताओं पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने कहा है कि- “ये तीनों शब्द सरकारी नौकरों के शब्दकोश के हैं पर उनके निकम्मेपन की वजह से वहाँ से खिसककर अब ये देशभक्त नेताओं के हाथ में आ गये हैं। इन्हे वहीं रहने दो, नौकर को इनसे बरी रखो।”^{३४}

कुछ ज़मीन पर, कुछ हवा में व्यंग्य-संग्रह की प्रथम-रचना है ‘होरी और उन्नीस सौ चौरासी’ में शुक्लजी इस तथ्य को उजागर करते हैं कि आज भी किसान वही होरी है उस पर चहुँतरफा आक्रमण हो रहे हैं। इस रचना में कृषिप्रधान देश के गरीब किसान पर होनेवाले अत्याचार पर पहार किया है। इस संग्रह की सभी रचनाओं में नेता, राजनीति, प्रशासन, नीति, गरीबी, शिक्षा, शिक्षाप्रणाली, शिक्षित वर्ग, शिक्षा के आधार पर नौकरी पाने के लिए उतावले लोग और नौकरी मिल जाने पर विविध माँगें पेश करनेवाले कर्मचारी सभी पर व्यंग्य किया है।

५. आओ बैठ लें कुछ देर-सन् १९६५

‘आओ बैठ लें कुछ देर’ यह बाबू श्रीलाल शुक्लजी की स्वाभाविक व्यंग्यात्मक शैली में सन् १९६२ के दौरान ‘नवभारत टाइम्स’ में लिखे गये प्रसिद्ध इक्कासी स्तंभ लेखों का संग्रह है। लेखों में व्यंग्य और विनोद का रंग भी मिलता है, लेकिन वे जिन स्थितियों, धारणाओं या विचारों से जुड़े हैं, वे संभवतः आज भी हमारी चिंतन-प्रक्रिया को सक्रिय बना सकते हैं।

इस संग्रह में समाज, राजनीति, साहित्य, राष्ट्रभाषा, रंगमंच, पत्रकारिता, धर्म, खेल, विज्ञान आदि विषयों पर समग्रता से विचार करने की एक निजी शैली देखने को मिलती है। यथार्थ में ये समीक्षा एक खास स्वभाव और खास शैली में लिखी गयी है, जिसकी प्रासंगिकता पर कभी धूल की परत नहीं टीक सकती। कुछ टीका घटना या खबर विशेष से प्रेरित होने के बावजूद अपना अधिक प्रभाव छोड़ जाती है।

इस संग्रह के लेखों को पढ़ना एक महत्वपूर्ण अनुभव लगता है, इसलिए नहीं कि इस प्रक्रिया में हम सिर्फ वर्तमान का स्पर्श कर रहे होते हैं, बल्कि इसलिए कि यह हमें बहुत कुछ विचार करने के लिए मजबूर करती हैं। इन व्यंग्यों में ऐसी अंतर्दृष्टि हैं, सूझभरी समझ हैं, जिससे वर्तमान को हम और अधिक प्रामाणिकता से जान पाते हैं। इसमें शुक्लजी के विचारात्मक व्यंग्य हैं।

६. अगली शताब्दी का शहर-सन् १९९६

‘अगली शताब्दी का शहर’ इस व्यंग्य-संग्रह में हास्य-व्यंग्य, निबंध, संस्मरण, कहानी और आत्मकथा के माध्यम से लेखक ने अपनी कलम द्वारा सम्यक् रचनाकार के व्यक्तित्व को एक खंड में प्रस्तुत किया है। प्रथम रचना का नामकरण ‘अगली शताब्दी का शहर’ है। इस संग्रह में एक साथ साहित्य के बहुरंगी पक्षों का साक्षात्कार इक्कीस रचनाओं में प्रस्तुत किया है। ज्यादातर रचनाएँ पिछले सात-आठ साल की हैं, कुछ उससे भी पुरानी हैं। इसमें सबसे नयी रचना ‘शिष्टाचार’ हैं, जो सन् १९९४ में लिखी है, सबसे पुरानी १९५६ की ‘हिमालय के दो सप्ताह’ है। इस संग्रह की कुछ रचना में राजनीति, नेता आदि पर व्यंग्य है।

‘अगली शताब्दी का शहर’ व्यंग्य-संग्रह में भगवतीचरण वर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा, देवीशंकर अवस्थी, अमृतलाल नागर तथा सफदर हाशमी की स्मृति में तहरीर उपस्थित किए हैं। वे इन साहित्य कर्मियों के अनेक अंतरंग पक्षों और आयामों को रेखांकित करते हैं। अतः अपनी विविधता और वैचारिक मौलिकता के आधार पर यह संग्रह लेखक के बहुरंगी लेखन का विशिष्ट प्रतिनिधित्व करता है। बाबू श्रीलाल शुक्लजी इस संबंध में कहते हैं - “इस संग्रह से पाठकों को मेरे प्रारंभिक साहित्य लेखन का स्वाद मिल जायेगा।”^{३५}

७. जहालत के पचास साल - सन् २००३

‘जहालत के पचास साल’ व्यंग्य-संग्रह में लगभग सौ से ज्यादा व्यंग्यो का समावेश किया गया है। श्रीलाल शुक्ल के रचना संसार की सबसे बड़ी शक्ति व्यंग्य हैं। शायद ही कोई दूसरा लेखक हो जिसने व्यंग्य का

इतना विपुल, विविध और बहुआयामी उपयोग किया हो। ऐसे अद्वितीय लेखक श्रीलाल शुक्ल के लगभग सभी व्यंग्य निबन्धों का संग्रह है - 'जहालत के पचास साल' इस तरह देखें तो इस संग्रह हिन्दी जगत में एक महत्वपूर्ण घटना तो है ही, यह एक अति विशिष्ट लेखक श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य की दुनिया को भली-भाँति जानने, समझने और उसमें सैर करने का दुर्लभ अवसर भी जुटाता है।

'जहालत के पचास साल' की रचनाएँ आधुनिक भारत के महान से महान व्यक्तियों, संस्थाओं, अवधारणाओं, घोषणाओं, नारों की भी गलतियों को नहीं बख्शतीं। समाज, सभ्यता और संस्कृति के किसी भी हिस्से की चूक पर श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य की बेधक मार के निशानों से भरी पड़ी है यह रचना। यह कहने में हर्ज नहीं कि यदि आज़ादी के बाद के भारत का असली चेहरा देखना हो तो वे समाजशास्त्र और पत्रकारिता से भी ज्यादा प्रामाणिक और यथार्थ दिखेगा।

श्रीलाल शुक्लजी के व्यंग्य को लेकर इन्द्रनाथ मदान ने कहा कि - "श्रीलाल शुक्ल सामाजिक, राजनीतिक असंगतियों, विकृतियों पर सीधी-तिरछी चोट करते हैं। इनके व्यंग्य का स्वरूप भी मंजा हुआ है।"^{३६}

'जहालत के पचास साल' रचनात्मक उत्कृष्टता का एक स्रोत यह है कि इसके व्यंग्य और हल्के-फूल्केपन के पीछे श्रीलाल शुक्ल का गहन अध्यवसाय, समय की सच्ची समझ और मनुष्यता के प्रति गहरे सरोकार का औसत समाज और औसत व्यंग्य लेखन दोनों को - कड़ी चुनौती देती हैं और फटकार लगाती हैं। संक्षेप में कहा जाए तो 'जहालत के पचास साल' में भारतीय सत्ता और समाज की कारगुजारियों से सीधी भिड़ंत है। इस लड़ाई में भाषा के लिए वह एक से बढ़कर एक अमोघ अस्त्र तैयार करते हैं।

८. खब्रों की जुगाली - सन् २००५

'खब्रों की जुगाली' बाबू श्रीलाल शुक्ल के तहरीर का नया आयाम है। यह न केवल व्यंग्य लेखन के नजरिए से महत्वपूर्ण है, बल्कि समाज में फैली अराजकता पर करारा व्यंग्य है। आज हमारे सामने कई समस्याएँ खड़ी हैं और जिम्मेदार कौन है ? इन बातों का चित्रण 'खब्रों की जुगाली' में देखते

है। ये रचनाएँ वस्तुतः नागरिक के पक्ष से भारतीय लोकतंत्र के धब्बों, जख्मों, अंतर्विरोधों और गड़बड़ों का आख्यान प्रस्तुत करती हैं। हमारे विकास के मोडल, चुनाव, नौकरशाही, सांस्कृतिक चूना, विदेशनीति, आर्थिकनीति आदि अनेक जरूरी मुद्दों की व्यंग्य-विनोद से सम्पन्न भाषा में कटु और गम्भीर पड़ताल की है 'खब्रों की जुगाली' की रचनाओं ने।

'खब्रों की जुगाली' व्यंग्य-संग्रह में श्रीलाल शुक्ल की छयालीस व्यंग्य रचनाएँ संग्रहित हैं। इस रचना में उन्होंने कोई-न-कोई विषय पर प्रहार अवश्य किया है। इस बात को लेकर श्रीलाल शुक्ल को व्यंग्य का वागीश और 'सटाचर' का सम्राट कहा जा सकता है। "वर्तमान शिक्षा पद्धति रास्ते में पड़ी कुतिया है जिसे कोई भी लात मार सकता है।"^{३७} इस प्रकार बाबू श्रीलाल शुक्लजी का करारा व्यंग्य है।

३.५.४ जीवनी लेखन

भगवतीचरण वर्मा और अमृतलाल नागर पर लिखे श्रीलाल शुक्ल के विनिबन्ध (जीवनी) कई तरह से महत्त्वपूर्ण हैं। श्रीलाल शुक्ल की अद्भुत आत्मीयता इन दो लखनवी कथाकारों के साथ रही। क्रिस्सागोई, व्यंग्यधर्मिता और सम्प्रेषणीयता के कुछ पाठ उन्होंने अपने इन अग्रज कथाकारों से भी सीखे। अपनी विशिष्ट शैली में उन्होंने भगवतीचरण वर्मा और अमृतलाल नागर का जीवन-सारांश लिखा है। उस समय के लखनऊ को इन शब्दों में याद करते हैं "यह उन साहित्यकारों के स्वभाव और ग्रहणशीलता का ही प्रभाव था कि उन दिनों विभिन्न विचारों, मतधाराओं और प्रवृत्तियों के विभिन्न आयु वर्ग वाले साहित्यकार पारस्परिक रूप से बड़ी आत्मीयता और सहज सामाजिकता का जीवन बिता रहे थे।"

भगवती बाबू के धुप्पली स्वभाव और नियमितवादी कर्तृत्व पर श्रीलाल शुक्ल की टिप्पणियाँ उल्लेखनीय हैं। वे विनिबन्धों में मूल्यांकन के लिए कुछ विशेष शब्दों का प्रस्ताव करते हैं। जैसे वे अमृतलाल नागर में 'चेष्टा' और 'प्रवृत्ति' को रेखांकित करते हैं। फिर यह निष्कर्ष निकालते हैं कि 'नागरजी मूलतः जीवन के उत्सव को व्यक्त करनेवाले कलाकार हैं।'

(१) भगवतीचरण वर्मा (जीवनी) सन् १९८६

भगवतीचरण वर्मा का हिन्दी साहित्य और साहित्यकारों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह आधुनिक हिन्दी साहित्य को जीवन के ही समान आयामी और बहुरंगी समझकर उससे बंधे हैं। उपन्यास, कहानी, नाटक, कविता, निबंध, एकांकी, हास्य-व्यंग्य इन सभी विधाओं में उन्होंने अपनी लेखनी चलाई है। सन् १९३० के आसपास अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत करते हुए जीवन के अंतिम वर्ष सन् १९७८ तक अर्थात् लगभग ५० साल भगवतीबाबू साहित्य के साथ लड़ते रहे।

हिन्दी के यशस्वी साहित्यकार-भगवतीचरण वर्मा का जन्म ३० अगस्त १९०३ ई जिला उन्नाव के सफीपुर गाँव में हुआ था। उनका परिवार एक सम्पन्न कायस्थ परिवार था। वर्माजी के पितामह तो दो-तीन गाँवों के जमींदार थे। वर्माजी के पिता देवीचरण अपने समय के एक अच्छे वकील माने जाते थे। सन् १९०८ में अपने पिता देवीचरण का अवसान हुआ। उस समय वर्माजी केवल पाँच वर्ष के बालक थे। पारिवारिक संस्कारों तथा आर्य समाज के प्रभाव के नाते उनकी शिक्षा-दीक्षा हिन्दी माध्यम में हुई। बाद में स्कूल में पढ़ाई के दौरान 'भारती' और 'सरस्वती' के अंकों से उनका परिचय बढ़ा। उनकी आठ साल की उम्र में ही पहली कविता 'गणेश-शंकर विद्यार्थी' द्वारा संपादित 'प्रताप' में प्रकाशित हुई। इसके बाद वे साहित्य की सभी विधाओं में समान रूप से लिखने लगे।

वर्माजी ने अपने उपन्यासों में सामाजिक वातावरण एवं वस्तु को चुना है। उन्होंने मध्यवर्ग और उच्चवर्ग को अधिक महत्त्व दिया है। पहला उपन्यास 'पतन' से लेकर 'सबहिं नचावत राम गुसाई' तक की उनकी कथा यात्रा अनेक बदलावों से बहती हुई उनके लेखन को विकास तक ले गयी। इस यात्रा में 'चित्रलेखा' जैसी प्रसिद्ध और रोचक रचना ने वर्माजी को सफलता के शिखर पर प्रस्थापित कर दिया। इस उपन्यास पर फिल्म भी बनी है। अपने अन्य सफल उपन्यासों में 'टेढ़ मेढ़े रास्ते', 'तीन वर्ष', 'सीधी सच्ची बातें' हैं। उन्हें सन् १९७१ में 'पद्मभूषण' से नवाजा गया। वे उत्तर प्रदेश हिन्दी समिति

के अध्यक्ष और राज्यसभा के सदस्य भी रहें। उनके जीवन की दास्तान को बाबू श्रीलाल शुक्लजी ने प्रकट की हैं।”^{३८}

(२) अमृतलाल नागर - सन् १९६४ (जीवनी)

आधुनिक हिन्दी साहित्य में अमृतलाल नागरजी का स्थान एक प्रभावशाली साहित्यकार के रूप में है। प्रसिद्ध समीक्षक डॉ. रामविलास शर्मा ने उन्हें बीसवीं शताब्दी के सशक्त हस्ताक्षर कहा है। अमृतलाल नागर का जन्म गोकुलपुरा, आगरा में १७ अगस्त १९६१ को हुआ था।

नागरजी का रचना संसार विशाल है। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी, जो उपन्यास, कहानी, हास्य-व्यंग्य, नाट्य साहित्य, सर्वेक्षण कार्य, संस्मरण, जीवनी एवं निबंध, बाल साहित्य, सहयोगी उपन्यास, नागरजी का अन्य साहित्य, अनूदित साहित्य आदि में प्रकट हुई हैं। वे सशक्त हस्ताक्षर हैं।

अमृतलाल नागर भारतीय इतिहास के धुंधले अतीत से ‘एकदा नैमिषाराण्ये’ जैसे उपन्यास की प्रेरणा लेते हैं तथा महाकवि तुलसीदास और सूरदास के औपन्यासिक चित्रण के सहारे हमें मध्यकाल के जीवन्त परिवेश में ले जाते हैं, वहीं दूसरी और उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के लखनऊ की पृष्ठभूमि में चार-चार बृहत् उपन्यासों की रचना करके बृहत्तर भारतीय समाज की गहन समस्याओं, उसकी आकांक्षाओं और विवशताओं से हमारा साक्षात्कार कराते हैं। समाज के वंचित और शोषित वर्गों से हमारा साक्षात्कार कराते हैं। समाज के वंचित और शोषित वर्गों से लेकर मध्यवर्ग तक की मानसिकता को साहित्य के माध्यम से अर्थोन्वित करने में नागरजी सिद्धहस्त हैं। कथा लेखन के विभिन्न शिल्पों का उन्होंने प्रयोग ही नहीं किया बल्कि कथाशिल्प के नये-नये आयामों की उन्होंने अवधारणा भी की है।

श्रीलाल शुक्लजी को अनेक वर्षों तक नागर जी के साथ रहने का अवसर मिला था। उस अनुभव और स्वतंत्र अध्ययन के सहारे उन्होंने इस जीवनी में नागरजी के जीवन और सृजनकर्म का बड़ा ही संतुलित और संवेदनशील आकलन प्रस्तुत किया है।

३.५.५ आलोचना

‘साहित्य’ और ‘आलोचना’ में अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है। अत्यन्त प्राचीनकाल से हम इन दोनों को साथ-साथ चलता पाते हैं। इन दोनों के सह-अस्तित्व की यह प्रक्रिया साहित्य के सर्वांगीण विकास में सहायक रही है। जहाँ साहित्य है, वहाँ किसी-न-किसी रूप में आलोचना भी है।”^{३६}

(१) अज्ञेय : कुछ रंग, कुछ राग (आलोचना-सन् १९६६)

बाबू श्रीलाल शुक्ल ने उपन्यास, कहानी, हास्य-व्यंग्य, जीवनी, निबंधों आदि के लेखन के साथ ‘अज्ञेय-कुछ रंग, कुछ राग’ इस आलोचनात्मक संक्षिप्त पुस्तक के माध्यम से अज्ञेय के कथाकार रूप और व्यंग्यकार रूप को केन्द्र में लिया हैं।

श्रीलाल शुक्ल की रचनाशीलता आलोचनात्मक विवेक से ही प्रेरित, संचालित व संयमित रही है। वे खूब पढ़नेवाले और पढ़े हुए पर अपनी राय बनानेवाले लेखकों में माने जाते हैं। उन्हें सुनना एक अदभुत अनुभव होता है। ‘अज्ञेय : कुछ रंग, कुछ राग’ पुस्तक में उनके वे व्याख्यान हैं, जो अज्ञेय की स्मृति में आयोजित व्याख्यानमाला में दिये गए। कहानी, उपन्यास और व्यंग्य जैसी विधाओं में लिखे गए अज्ञेय साहित्य पर श्रीलाल शुक्ल के विचार वस्तुतः एक भिन्न आलोचना-प्रविधि का प्रस्थान बनाते हैं।

अज्ञेय के उपन्यासों पर विचार करते हुए श्रीलाल शुक्ल आधुनिक हिन्दी उपन्यास का विकासेतिहास प्रस्तुत करते हैं। ‘शेखर : एक जीवनी’ को वे ‘अपने सम्पूर्ण अर्थों में हिन्दी का शायद पहला आधुनिक उपन्यास’ कहते हैं। बुनियादी तौर पर ‘अज्ञेय’ एक कवि थे। उनके गद्य लेखन में भी उनके कवि की झंकार है। अज्ञेय का कथा साहित्य भी उतना ही महत्वपूर्ण और समृद्ध जितनी उनकी कविताएँ अपने विशिष्ट अनुभव और वैयक्तिक आग्रहों के कारण प्रेमचंद के बाद उन्होंने कथा साहित्य को एक नया मोड़ दिया उनके कथा साहित्य में इस वैयक्तिक आग्रह के बावजूद गहरी राष्ट्रीयता और गंभीर सामाजिक समस्याओं का संदर्भ विद्यमान हैं।

३.५.६ संपादन

बाबू श्रीलाल शुक्लजी ने कई ऐसे व्यंग्यकारों को लेकर 'हिन्दी हास्य-व्यंग्य संकलन पुस्तक का संपादन सन् १९६७ में किया। हिन्दी हास्य-व्यंग्य संग्रह में श्रीलाल शुक्लजी ने व्यंग्यकारों के बारे में जानकारी देने के लिए इस संग्रह को संपादित किया हैं। इसमें शंकर पुणतांबेकर, सुदर्शन मजीठिया, शांति मेहरोत्रा, के.पी. सक्सेना, लतीफ धोंधी नरेन्द्र कोहली, स्व.लक्ष्मीकान्त वैष्णव, अशोक शुक्ल, सूर्यबाला, हरीश नवल, बालेन्द्र शेखर तिवारी, प्रेम जनमेजय, विष्णु नागर, दामोदर दत्त दीक्षित, ज्ञान चतुर्वेदी, सुरेशकांत आदि की रचनाएँ बड़े सम्मान से प्रस्तुत की हैं।

३.५.७ बाल-साहित्य

श्रीलाल शुक्लजी ने 'संजय और विजय' नामक बाल साहित्य और 'बब्बरसिंह और उसके साथी' बच्चों के लिए लिखा गया अर्थपूर्ण लघु उपन्यास है। चिड़ियाघर के कैदी बब्बरसिंह और उसके दोस्त संजय, विजय व रंजना की मित्रता से सद्भाव तथा स्वतंत्रता के कई निहितार्थ खुलते हैं। निष्कर्ष है, "जिसे आज़ादी प्यारी होती है वह जान की परवाह नहीं करता, न आराम की ही।"^{४०}

श्रीलाल शुक्लजी ने विविध गद्य विधाओं में अपना स्थान स्थापित करते हुए इस रचना के माध्यम से बाल साहित्य में अलग अस्तित्व आजमाने का प्रयास किया है। श्रीलाल शुक्ल इस बालपयोगी रचना में जिन जीवनमूल्यों का समर्थन करते हैं वे मूल्यवान हैं। कहा जा सकता है कि श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में 'जीवन ही जीवन' है और वे 'जीवन में छिपे जीवन' को पहचान कर उसकी पुनर्रचना करने में सफल हुए हैं।

३.५.८ अनुवाद

श्रीलाल शुक्लजी की अनेक कहानियाँ और व्यंग्य रचनाओं का भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ है। उपन्यास को लेकर देखे तो शुक्लजी की कालजयी रचना या उपन्यास 'राग दरबारी' का अंग्रेजी एवं सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ। और एक उपन्यास 'पहला पड़ाव' को देखे

तो ये शुक्लजी को अधिक ऊँचाई सौंपता है। उनका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद हुआ। 'मकान' नामक उपन्यास का अनुवाद बांग्ला भाषा में हुआ। जिसे हम बाल उपन्यास कहते हैं 'बब्बरसिंह और उसके साथी' का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद हुआ है।

३.५.६ सम्मान, पद एवं पुरस्कार

बाबू श्रीलाल शुक्ल विलक्षण गद्यकार के रूप में स्थापित है। राग दरबारी उनकी ऐसी अमर कृति है जिसने हिन्दी रचनाशीलता को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सुयश दिलाया। उनको त्यागकर भी उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण रचना आधुनिक हिन्दी साहित्य को उपहार के रूप में दी है। उनको लेकर श्रीलाल शुक्लजी का कई सम्मान, पद, पुरस्कार से नवाज़ा गया है।

- (१) 'राग दरबारी' उपन्यास पर साहित्य अकादमी पुरस्कार-
सन् १९७०
- (२) 'मकान' उपन्यास पर म.प्र.हिन्दी साहित्य परिषद् का
पुरस्कार-सन् १९७८
- (३) भारतेन्दु नाट्य अकादमी, लखनऊ के निर्देशक (पद)
सन् १९८०
- (४) भारतीय लेखक प्रतिनिधि, अन्तर्राष्ट्रीय लेखक सम्मेलन,
बेलग्रेड सन् १९८१
- (५) सदस्य, हिन्दी सलाहकार समिति, साहित्य अकादमी -
सन् १९८२
- (६) एमरेट्स फेलोशिप, भारत सरकार-सन् १९८७-९०
- (७) उ.प्र. हिन्दी संस्थान का साहित्यभूषण सम्मान-सन् १९८८
- (८) गोयल साहित्य पुरस्कार, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय -
सन् १९९१
- (९) उ.प्र. हिन्दी संस्थान का अतिविशिष्ट 'लोहिया सम्मान'
सन् १९९४
- (१०) शरद जोशी सम्मान, मध्यप्रदेश शासन-सन् १९९६

- (११) मैथिलीशरण गुप्त सम्मान, मध्यप्रदेश शासन-सन् १९९७
- (१२) बिडला फाउन्डेशन का व्यास सम्मान-सन् १९९९
- (१३) यश भारती, उ.प्र. शासन-सन् २००५
- (१४) पद्मविभूषण-सन् २००८

● संदर्भ सूची ●

- (१) श्रीलाल शुक्ल : यह घर मेरा नहीं, पृ. ११३
- (२) सं. अखिलेश : श्रीलाल शुक्ल की दुनिया, पृ. ०४
- (३) हास्य-व्यंग्य भारती-पत्रिका, पृ. १३
- (४) राधा दीक्षित : राग दरबारी का शैली वैज्ञानिक अध्ययन से उद्धृत, पृ. ३६
- (५) सं. अखिलेश : श्रीलाल शुक्ल की दुनिया, पृ. ६१
- (६) वही, पृ. ६८
- (७) श्रीलाल शुक्ल : यह घर मेरा नहीं, पृ. ११५
- (८) वही, पृ. ११५
- (९) श्रीलाल शुक्ल : यह घर मेरा नहीं, पृ. ७३
- (१०) श्रीलाल शुक्ल : मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनायें, पृ. १०८
- (११) तद्भव, पत्रिका-पृ. ६३
- (१२) सं. अखिलेश : श्रीलाल शुक्ल की दुनिया, पृ. १०
- (१३) धर्मयुग, पत्रिका, पृ. २७
- (१४) दीक्षित राधा : राग दरबारी का शैली वैज्ञानिक अध्ययन से उद्धृत, पृ. ३३
- (१५) सं. अखिलेश : श्रीलाल शुक्ल की दुनिया, पृ. १५०
- (१६) वही, पृ. ६०
- (१७) श्रीलाल शुक्ल : कुछ ज़मीन पर कुछ हवा में, पृ. १६
- (१८) रामगोपाल सिंह : हास्य-व्यंग्य भारती, पृ. १३
- (१९) सं. अखिलेश : श्रीलाल शुक्ल की दुनिया, पृ. १६४
- (२०) श्रीलाल शुक्ल : अज्ञातवास, पृ. ५६
- (२१) रामगोपाल सिंह : हास्य-व्यंग्य भारती, पृ. १३
- (२२) सं. डॉ. नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. ६८५
- (२३) तद्भव-पत्रिका, मार्च-१९६६, पृ. ०४

- (२४) डॉ. रामविनोद सिंह : आठवें दशक के हिन्दी उपन्यास, पृ.०४
- (२५) डॉ. नामवरसिंह : श्रीलाल शुक्ल संचयिता, पृ.१२
- (२६) वही, पृ.१२
- (२७) वही, पृ.१३
- (२८) श्रीलाल शुक्ल : सुरक्षा और अन्य कहानियाँ, पृ. परिचय-
प्रस्तावना
- (२९) श्रीलाल शुक्ल : इस उम्र में, पृ.१३
- (३०) डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी : हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य
और व्यंग्य, पृ. २१७
- (३१) दीक्षित राधा : राग दरबारी का शैली वैज्ञानिक अध्ययन, पृ. ३१
- (३२) श्रीलाल शुक्ल : यहाँ से वहाँ, पृ.५६
- (३३) श्रीलाल शुक्ल : मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, पृ.११
- (३४) डॉ. स्मिता चिपलूणकर : हिन्दी के प्रमुख व्यंग्यकार'
से उद्धृत, पृ.१३०
- (३५) श्रीलाल शुक्ल : अगली शताब्दी का शहर, पृ.०६
- (३६) इन्द्रनाथ मदान : हिन्दी का हास्य-व्यंग्य विद्या का स्वरूप
और विकास, पृ.४२
- (३७) डॉ. बापूराव देसाई : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास,
पृ.२७
- (३८) हंस-पत्रिका, जनवरी-२००१, पृ. ३५
- (३९) राजनाथ शर्मा : साहित्यिक निबन्ध, पृ.५४६
- (४०) अखिलेश : श्रीलाल शुक्ल की दुनिया, पृ.१३

चतुर्थ अध्याय

- ४.० श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों की कथ्यगत समीक्षा एवं विशेषताएँ
- ४.१ प्रस्तावना
- ४.१.१ सूनी घाटी का सूरज : कथ्यगत समीक्षा
- ४.१.२ सूनी घाटी का सूरज का अंत
- ४.१.३ अज्ञातवास : कथ्यगत समीक्षा
- ४.१.४ अज्ञातवास का अंत
- ४.१.५ राग दरबारी : कथ्यगत समीक्षा
- ४.१.६ राग दरबारी का अंत
- ४.१.७ आदमी का जहर : कथ्यगत समीक्षा
- ४.१.८ आदमी का जहर का अंत
- ४.१.९ सीमाएँ टूटपी हैं : कथ्यगत समीक्षा
- ४.१.१० सीमाएँ टूटती है का अंत
- ४.१.११ मकान : कथ्यगत समीक्षा
- ४.१.१२ मकान का अंत
- ४.१.१३ पहला पड़ाव : कथ्यगत समीक्षा
- ४.१.१४ पहला पड़ाव का अंत
- ४.१.१५ बिस्रामपुर का संत : कथ्यगत समीक्षा
- ४.१.१६ बिस्रामपुर का अंत

४.० श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों की कथ्यगत समीक्षा एवं विशेषताएँ

४.१ प्रस्तावना

कथा या कहानी के प्रति मनुष्य की प्रारंभ से ही अर्थात् आदिकाल से ही अधिक अपनापन और उत्सुकता रही है। कथा सुनना और सुनाना उसकी जन्मजात प्रवृत्ति है इसलिए वह उसके प्रति सजग भी रहा है। आदिकाल में जब आज के जैसे मनोरंजन के आधुनिक साधन नहीं थे तब दिनभर काम कर के व्यथित व्यक्ति जब घर लौटता था तब खाना खाने के बाद समवयस्क लोग एकसाथ होकर कथा सुनकर अपना आनंद कर लेते थे। तब कहानी या कथा सुनाने के लिए खास प्रकार के कथावाचक लोग होते थे। समय-परिवर्तन के साथ सब कुछ बदलता चला गया परन्तु मनुष्य की मूल प्रवृत्ति-कथा रूचि नहीं बदली; उसके आयाम भले ही बदल गए हों, सन्दर्भ बदल गए हों, परन्तु प्रवृत्ति अब भी शेष है। युगानुरूप मानव के मनोरंजन के साधनों में भी परिवर्तन आए। पुराने काल में कथावाचक लोग कथा या कहानियाँ सुनाकर लोगों का मनोरंजन किया करते थे। बाद में कुछ नाटक मंडलियाँ उभरीं। वे गाँव-गाँव, शहर-शहर जाकर नाटक या आख्यानो के माध्यम से लोगों का मनोरंजन करने लगीं।

उपन्यास विधा सही अर्थों में आधुनिक युग की ही देन है और उसका उद्भव नए आर्थिक संगठन के फलस्वरूप उत्पन्न सफेदपोश मध्यवर्ग तथा आधुनिक रूप में शिक्षित मध्यवर्ग की सुधारवादी प्रवृत्तियों के कारण ही हुआ है। इसीलिए लोग रात-रात जागकर कथा कहानियों का आस्वाद लेते थे। बाद में रामलीला शुरू हुई। निःसंदेह रामलीला में पात्रों का अधिक महत्व रहता था परन्तु बिना कथानक के रामलीला का खेल देखना और दर्शको का उसे सानन्द देखना सम्भव नहीं था। विज्ञान युग के अवतरण से व्यक्ति जीवन की समस्त दिशाओं में परिवर्तन हुए। शिक्षा और साहित्य के नए आयाम खुल गए। साहित्य में महाकाव्य, नाटक, उपन्यास आदि विधाएँ अपनी-अपनी विशेषताओं के साथ अवतीर्ण हुईं मगर उनकी मूल चेतना अर्थात्

‘कहानी’ नहीं हटाई गई। चाहे किसी भी रूप में क्यों न हो पर इन सभी विधाओं में कहानी अवश्य रही है। ‘कथा’ पाठक की एक आवश्यक माँग है। मनोरंजन के साधन भी समय के साथ बदले जैसे रेडियो, टी.वी., सिनेमा, वीडियो आदि परन्तु श्रोता, दर्शक अथवा पाठक की माँग और रुचि वहीं है।

उपन्यास गद्य-साहित्य की एक आधुनिक एवं विकसित विधा है। साथ ही साथ वह हमेशा प्रगतिशील भी है। प्रारम्भ में उसका आशय आनंद ही रहा है। प्रारम्भिक विकास काल में घटना-विन्यास या कथातत्त्व का इतना अधिक महत्त्व रहा कि ‘घटना प्रधान’ उपन्यासों की एक परम्परा ही चल पड़ी थी। संवेदनात्मक गतिशील जीवन की अभिव्यक्ति उपन्यास में उपन्यास का प्रमुख लक्षण है परिणाम युक्त घटना-प्रवाह अर्थात् एक सुनिश्चित कथानक। परम्परागत उपन्यास की बनावट में कथा कहने की प्रचलित पद्धतियों, संयोगों, चमत्कारपूर्ण घटनात्मक विन्यासों तथा पाठकीय प्रत्याशाओं को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। कई आधुनिक समझे जानेवाले उपन्यासों के सृजन में भी इन बातों का प्रयोग होता रहा है। उपन्यास पढ़ते हुए हमें किसी न किसी प्रकार की कथा का बोध अवश्य होता है चाहे वह कथारूप ठोस हो या क्षीण। यह कथारूप कहीं कम दृष्टिगत होता है, कहीं ज्यादा कहीं सुगठित तो कहीं बिखरा हुआ। इससे स्पष्ट है कि उपन्यास में कथा तत्त्व अवश्य विद्यमान रहता है।

उपन्यास के कथ्य को लेकर भारतभूषण अग्रवाल के शब्दों में - “प्रत्येक उपन्यास में यथार्थ के एक विशिष्ट पहलू को उजागर करने के लिए एक कथानक होता है - चाहे सुसंबद्ध, विशृंखल या विरल। उपन्यासकार अपने आशयानुरूप उस कथानक का प्रयोग अपने उपन्यास में करता है। प्रत्येक उपन्यास में एक कथा-सूत्र आदि से अन्त तक प्रवर्तमान रहता है। साहित्यकार साधारण में से असाधारण को चुनकर ही महान बन सकता है। साहित्य सदैव प्रभावात्मकता एवं व्यापक संवेदनशीलता की कसौटी पर कसकर ही किसी विषय को चुनता है। जो घटना जीवन के मर्म को घोषित कर उसमें प्राण, ज्योति और गति का संचार करने में पूर्णतया सक्षम हो सके वही कलापूर्ण कृति

का रूप धारण कर सकती है। इस तरह घटनाक्रम या कथावस्तु का उपन्यास में एक विशिष्ट स्थान होता है और उसका महत्त्व इस बात पर निर्भर करता है कि उपन्यासकार किस रूप में और किस आशय से उसका उपयोग करता है।”

उपन्यास विधा का निर्माण और विकास पश्चिम में सशक्त रूप से होने के कारण उसके रूप पर भी पश्चिम में ही अधिक विस्तार से विचार हुआ है। उपन्यास के कथानक पर भी वहाँ विस्तार से चर्चा हुई है। ई.एम.फोर्स्टर ने अपने ‘आस्पेक्ट्स ओफ द नोवेल’ ग्रन्थ में उपन्यास के कथ्य पर कठोर प्रहार किया है। फिर भी उसका अपना महत्त्व भी निरूपित किया है। उनकी मान्यता है कि यद्यपि ‘कथा’ उपन्यास का सबसे कुरूप और जुगुप्साजनक पक्ष है, तो भी उसका अपरिहार्य अंग है। अलग-अलग उपन्यासों में उसका स्वरूप भी भिन्न-भिन्न हो सकता है। कथा स्थूल या कृश, प्रधान या गौण, गठित या अगठित हो सकती है, पर वह रहती जरूर है। इस तरह कथ्य को उपन्यास का मूल ढाँचा मान लिया गया है। डॉ. गोपालराय भी मानते हैं कि कथा उपन्यास के लिए अनिवार्य गुण है, वही उसका मूलाधार है।

उपन्यास के सन्दर्भ में कथ्य और कथावस्तु या कथाविन्यास में पर्याप्त अन्तर है। इसीलिए तो उपन्यास में कथा होती है परन्तु केवल कथा को ही उपन्यास नहीं कहा जा सकता। उपन्यास में कथा के इस योजना का अत्यन्त महत्त्व है। इस योजनाबद्ध, कथा को ही कथानक कहा जा सकता है। परन्तु डॉ. गोपालराय ‘कथानक’ को कथानक न कहते हुए उसे ‘कथा-विन्यास’ मानना अधिक उचित समझते हैं जो अधिकांश में सही और स्वीकार्य है। उनका मत है - ‘कथानक’ अंग्रेजी के ‘प्लोट’ शब्द का पर्याय है। इसमें शक नहीं कि यह बहुत ठीक पर्याय नहीं है, प्लोट में एक षड्यंत्र, एक रचना, एक कला का भाव है जो ‘कथानक’ में नहीं है। शायद इसका सटीक पर्याय होता ‘कथा-विन्यास’। कथा अपने विशुद्ध एवं मूल रूप में समयानुक्रम में उपन्यासकार द्वारा नियोजित घटनाओं का विवरण मात्र है। घटना वह कार्य-व्यापार है जिसमें आकस्मिकता और असाधारणता का तत्त्व निहित होता है। समयानुक्रम और घटना के संयोग से कथा निर्मिति होती है।

कथ्य का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व जिज्ञासा या कौतूहल वृत्ति को जगाना होता है। यह वृत्ति ही उपन्यास की रोचकता से जुड़ी होती है। घटनाएँ जब आकस्मिक तथा अप्रत्याशित रूप से मोड़ लेती हुई आगे बढ़ती हैं तभी उपन्यास अत्यधिक रोचक बनता है। अतः कथा में कौतूहल वृत्ति अथवा जिज्ञासा का परितोष करने की सामर्थ्य होना आवश्यक है। उपन्यास अपनी समस्त विशेषताओं के साथ हर युग में बदलता रहा है। समाज के अनेकविध परिवर्तनों के साथ और मानव जीवन के प्रवाह के अनुकूल उपन्यास विधा ने अपने आपको ढालने का प्रयास किया है। इस दृष्टि से उसके पारम्परिक तत्त्वों के प्रति भी बदलती धारणाओं का दौर गुजरा है। उपन्यास के प्राणवान तत्त्व के रूप में कथा को शुरु से ही मान्यता रही है। किन्तु ज्ञान-विज्ञान एवं जीवन विषयक मान्यताओं के द्रुत परिवर्तन के साथ पाठकों की रुचि और मानसिकता में भी परिवर्तन होते गए। परिणामतः कथा के मूल आशय के प्रति उपन्यासकारों तथा समीक्षकों की धारणाएँ परिवर्तित होती रही हैं।

प्रारंभिक उपन्यासों में कथा को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। उस काल की मान्यता थी कि कथा में रहस्य का निर्माण होता है और फिर अन्त में उसे खोलकर सुलझाने की कोशिश रहती है। इस तरह इस काल के उपन्यासों में रहस्यात्मक कथाओं की प्रधानता रही। ये उपन्यास पाठकों को रहस्यात्मक कथानक में उलझाकर रखते थे और अन्ततः रहस्य को सुलझाकर कथानक समाप्त होता था। इसके उपरान्त उपन्यास की कथा घटना-प्रधान हो गई। घटना-प्रधान उपन्यास लिखनेवाले उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में कथा को घटनाओं की श्रृंखला के माध्यम से प्रस्तुत किया। नाटकीय उपन्यासों का कथानक प्रगाढ़ होता है। इनमें कथानक उनकी उपलब्धि का एक अंग होता है।

उपन्यास के इतिहास में शुरु से ही उपन्यास में कथा का स्थान वही माना जाता था जो शरीर में हड्डियों का माना जाता है। शुद्ध मनोरंजन की आशयपूर्ति के लिए उपन्यासों में कथा को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती थी और उस पर अत्यधिक बल भी दिया जाता था। युग-परिवर्तन के

साथ-साथ कथा के प्रति धारणाएँ बदलती गई और बीसवीं सदी के तीसरे-चौथे दशक से उपन्यासों के कथा-तत्त्व के प्रति अरुचि, उदासीनता दिखाई जाने लगी तथा आगे चलकर उससे धृणा एवं द्वेष भी किया जाने लगा ।

उपन्यासकार अपने कथानक का चुनाव इतिहास, पुराण या जीवनी किसी भी क्षेत्र से कर सकता है । किन्तु कथानक के कौशलपूर्ण उचित चुनाव में ही लेखक की सफलता निहित है । जिस किसी भी विषय का वह चुनाव करे उस विषय से उसका पूर्ण परिचय होना चाहिए । यदि वह पौराणिक काल के किसी कथानक का चुनाव करता है तो उस काल की सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों का उसे पूर्ण ज्ञान होना चाहिए ।

उपन्यास में कथा-विन्यास भी कथा के समान समयानुक्रम में नियोजित घटनाओं का वर्णन ही है, पर उसमें बल 'कारणत्व' या 'कार्य-कारण सम्बन्ध' पर होता है । कथानक के लिए केवल जिज्ञासा वृत्ति जागृत करना ही पर्याप्त नहीं है । फोर्स्टर मानते हैं कि उत्सुकता-वृत्ति मानव-मस्तिष्क की सबसे छोटी शक्ति है । उपन्यास में कौतूहल हमें किसी दूरस्थ सीमा तक न ले जाकर केवल पगडंडी तक ही ले जा सकता है । अतः औपन्यासिक कथा-विन्यास में कौतूहल वृत्ति के साथ प्रतिभा और मौलिकता का होना भी आवश्यक है । समय का निलंबन भी कथा-विन्यास की अपनी विशेषता है । इसी प्रकार संतुलन, संबद्धता और सुगठन आदि भी कथा-विन्यास की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं । नाटकीय दृश्यों के कारण ही उपन्यास के कथानक का प्रभाव पाठकों के मन पर गहरा और स्थायी होता है । कभी-कभी तो पाठक उपन्यास की कथा को भी भूल जाता है मगर अपने मन पर प्रतिबिम्बित किसी विशिष्ट नाटकीय दृश्य को वह कभी भूल नहीं सकता ।

अतः स्पष्ट है कि हर उपन्यास में पारम्परिक दृष्टि से देखा जाय तो चाहे किसी भी रूप में और कितनी भी मात्रा में क्यों न हो एक सुगठित, सुसम्बद्ध तथा सुनियोजित कथा का होना अति आवश्यक है । सतत नकारने के बावजूद भी यह मानना पड़ता है कि आधुनिक युग के उपन्यासों में

भी वह क्षीण, विरल एवं अत्यल्प ही क्यों न हो किसी न किसी रूप में विद्यमान है।

४.१.१ सूनी घाटी का सूरज उपन्यास की कथ्यगत समीक्षा

श्रीलाल शुक्ल के प्रारम्भिक उपन्यास 'सूनी घाटी का सूरज' रचनाकार के सामाजिक बोध, और सृजनात्मक उत्तरदायित्व दोनों को उजागर करते हैं। सूनी घाटी का सूरज के प्रारम्भ में रामदास सोचता है : “यह संधिकाल है। न जाने किस अतल से उभरता सा है। तब नहीं जान पड़ता कि क्या हो रहा है पर जब कुछ धीरे-धीरे एक नये तत्व से ढंक जाता है तब जान पड़ता है कि जो पहले था वह अब नहीं रहा। तब लोग बाहर आते हैं और कहते हैं कि नया तत्व हम से पैदा हुआ है। पर वह न जाने किस अतल से आता है।”^१

‘सूनी घाटी का सूरज’ में हीरो का सर्वहाराकरण ही नहीं है बल्कि सर्वहाराओं के क्षेत्र में काम करने की विवशता भी है। उपन्यास वर्गों में बंटे हुए समाज को ध्यान में रखकर नहीं लिखा गया है परंतु अपनी बनावट और सम्प्रेषणीयता में है वह वैसा ही है। विमर्श की दृष्टि से कहा जा सकता है कि यह ऐसे प्रश्नों और जिज्ञासाओं का उपन्यास है जो रामदास के अपने साक्षात्कार और संघर्ष से उपजे हैं। वे बौद्धिक विकास से रूप में ही नहीं बल्कि जीवनानुभव की प्रक्रिया में विकसित सामाजिक प्रश्न हैं। रामदास का प्रश्न है कि क्यों शिकार वहीं होते हैं, शिकारी बदलते रहते हैं। क्यों उसी को सारे ज्ञान और प्रतिभा के बावजूद इन चैतुओं के बीच आना पड़ा ? वही क्यों ? इन प्रश्नों का उत्तर एक है क्योंकि वह गरीब था। इस उपन्यास में उस लोक का प्रत्यक्षीकरण है जो अपने लोक में प्रवेश करने की स्वीकृति मृत्यु पर ही देता है। शासक वर्ग कैसे सवर्ण जाति के भी गरीब और सर्वहारा को अपना सेवक ही देखना चाहता है। सर्वहारा चाहे जिस वर्ग का हो उसकी प्रगति के रास्ते में अनेक प्रकार की बाधाएँ स्वाभाविक हैं।

रामदास जो श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों की संक्रामकता और सीमा दोनों का कारण है, को स्पष्ट करने के लिए कुछ उद्धरण दे रहा हूँ।

इन उद्धरणों की आंतरिक समानताएं और अभिव्यक्तिगत अंतर काफी महत्वपूर्ण है : “जिस अभिशप्त देश में मैं खड़ा हूँ वहां सब कुछ देखने के ही लिए है। यहां एक और आठ आने पैसे के पीछे कोई स्त्री सांप और बिच्छुओं को रौंदती हुई दो रोगी बच्चों के भविष्य की आशंका से कांपते हुए प्राणों के साथ मन-मन भर के पत्थर सर पर लाद कर पहाड़ियों की ऊंची नीची पगडंडियों पर टकराती चलती है। यहां अशिक्षा और दरिद्रता के क्रूर आतंक में मानव शरीर का अब भी दासों जैसा व्यापार होता है। रोगों के संक्रामक आघातों और प्राकृतिक विपत्तियों को झेलने के लिए सिवाय भाग्य के और कोई औषधि नहीं है। फिर भी यहां छ : आने में अमृत बिन्दु मिलता है जिसने बीस वर्ष से मनुष्य को अमरों की श्रेणी में बिठा रखा है।”^२

‘सूनी घाटी का सूरज’ में जमींदारी उन्मूलन की पीड़ा जमींदारों के लिए जमींदारी टूटने की पीड़ा नहीं बल्कि यह पीड़ा है कि कुछ समानता होने पर अब गंगापुर के पासी चमार तक महाराजा हो जाएंगे। गंगापुर रियासत के महाराज सुरेन्द्र सिंह राजघर, राजेश्वर सिंह, अम्बिकेश सिंह सभी व्यवहार, बातचीत में सामंती हैं। उनके भाव बोध भी वही हैं। सभी पात्र किसी न किसी प्रकार की रियासत से जुड़े हैं।

‘सूनी घाटी का सूरज’ में रामदास का अच्छाई मात्र पर से विश्वास उठ जाता है। राजेश्वर बाबू और सुरेन्द्र प्रताप के पत्रों को पढ़ कर उसे सभी सम्बन्ध स्वार्थ प्रतीत होते हैं। चैतुओं का स्नेह उसे अपना लगता है। उसका उनके पास लौटना विकल्पहीनता के भी कारण और अपनी आस्था के विनाश के कारण भी है, इसे ही रामदास कहा जा सकता है। रामदास अपने सर्वहारा को स्वीकार करता है परंतु भारतीय समाज में सवर्णता के तर्क से वह पूर्णतः सर्वहारा भी नहीं बन पाता। इस दृष्टि से प्रारम्भिक उपन्यासों में इसी प्रकार का अजीब सा बोध मिलता है। जिसे निश्चय ही निराशावादी भी नहीं कहा जा सकता। बल्कि रामदास के अंतिम कथन में तो एक प्रकार की अनुभव सम्पन्नता या दुनिया को समझ लिया है - मेरी नियति यही है - निष्कृति यही है का गंभीर बोध भी मिलता है।

श्रीलाल शुक्ल का पहला उपन्यास 'सूनी घाटी का सूरज' अपने नायक रामदास के माध्यम से एक पूरी पीढ़ी की तेजस प्रतिभा की दारुण अवमानना की प्रभावी कथा है जो अब भी अपनी सार्थकता की प्रतीति इस रूप में देता है कि रामदास जैसों के अनुपयुक्त स्थान पर पहुंचने की कथा अभी रूकी नहीं है, वह और भी तीव्र गति से अपने घिनौने रूप प्रदर्शित कर रही है। प्रतिभा, योग्यता और कार्य क्षमता, निष्ठा सब रद्दी की टोकरी की वस्तु बन रही हैं और रद्दी की टोकरी की जिनसे पदासीन, सत्तासीन है।''^३

'सूनी घाटी का सूरज' की कथावस्तु भारत के सामान्य ग्रामीण जीवन के शोषक तत्वों और उनके शिकार होते निरीह लोगों से सम्बन्धित है। रामदास उपन्यास के केन्द्र में स्थित है। सारी कथावस्तु उसके विभिन्न सम्पर्क सूत्रों से निर्मित होते हुए आगे बढ़ती है।

पिता के मरते ही रामदास ठाकुर की भैंसे चराने को विवश हुआ। सामान्यतः असहाय और अनाथ होने की स्थिति में वह जीवन भर भैंसे ही चराता रहता, पर पढ़ने की ललक उसे मदरसे तक ले गई और फिर एक के बाद दूसरे सूत्र को वह पकड़ता गया। हर सूत्र को उससे काम लेने की अपेक्षा थी और उसी को पढ़ने के लिए अवसर पाने की। इस प्रकाश मुंशी नवरतनलाल, गंगपुरा रियासत के महाराज, हेडमास्टर अम्बिका सिंह, फुलाकाकी, ठाकुर राजेश्वर सिंह का कृपा पात्र बनकर एम.ए. तक की पढ़ाई कर उसने सबको चमत्कृत किया। पर उसके पास परम्परा, जाति, धन, सम्बन्धी, सहायक न थे। उसके अयोग्य मित्र इन साधनों से बड़ी जगहों पर पहुँच चुके थे। वह ही अकेला ऐसा था जो कहीं पर नहीं था।''^४

जो उसके लिए कुछ करना चाहते थे, उनके अपने स्वार्थ थे। पर रामदास अब साधन न बनना चाहता था। इसलिए बेबी से विवाह करने के बदले उसने लंदन स्कूल ओफ इकनॉमिक्स जैसी कृपा को ठुकरा दिया। योग्यता के बावजूद जब डॉ. सिन्हा ने उसे कॉलेज में नौकरी नहीं दिलाई तो उसने महसूस किया जैसे उसके पूरे अतीत, सारे वर्तमान ने उसे घेर लिया है। यही तेजस्विता की एक किरण उभरी, किसी भी आघात पर दुखी होना छोड़कर

उसने अमजद अली के आमंत्रण पर एक छोटी-सी बस्ती में मास्टरी की नौकरी कर ली और वह सूरज अब वहीं चमकने लगा ।

‘सूनी घाटी का सूरज’ एक चरित्र प्रधान उपन्यास है किन्तु रामदास का चरित्र जिस रूप में प्रस्तुत हुआ है, उससे वह एक पूरी पीढ़ी का प्रतिनिधि बन जाता है जो शिक्षा के लिए न जाने किस-किस तरह के कितने-कितने संघर्ष कर ‘सैल्फ मेड’ के रूप में पहुंचा है। साधनहीन और शैशव में ही अनाथ हुआ रामदास एक अनाथ जिजीविषा से परिपूर्ण है जो घोर संकटों में भी शिक्षा के उच्चतम को आयत करता है, केवल अपनी लगन और कठोर परिश्रम से। यद्यपि वह ठाकुर जाति का है किन्तु वह सवर्णों की उस हेसियत का प्रतिनिधि है जो बदतर जीवन जीते हैं। अपने ऋणों को चुकाने की चेष्टा में उसके पिता अपनी ही जाति के व्यक्ति के शोषण का शिकार होते हैं। बंधुआ मजदूर की जिन्दगी जीने और मालिक सेवा में ही कोल्हू में अपने हाथ फंसवा कर अंततः प्राण देने को अभिशप्त पिता की अंतिम समय में बेटे को यह सीख कि “बड़े ठाकुर के घर काम न करना, पढ़ाई न छोड़ना और भगवान भरोसे रहना, वही गरीबों के प्रतिपालक है।”^५

‘सूनी घाटी का सूरज’ का कथ्य बहुत घटना-संकुल नहीं है। स्कूल के प्रधानाध्यापक मुंशी नवरतनलाल द्वारा शरण, अपनी शरण से उसे अमीन साहब की सेवा में देना, अमीन साहब द्वारा रामदास को बुरी तरह अपनी सेवा में जोतना, वहां से क्षत्रिय स्कूल, क्षत्रिय स्कूल से कालेज और यूनिवर्सिटी तक परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी प्राप्त करते चले जाना-सब-संघर्षपूर्ण काम हैं जिन्हें रामदास अपनी प्रतिभा के बल पर अंजाम देता है। हिन्दी उपन्यास में ऐसे जीवट वाले पात्र विरल ही हैं। जिन्हें अपनी अदम्य जिजीविषा के लिए देर तक याद किया जा सकता है। इतना जिजीविषा संपन्न चरित्र अंत में व्यवस्था में सम्मुख झुक क्यों जाता है, वह संघर्षों से घबरा कर अपनी प्रतिभा के अनुपयुक्त गांव में प्राइमरी में स्कूल मास्टर की मुफलिसी की जिन्दगी क्यों स्वीकार करता है।

‘सूनी घाटी का सूरज’ में अपने ग्रामीण परिवेश का बहुत सूक्ष्म और प्रामाणिक अंकन प्राप्त होता है। यहां आजादी के पहले का वह समाज चित्रित होता है जो आज विगत हो चुका है। ऋण के कारण छोटे किसान मजदूर बन अपनी ही जाति के लोगों के शोषण का शिकार बनते थे और फिर न केवल वे ही अपितु उनकी आगे की पीढ़ियां भी बंधुआ मजदूर की जिन्दगी जीने को विवश होती थी। रामदास के पिता बड़े ठाकुर के यहां अपने बेटे को काम न करने देने की हिदायत से उस क्रम को रोकना चाहते हैं जिसे हिन्दी कथा साहित्य में ‘सूनी घाटी का सूरज’ में चित्रित किया गया है। ये वे पीढ़ियां थीं जिनका “न अतीत ही हुआ, न भविष्य ही होगा। जितना ऋण उन्होंने ले रखा था, उसे पूरा करने के लिए उन्हें आजीवन दासता करनी पड़ेगी। उनका शरीर बड़े ठाकुर के जानवरों के बाड़े से ले कर उनके खेतों तक, खेतों से बाजार, फिर जानवरों के बाड़े से ले कर उनके खेतों तक दौड़ लगाता।”^६

उपन्यास में रामदास एक ऐसे क्षत्रिय का बेटा है जिसे अपनी तीन बेटियों की शादी के लिए कुल डेढ़ बीघा जमीन और घर एक अमीर ठाकुर के यहां गिरवी रख देना पड़ता है और वह बंधुआ मजदूर का जीवन बिता रहा है। गांवों में इस तरह के गरीब ठाकुरों की एक दो सच्ची दास्तानें हो सकती हैं।

४.१.२ सूनी घाटी का सूरज उपन्यास के कथ्य का अंत

‘सूनी घाटी का सूरज’ उपन्यास के अंत को देखे तो रामदास के ‘मेरे कुछ संस्मरण’ सत्या पढ़ लेती है। उसके बाद कथ्य तुरन्त समापन की ओर बढ़ता है। रामदास की प्रेमिका सत्या अभिजात्य वर्ग की होने के कारण वह गरीब और बेकार रामदास से विवाह न करके उच्च पदस्थ रामानुज से विवाह करती है। रामदास के अन्य मित्र अपने-अपने वंश की प्रतिभा द्वारा और अपनी क्षमता से आगे बढ़ जाते हैं। श्याममोहन ‘कामधेनु’ पत्र निकालने लगता है तथा प्रसिद्ध कला-आलोचक बन जाता है।

उसी प्रकार उसका मोटर व्यवसाय कानपुर में दिनों-दिन विकास कर रहा था। राजधर विधायक वन मंत्रिमंडल में शिक्षा-विभाग में

उपमंत्री बन जाता है। सुरेन्द्रप्रताप को ओपरेटिव-फार्म के माध्यम से विशाल भू-स्वामी बन जाता है। रामानुज का चयन इंडियन पुलिस सर्विस के लिए हो जाता है। बचपन का मित्र अमजदअली अपने मामा की सहायता से जिलेदार बन जाता है। रामदास के पास योग्यता होकर भी अमजदअली की सहायता से ग्रामीण क्षेत्र में १३५ रूपया पर हाईस्कूल की हेडमास्टरी स्वीकार लेता है। पर मन में युग के आकर्षण, अतीत की प्रताड़ना, वर्तमान की निराशा महसूस करता है। वह सोचता है कि शहरों में मेरा कोई नहीं है। नौकरी के लिए किसी की सिफारिश नहीं मिल सकती है। वह गरीब और असहाय होने के कारण जहाँ से आया था याने जिस का सूरज बनने जाता है। वह कहता है “यहाँ मैं न आऊंगा तो और कौन आएगा ? किसी और को यहाँ आने की गरज ही क्या है ?”^७ यही उपन्यास का कथ्य पूर्ण होता है।

सूनी घाटी का सूरज उपन्यास की विशेषताएँ :

- (१) ‘सूनी घाटी के सूरज’ में हीरो का सर्वहाराकरण ही नहीं है बल्कि सर्वहाराओं के क्षेत्र में काम करने की विवशता भी है।
- (२) इस उपन्यास में ग्रामीण परिवेश का बहुत सूक्ष्म और प्रामाणिक अंकन प्राप्त होता है।
- (३) इसमें एक पूरी पीढ़ी की तेजस प्रतिभा की दारुण अवमानना की प्रभावी कथा है।
- (४) यह उपन्यास आजादी से कुछ समय पहले का ग्रामीण परिदृश्य प्रस्तुत करता है।
- (५) इसमें ग्रामीण तथा गरीब युवक के संघर्ष, मोह भंग और आस्था का मार्मिक चित्रण है।
- (६) इस उपन्यास के केन्द्र में व्यक्ति चरित्र के व्यक्तिगत गुणों, जीवन के अनुभवों और मानवीय संबंधों के माध्यम से समाज व्यक्त होता है।
- (७) यह नामकरण लेखक के आशय को प्रतीकात्मक रूप में अभिव्यक्त करता है।

- (८) राजनीतिक सत्ता-लोलुपता, भ्रष्टता, अराजकता का चित्रण और साथ-साथ अपराध जगत का चित्रण इसमें है।
- (९) 'सूनी घाटी का सूरज' उपन्यास में भूदान आंदोलन की गतिविधियाँ एवं परिणामों का चित्रण है।
- (१०) 'सूनी घाटी का सूरज' आदर्शवाद की आँखों से देखा यथार्थ है।

४.१.३ अज्ञातवास : कथ्यगत समीक्षा :

'अज्ञातवास' पहले उपन्यास का ही कथा विस्तार है। किसान और दलित किस तरह नए बन रहे समाज में शोषण के शिकार हो रहे हैं, इस पर उपन्यासकार की नज़र गई है। रजनीकान्त जैसे कई समकालीन चरित्रों की पहचान लेखकने बहुत पहले कर ली थी।

'अज्ञातवास' उपन्यास के कथ्य का प्रारंभ प्रकृति-चित्रण से किया है। सुपरिटेण्डेंट इंजीनियर रजनीकांत अपनी लड़की प्रभा के साथ शहर से सरकारी डाक बंगले पर अपने मित्र 'गंगाधर एंड कंपनी' के लिए पिकनिक की पार्टी देने आता है। यही राजेश्वरी प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ ग्रामीण जीवन का चित्र रजनीकांत को दे जाता है। उसे देखकर रजनीकांत अपने अतीत में खो जाता है। वही बचपन, पाठशाला, पिताजी की खेती, ग्रामीण लोग, न्यायालयों की मुकदमेबाजी, पत्नी की याद आदि में खो जाता है। अब वह निरर्थकता अकेलेपन और निर्वासन की व्यथा को तीव्रता से महसूस करता है। आभिजात्य वर्ग का चित्रण होते हुए भी औपचारिकताएँ, पाखण्ड, बनावटीपन, आडम्बर, विसंगतियाँ आदि के कारण भावुक व्यक्ति खुद को 'अज्ञातवास' में परीक्षित करता है। इस संवेदना का आरम्भ ही उपन्यास की शुरुआत है।

'अज्ञातवास' उपन्यास के कथ्य को देखे तो इसमें यदि 'अज्ञातवास' के पश्चाताप प्रसंग को रचना से हटा दिया जाय तो लोकगीत प्रसंग पूरा का पूरा प्रारंभिक उपन्यास की संवेदना का ही रूपांतरण लगता है।^५ राजेश्वर द्वारा निकाले गये चित्र को देखते हुए रजनीकांत का मानसिक संघर्ष आरंभ हो जाता है। उस चित्र को वह डाक बंगले के बरामदे से उठाकर कमरे में ले आया था। उसे अपने अतीत के दिन याद आने लगे। उसको अपना

बचपन याद आता है। माता-पिता का प्रेम, गाँव के बच्चों के साथ खेलते समय मिला हुआ आनंद, ग्रामीण वातावरण का मोह, आकर्षण, सौन्दर्य आदि की स्मृति जागृत हो जाती हैं। उसकी प्राथमिक शिक्षा, हाईस्कूल से कोलेज, युनिवर्सिटी, इंजीनियरिंग कोलेज आदि के लिए पिता की सम्पत्ति की आखरी बूंद तक समाती रही। आज वह सुपरिन्टेंडिंग इंजीनियर विद्या, बुद्धि, बड़ी आमदनी, वैभव, शहर में अपना बड़ा मकान, आदि सुख-सुविधा का अस्तित्व जी रहा था।

सिंचाई विभाग का सुपरिन्टेंडिंग इंजीनियर रजनीकांत एक जमींदार का लड़का था। पिता एक छोटे जमींदार थे, उनको बड़े जमींदार सामान्य किसान मानते, किसान उन्हें राजा समझते। गाँव का कच्चा और प्रशस्त घर, ग्रामीण सम्पन्नता, पिता के अदालतों में मामले-मुकदमें होते। लेकिन पिता की अशिक्षा के कारण बैजनाथ मुख्तार जैसा चाहते, वैसे करते। पिताजी समझते कहीं कुछ घोखा है पर समझ नहीं पाते। इसीलिए रजनीकांत को पढ़ाना चाहते थे कि लड़का इंट्रेस पास कर लेगा, घर पर बैठकर जमीन-जायदाद की बातें समझ सकेगा, कानूनी दाव-पेच, वकीलों के शिकंजे, मुंशी की चापलूसी, हाकिमों की दृष्टि, अहलकारों के इरादे यह सब समझकर उसे पैतृक सम्पत्ति बचाने-भर की शिक्षा आ जाएगी तब बैजनाथ को समाप्त कर देगा।

उपन्यास में ग्रामीण जीवन के प्रति दृष्टिकोण दिखाय देता है। रजनीकांत का विवाह जब वह पढ़ रहा था तभी हुआ था। उसकी पत्नी रानी ग्रामीण, भोली-भाली अनपढ़ थी। रजनीकांत छुट्टियों में घर आता। घर की हालात देखकर दुःखी होता, पर उसका चमकदार चेहरा, साफ-सुथरे सूट, बूट, यह सब देखकर पिताजी समझते, मंजिल नजदीक है। यह मंजिल नजदीक भी थी, पर रजनीकांत का मन अपनी पहली मंजिल से दूर भटक गया था। माँ का प्यार उसे अच्छा लगता, पर उबा भी देता। इस तरह सम्बन्धों में पड़ी दरार बढ़ने लगी। पिता के नजदीक बैठते हुए बातचीत के लिए विषयों की कमी महसूस होने लगी थी। गाँव के प्रति जो आकर्षण था, वह इसी कारण धीरे-धीरे

कम हुआ उसने तथाकथित शहरी संस्कारों के कारण अपनी ग्रामीण अनपढ़ पत्नी को तिरस्कृत कर दिया। जैसे - “शहरी सभ्यता की चमक-दमक से प्रभावित मनुष्य अपने-आपको एवं अपनी वास्तविकता को भूल जाता है।”^६

‘अज्ञातवास’ उपन्यास में मनुष्य की अपने आपको खोजने की कहानी प्रस्तुत है। रजनीकांत अब उच्च शिक्षा पाकर इंजीनियर बनता है। उसके पास जीवन की सभी प्रकार की सुख-सुविधाएँ आ जाते हैं। अभिनेताओं - सा रहन-सहन, कंपनियों के शेयर्स, बैंक के एकाउन्ट्स, चलाचल सम्पत्ति, आ जाती है। कभी साहित्य का उत्तेजक प्रभाव, फिर क्लब की झकझोरने वाली शामें, डांस, शराब, प्रणय-आतुर रमणियाँ, इनमें उसे अपनी भूली नायिकाएँ मिलती हैं। डॉ. सीमा दत्त ने अपने पति को छोड़ दिया था। रजनीकांत ने उसे अपनी उप पत्नी बनाया था। वही उसकी प्रधान पत्नी थी। इस तरह रजनीकांत को गाँव शहर से दूर एक खंडहर लगने लगा था। पर खंडहर अपने-आप में खंडहर है। रजनीकांत का मन उसकी खोखली दीवारों में भले ही छिप ले, पर उसके पैर उधर नहीं उठते थे।

‘अज्ञातवास’ उपन्यास में लेखक ने अभिजात्य संस्कृति के यथार्थ को प्रस्तुत किया है। रजनीकांत डाक बंगले के पीछे लम्बे-चौड़े लॉन पर अतीत भूलकर कुछ गुन-गुनाने लगा था। उसी समय दूर से मोटर का जोरदार हार्न सुनाई पड़ा। फिर कार का गम्भीर स्वर कान में पड़ा तो ‘गंगाधर एंड कंपनी’ आ गयी थी। ये सब रजनीकांत के नहर विभाग के डाकबंगले पर पिकनिक मनाने के लिए आये थे। इनमें एक सदस्य देवीदत्त, जिसे मित्रगण परिहास में ‘गाडेस् गिवेन’ कहते थे, वह सफल वकील था। वह दो-चार दान धर्म वाली संस्थाओं का सभापति भी था। उसे बड़े सरकारी अधिकारियों से मिलने-जुलने तथा पार्टियों, संगीत सभाओं में उनके संसर्ग में रहने की विशेष ललक रहती थी। ‘गंगाधर एंड कंपनी’ के मित्र-मंडली के प्रमुख सदस्य प्रो. विनायक, विश्वविद्यालय में संस्कृत पढ़ाता था। वह वाक्पटु तथा कभी किसी पर भी व्यंग्य कर सकता था। रजनीकांत का विधुर तथा एकांकी जीवन भी उनकी मीठी चुटकियों से अछूता नहीं रहता था। मित्र-मंडली का एक

सदस्य गंगाधर था, जो सफल डाक्टर था। वह रजनीकांत के साथ कोलेज में पढ़ा था। यही गंगाधर एंड कम्पनी थी। इन सबकी सेवा के लिए अन्य नौकरों के साथ एक ओवरसियर था। वह गंगाधर एंड कम्पनी को तथा रजनीकांत को सलाम करके कहता है कि गाने वाले आ रहे हैं सरकार एक से एक उस्तादों को बुलाया है। यहाँ लेखक ने ग्रामीण जीवन की अनेक विसंगतियों का चित्रण किया है। ‘अज्ञातवास’ में सामान्य और गरीब किसानों का जीवन दुखों की साकार प्रतिमा है। साधारण और गरीब किसानों को सरकारी नहरों से सिंचाई के लिए पानी भी उस समय तक नहीं मिलता, जब तक कि वे सरकारी ओवरसियर के चरणों में दान दक्षिणा के रूप कुछ अर्पित नहीं करते थे। जैसे गाने वालों में से एक गरीब किसान वसन्त का लड़का ओवरसियर से कहता है- “आज से तीन साल पहले जब कुबाला मेरे खेतों के पास लगा था, तब मेरे खेत ऊँचे नहीं थे। आपके आते ही वे ऊँचाई में पड़ गए।”^{१०} यह वसन्त का लड़का पढ़ा-लिखा था, इसलिए वह ‘गंगाधर एंड कम्पनी’ के आगे अपने पिता तथा अन्य कलाकारों को गाने से मना करता है और कहता है कि सरकारी अधिकारी हमें जब चाहे तब हमारा गाना भी सुन सकते हैं। अब ऐसा नहीं होगा यह कहकर सबको वापस ले जाता है। यहाँ ‘गंगाधर एंड कम्पनी’ अन्दर कमरे में शराब पी रहे थे। बाहर रजनीकान्त की लड़की प्रभा वसन्त के लड़के का गान सुन रही थी। जब गाने वाले चले जाते हैं ओर रजनीकांत गानेवालों के प्रति पूछता है तब प्रभा सब जानकारी उसे देती है कि वे क्यों चले गये। फिर रजनीकांत यहाँ स्वीकार करता है कि यह सब मेरे चाहने से हुआ। लेकिन उसी रात प्रभा अपने पिता से अपनी माँ के विषय में सारी बात जान जाती है, जिसका संकेत यदाकदा उसे पिता के मित्र डाँ. गंगाधर, प्रो. विनायक, वकील देवदत्त करते रहते थे। अचानक वह पिता से कहती है- “पापा, मुझे आज न जाने क्यों माँ की याद आ रही है, मुझे उनका चेहरा भी याद नहीं फिर भी।”^{११} तब रजनीकांत प्रभा को माँ के बारे में बताता है कि मैं उसका आदर नहीं कर सका। यह हमारा-तुम्हारा दोनों का दुर्भाग्य बेटी। तुम्हारी माँ की कोई कहानी

नहीं है। “मैं उन्हें ठीक से पहचान नहीं सका, यही अपने-आप में एक कहानी हैं।”^{१२}

लेखक कहीं-कहीं पूर्व-दीप्ति शैली के माध्यम से रजनीकान्त के अतीत का वर्णन करता है, जिसमें कथ्य में गतिशीलता आ जाती है। रजनीकांत फिर से अपने अतीत में खो जाता है। जैसे काल का विहंग अपनी गति से बीस वर्षों की उड़ान भरता है। पहले यही विहंग अड़तालीस वर्ष की उड़ान भरकर अपने बचपन का वर्णन करता है। बाद में बीस वर्षों की उड़ान पत्नी रानी का देहान्त कैसे हुआ, प्रभा का जन्म, डॉ. सीमा दत्त से प्रेम सम्बन्ध, अन्य आकर्षण, शराब-खोरी आदि को लेकर सोचता है। उसमें अकेली सन्तान प्रभा बेटा सामने है। उसे लगता कि असंगति की सन्तान, इसी के सहारे आज यह जीवन विश्रृंखल होने से बच रहा था। लेकिन कभी-कभी यह निराधार जीवन लड़खड़ाता हुआ लगता। कभी सौन्दर्य का भ्रम उत्पन्न करता, कभी विमुख सा भटकता रहता। जैसे किसी भी दिशा में बहनेवाले झरने की तरह किसी भी ओर उड़े हुए घायल विहंग की तरह, शब्द के बादलों की तरह। लेकिन अब वह सोचने की शक्ति रजनीकांत की समाप्त हो गयी थी। वह वहीं खम्भे के सहारे सिर टेककर बैठ गया, आँखें मुंद गयी, पर थोड़ी देर बाद उसे अमानवीय आवाजें महसूस होने लगी थी।

४.१.४ अज्ञातवास उपन्यास के कथ्य का अंत

‘अज्ञातवास’ उपन्यास के कथ्य का अंत रजनीकान्त के मामूली हार्ट-अटैक से हुआ है। रजनीकांत को लगा, अंतिम समय आ गया। वह सोचने लगा अखबारों में, शोक-समाचार छपेंगे। पर सभी सोचेंगे-एक सफल अस्तित्व। अपनी योग्यता के सहारे उसने उन्नति की। उनकी बनाई हुई आधुनिकतम पद्धति की नहरें और बांध उनकी प्रतिमा की अमरता के प्रतिक हैं। विशाल कोठियां, मोटरें, प्राविडेन्ट फंड्स, कम्पनियों के हिस्से, सुरुचि-सम्पन्न विदुषी कन्या, विधुरता का आदर्श। मित्रों में निश्छल हास्य, परिश्रम करने की अपार क्षमता, कर्तव्य के प्रति असीम उत्साह और उसी में पाया हुआ ब्लडप्रेसर आकस्मिक हार्ट-अटैक। आदर्श जीवन आदर्श मृत्यु। “समूह में

प्रवेश कर अपने व्यक्तित्व को भूलने वाला मनुष्य हाइडिगर की दृष्टि में अनधिकृत अस्तित्व धारण करता है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में मनुष्य समूह में अपनी वैयक्तिकता खो बैठता है। हाइडिगर के विचारानुसार मृत्यु के प्रति अभिमुख होने वाला व्यक्ति सही अर्थ में अधिकृत अस्तित्व धारण करता है। हाइडिगर के अनुसार मृत्यु के प्रति अभिमुख होनेवाला व्यक्ति सही अर्थ में अधिकृत अस्तित्व अभिव्यक्त करता है।”^{१३}

‘अज्ञातवास’ उपन्यास में अंत में रजनीकांत यष्टि से समष्टि की ओर जाना चाहता है- “ओ निर्वासित वनवासियों अपनी अज्ञात तपोमयी गुफाओं से लौट आओ। अपना विक्षोभ छोड़ो यह पुराना घर एक नवीन तेजस्विता में तुम्हारा आवाहन करता है। आओ, अपने को एक-दूसरे में समाविष्ट करो। मेरी जागृति की अलोक-धारा में एक साथ प्रस्फुटित होकर निर्बाध बहो। अपनी अपूर्णता को खोकर मुझे सम्पूर्णता से सामाविष्ट करो।”^{१४} यही अज्ञातवास उपन्यास पूर्ण होता है।

‘अज्ञातवास’ उपन्यास की विशेषताएँ

- (१) ग्रामीण जीवन का चित्रण हम अज्ञातवास उपन्यास में देखते हैं।
- (२) इसमें मनुष्य की अंतः प्रवृत्तियों और यथार्थ के कारणों का उद्घाटन करती है।
- (३) उसमें किसानों और गरीबों के शोषण की नयी तरकीबें हैं।
- (४) इसमें लेखक ने स्वतंत्र भारत के शासन तंत्र के यथार्थ को ही उद्घाटित किया है।
- (५) उसमें मनुष्य, उसका प्रेम, उसका अस्तित्व, उसका संघर्ष हम देखते हैं।
- (६) रजनीकांत के पात्र के माध्यम से लेखक ने मनुष्य की चेतना को दृष्टि दी है।
- (७) उसमें शारीरिक, आर्थिक, प्रशासनिक, सामाजिक शोषण के साथ लोग बंधे हुए हैं।
- (८) इस उपन्यास में पाखंड, नकलीपन, दिखावा, विसंगतियाँ आदि का चित्रण है।

(६) स्त्री की मानसिकता, शोषण, पराधीनता का यथार्थ चित्रण के साथ-साथ कालाकारों के शोषण का चित्रण इसमें है।

४.१.५ राग-दरबारी की कथ्यगत समीक्षा :

इस उपन्यास की शुरुआत शहर के एक किनारे ग्राम शिवपालगंज से होती है और फिर यह धीरे-धीरे इतना फैल जाता है कि सारे देश को ही घेर लेता है। कुछ ३५ अंशों-अध्यायों और ४२५ पृष्ठों में लिखित इस व्यंग्य-कथा से उपन्यास का कलेवर बना है। किसी एक घटना अथवा सीमित पात्रों की कहानी न होकर यह समस्त भारत को और आज़ादी के बाद के परिवेश की कथा है इसलिए उसका कलेवर अवश्य बृहद है। एक प्रकार से सारा देश ही 'रागदरबारी' के व्यंग्य का आलम्बन है। व्यंग्य-विधा की ऐसी उन्नायक कृति होने के कारण ही उसे साहित्य-अकादमी के प्रतिष्ठापूर्ण पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है।

'रागदरबारी' का कथानक और उसकी समस्त घटनाओं का केन्द्र - शिवपालगंज यह शिवपालगंज भारत के आम देहात जैसा ही है, उसे 'टाउन एरिया' नहीं कहा जा सकता। वह इस तरह बसा हुआ है जहाँ शहर का किनारा छोड़ते ही भारतीय "देहात का महासागर" शुरू हो जाता है। सभी कुछ इस रचना में है और इसकी अभिव्यंजना का नाम 'राग दरबारी' है। यह विशालकाय उपन्यास स्वयं लेखक के शब्दों में इस प्रकार है - "राग दरबारी का सम्बन्ध एक बड़े नगर से कुछ दूर बसे हुए गाँव की जिन्दगी से है जो पिछले बीस वर्षों की प्रगति और विकास के नारों के बावजूद निहित स्वार्थों और अनेक अवांछनीय तत्वों के आघातों के सामने घिसट रही है। यही उसी जिन्दगी का दस्तावेज है।"^{१५}

परम्परागत औपन्यासिक प्रविधि और गतानुगतिक समीक्षा विधि से 'राग दरबारी' का परीक्षण - मूल्यांकन सम्भव नहीं है। इसमें उपन्यास की पूरी कसावट नहीं बल्कि यह कृति कभी-कभी तो व्यंग्य-लेखों के संकलन-सा लगने लगती है और एक क्रमबद्ध कथा के स्थान पर अनेक छोटी-बड़ी कथाओं को एक साथ जोड़ दी गयी सी लगती है। कथाओं के विखरे सूत्रों को

जोड़ने के लिए या उन्हें एक सूत्र में बाँधने के लिए कथानायक रंगनाथ से काम लिया गया है। कथानक का बिखराव और उसकी कसवाटहीनता के कारण एक श्रेष्ठ साहित्यिक कलाकृति सफल लोकप्रिय दूरदर्शन-धारावाहिक नहीं बन सकी, इस बात को इसकी 'कामदीय त्रासदी' कहना पड़ेगा।

राग दरबारी में भारतीय गाँव के सजीव, यथार्थवादी चित्रण ने हिन्दी साहित्य जगत में काफी खलबली मचायी। राग दरबारी की कथाभूमि शिवपालगंज नामक गाँव है जो उत्तर प्रदेश के अवधी भाषी क्षेत्र में कहीं किसी बड़े नगर से कुछ मील दूर स्थित है। शिवपालगंज तथा इसकी कथा का सूत्रधार है रंगनाथ नामक शोध-छात्र अपना स्वास्थ्य सुधारने हेतु शिवपालगंज में अपने मामा वैद्यजी के पास आता है। उपन्यासकार ने विषय की विशाल परिधि में इन्हीं वैद्यजी को कथा के केन्द्र में रखकर गाँव की सहकारी संस्था, चुनाव, पंचायत, बैंक, पुलिस, शिक्षा-संस्थाएँ, प्रोफेसर, दुकानदार, व्यापार, अफसर, सरकारी योजनाएँ, पहलवान, गुंडे, अखबार और बेकारी आदि तमाम दैनंदिन जीवन के विषयों को स्पर्श किया है। "वैद्यजी शिवपालगंज की राजनीति के आधार स्तम्भ हैं जिनको सदीं लगने पर सम्पूर्ण गाँव में छींक रोग हो जाता है।" इस प्रकार इस उपन्यास की कोई बँधी हुई कथा नहीं है।

वैद्यजी विशुद्ध अवसरवादी नेताओं के प्रतिनिधि हैं। कालेज, पंचायत और को-ओपरेटिव समिति के माध्यम से वह त्रिकोणात्मक क्रान्ति कर रहे हैं। उनमें दुर्वासा का क्रोध, हिटलर की तानाशाही और नेहरू की सी झुंझलाहट है। रूपन बाबू एक आवारा और अनुशासनहीन विद्यार्थी-वर्ग के प्रतिनिधि हैं। श्रीमान प्रिन्सीपल महोदय का राग अलग ही ध्वनित होता है क्योंकि उन्हें वैद्य जी का वरदहस्त प्राप्त है। 'रागदरबारी' का व्यंग्य-फलक अत्यन्त विस्तृत है। सम्पूर्ण देश की समस्याओं का इतनी यथार्थवादी शैली में प्रभावशाली चित्रण इसके पूर्व के उपन्यासों में किसी ने नहीं किया है। इसी दृष्टि से एक आलोचक ने इसे कालजयी रचना बताया है।

'रागदरबारी' में धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और कला या साहित्य-क्षेत्र की सभी प्रकार की विसंगतियों पर करारे प्रहार किये गये

हैं, पर इसमें मुख्य चोट राजनीतिक व्यवस्था पर है जो हमारे समस्त दुःखों का कारण कही जा सकती है। हर क्षण, कदम-कदम पर व्यंग्य-व्यंजना में सर्वप्रमुख लक्ष्य आजादी के बाद के भारत के ग्रामीण-परिवेश की राजनीतिक स्थितियों पर केन्द्रित है। “इसी को कलयुग कहते हैं। बाप के साथ बेटा ऐसा सलूक कर रहा है।”^{१७} वैद्यजी पूरी राजनीतिक विडम्बना के दोषी-प्रतिनिधि है। वे परतन्त्रता के युग में अंग्रेजों के भक्त और आजादी के बाद देशी अधिकारियों के एक अटल भक्त हैं। वो आजादी की जंग में सबसे पीछे थे और आज लूट में सबसे आगे हैं। वे शिवपालगंज के एकछत्र नेता हैं।

बेला गयासुद्दीन की कुंवारी कन्या है जो सम्पत्ति यौना चार की स्वचन्द्र प्रतिमा है अथवा काम स्वतन्त्रता का प्रतीक हैं। वह सिनेमा की शैली में पत्रलेखन करती है और वह कुंवारी रहकर वैवाहिक जीवन का आनन्द लेती है। शहरों गाँवों पर बुरा असर पड़ रहा है। शहरी वेशभूषा और फिल्मों की बीमारी गाँव में भी फैल गई है, और उसने सबको अपनी लपेट में ले लिया है। शिवपालगंज में यह महामारी पूरी तरह से फैल चुकी है। इसके परिणामस्वरूप युवावर्ग दिन-ब-दिन निकम्मा होता जा रहा है पर दिखावे के तौरपर देश के ‘सिम्बालिक माडर्नाइजेशन की बेमानी बात कही जा रही है। इस प्रकार ‘पूरा राग दरबारी’ राष्ट्रीय विकृतियों को दर्शाने वाला बृहद कोश बन गया है। लेखक कहता है कि अब गाँवों में कमल नहीं, केवल कीचड़ है। सारे मुल्क में शिवपालगंज ही फैला है। इस प्रकार ‘राग दरबारी’ का दरबार इस शिवपालगंज में जुटा है।

‘राग दरबारी’ का प्रस्तुतीकरण परम्परागत उपन्यासों की अभिव्यंजना शैली से सर्वथा भिन्न है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद शनैः शनैः पर क्रमशः हमारा नैतिक पतन होता आ रहा है। आजादी से हमें एक अभिशाप मिला है - चारित्रिक पतन का अर्थात् “क्राइसिस ओफ़ कैरेक्टर” का। सम्पूर्ण उपन्यास इसी चारित्रिक पतन की कथा से रचा गया है। कथा में उतार-चढ़ाव या मनोवैज्ञानिक गुत्थियों की उलझन नहीं है बल्कि सपाट-बयानी का चमत्कार है। मामूली सी लगनेवाली बात भी उठाने के स्थान पर रमाने लगती

है। इस प्रकार उपन्यास की सपाटबयानी में व्यंग्य है और व्यंग्य में सपाटबयानी का चमत्कार है।

देश का एक बुद्धिजीवी और जिम्मेदार नागरिक होने के नाते यह बात लेखक को सर्वाधिक पीड़ा देती है कि हमारे देश में शिक्षा की निरन्तर उपेक्षा हुई है। इसी से सारी समस्याएँ उपजी हैं। शिक्षा का थोड़ा बहुत प्रचार-प्रसार अवश्य हुआ पर गुणात्मक चेतना अथवा सार्थक शिक्षा के अभाव में हमारा प्रजातन्त्र अब भी लड़खड़ाता हुआ चल रहा है। उपन्यास का एक पात्र रंगनाथ शिक्षा की विड़म्बना और नगरीय संस्कृति की निरर्थकता को प्रस्तुत करता है। लेखक ने बेरोजगारी से जूझनेवाले इस दुर्बलकाय युवक के शोधकार्य को धास खोदने के समान माना है। भाषात्मक आक्रोश तो उसके पास है पर हमारी युवा और शिक्षित नई फसल में क्रियात्मकता का अभाव है। लेखक ने बहुत बेबाक ढंग से हमारी युवा-वर्ग की शहरी मानसिकता, पश्चिमी संस्कृति का अन्धानुकरण और अस्मिता की लुप्तप्राय - चेतना पर व्यंग्य किया है। प्रिंसीपल के शब्दों में “विलायत का एक चक्कर लगाने के लिए यदि साबित करना पड़ जाये कि हम अपने बाप की औलाद नहीं हैं, तो उसे भी साबित कर देंगे।”^{१८}

उपन्यास के लंगड, सनीचर, गयादीन, बट्टी पहलवान, रुप्पन, बेला, खन्ना आदि पात्र समाज के विविधपक्षों का वैविध्य प्रस्तुत करते हैं। एकमात्र महिला पात्र बेला के माध्यम से समाज में व्याप्त जातीयता, विवाह, प्रेम, दहेज आदि समस्याओं को उठाया गया है। नारी पात्रों की अल्पसंख्या और उनमें वर्गचेतना का अभाव निश्चित रूप से खटकता है। इससे नारी-समस्याओं की उपेक्षा सी ही हुई है।

‘राग दरबारी’ में कथात्मक आवेग न होकर व्यंग्य और बात कहने का ढंग पाठक को बाँधे रखता है। श्रीलाल शुक्ल का लेखन बुद्धिजीवी का काल्पनिक विलास नहीं अथवा व्यवस्था के प्रति कोरा आक्रोश भी नहीं है, बल्कि ऐसा व्यंग्य लेखन है जो हास्य के स्थान पर संजिदगी, क्षोभ और निराशा को भी ध्वनित करता है। इस दृष्टि से राष्ट्र व्यापी अराजकता और

अव्यवस्था की प्रतीक-कथा तथा विद्रूपताओं का महाभारत है यह उपन्यास, जो अपने संदेश के संप्रेषण में पूरा सफल हुआ है। आज ग्रामवासी ही नहीं पूरा मानव अस्तित्व ईमानदारी के साथ इस व्यंग्य का चित्रण 'राग दरबारी' में किया है। 'गोदान' की संरचना के मूल में त्रासादिक व्यंग्य था जबकि 'राग दरबारी' की सर्जना में यह कामदीय है।

'राग दरबारी' में वर्तमान विघटित समाज का व्यंग्यपूर्ण चित्रण करते हुए व्यवस्था की अव्यवस्था पर भेंजे हुए हाथों पर करारी चोट की है। चुनाव जीतने के लिये 'राग दरबारी' में तीन तरकीबें बताई गई हैं। प्रथम है रामनगर वाली, जिसमें दोनों दल एक दूसरे के विरुद्ध पारस्परिक हिंसा का आरोप लगाते हैं दूसरी प्रणाली नेवदा गाँववाली है जिसमें राजनीति को धर्म से जोड़कर जनता को मूर्ख बनाया जाता है। तीसरी प्रणाली महिपालपुरवाली है जिसमें चुनाव-अधिकारी की गलतियों की आड़ में चुनाव को जीतने का प्रयास किया जाता है। यह है विश्व के सबसे बड़े लोकतन्त्र की यथार्थ तस्वीर ! पता नहीं यह चुनावतंत्र हमें कहाँ ले जायेगा ? क्या सही लक्ष्यप्राप्ति के लिये नागरिकों को सार्थक शिक्षण-प्रशिक्षण की आवश्यकता को हम कभी नहीं समझेंगे। पर वर्तमान शिक्षा पद्धति तो "रास्ते में पड़ी हुई कृतिया है, उसे कोई भी लात मार सकता है।" शिवपालगंज का छंगामल कोलेज इस क्रूर यथार्थ का प्रतीक है।

'राग दरबारी' में व्यंग्य अपने विविध आयाम खोलकर हमारे सामने आता है। जब सारा परिवेश ही विसंगत और विडम्बनापूर्ण बन गया हो तो क्यों न लेखक सबको व्यंग्य का आलम्बन न बनाये ! लेखक ने प्राचीन सड़ी-गली परम्पराओं पर व्यंग्य किया है, अन्धविश्वासों पर व्यंग्य किया है। राजनीति पर व्यंग्य करते समय लेखक को एक नई स्फूर्ति का अनुभव होता है, क्योंकि आज की राजनीति और वर्तमान-व्यवस्था सर्वाधिक विडम्बनामय बन गई है। कथ्य की दृष्टि से 'राग दरबारी' हमारी एक विशिष्ट औपन्यासिक उपलब्धि है इसमें कोई सन्देह नहीं है।

४.१.६ राग दरबारी का अंत :

‘राग दरबारी’ के अंत में रंगनाथ को प्रस्तुत किया है। रंगनाथ को शिवपालगंज में अधिक समय हो गया था। रात को उसे नींद नहीं आती थी। उसकी तन्दुरुस्ती सुधर गयी थी। उसकी आत्मा के तारों पर पलायन संगीत गूँजने लगा था। वह सोचता है तुम मंझोली हैसियत के मनुष्य हो। तुम्हारे चारों ओर कीचड़ ही कीचड़ पैदा होता है। भागो-यथार्थ तुम्हारा पीछा कर रहा है। तभी प्रिंसिपल आ जाते हैं। वे कहते हैं खन्ना की इतिहास की जगह खाली हुई है। यहाँ रहकर कालेज में दो घण्टा पढ़ाई, बाकी समय रिसर्च कीजिए। फिर कहा “जहाँ जाओगे वहाँ, तुम्हें किसी खन्ना की ही जगह मिलेगी।”^{२०} तब रंगनाथ कहता है कि आपकी बातचीत से मुझे नफरत हो रही है। प्रिंसिपल ने कहा तुम्हारे विचार ऊँचे हैं, पर कुल मिलाकर यह साबित होता है कि तुम गधे हो। इसके बाद वार्ता में गतिरोध पैदा हो गया। “मदारी, जहन्नुम में जाने के बजाय, वहीं पर जोर-जोर से गाने लगा था और उसकी डुगडुगी अब एक नयी ताल पर बज रही थी। कुछ दूरी पर कुछ कुत्ते दुम हिलाते, कमर लपलपाते भूँक रहे थे। लड़के घेरा बांधकर खड़े हो गये थे। दोनों बन्दर मदारी के सामने बड़ी गम्भीरता से मुँह फुलाकर बैठे हुए थे और लगता था कि ये जब उठेंगे तो भरतनाट्यम से नीचे नहीं नाचेंगे।”^{२१} उपन्यास की कथा का यही अंत आ जाता है।

राग दरबारी उपन्यास की विशेषताएँ :

- (१) ‘राग दरबारी’ रिपोर्ताज शैली में लिखा गया उपन्यास है। इसकी कथा ग्रामांचल से सम्बद्ध है, फिर भी यह आंचलिक नहीं है।
- (२) इसमें स्वतन्त्र देश की नवीन व्यवस्थाओं का, जो नारों के रूप में ही जीवन्त हैं, गहरा मजाक उड़ाया गया है।
- (३) पुनरावृत्ति इस उपन्यास की कमजोरी है।
- (४) यह उपन्यास साठोत्तरी व्यंग्य उपन्यासों की परम्परा में मील का पत्थर है और उसे हिन्दी उपन्यासों की ऐतिहासिक उपलब्धि कहा जा सकता है।

- (५) सम्पूर्ण उपन्यास में व्यंग्य की वानगी के साथ जीवन के विविध क्षेत्रों की असंगतियों की ऐसी तीक्ष्ण अभिव्यक्ति दुषित व्यवस्था के विरुद्ध ऐसा तीव्र आक्रोश मूलक स्वर अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।
- (६) स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की भारत की राजनैतिक व्यवस्थाओं का ऐसा तेजाबी एवं व्यंग्यात्मक प्रस्तुतीकरण सर्वप्रथम हुआ है।
- (७) 'राग दरबारी' व्यंग्य विधा की एक उत्कृष्ट विधायक रचना है।
- (८) सामाजिक जीवन की टूटती हुई मूल्यता की अनुभवजन्य गाथा 'राग दरबारी' में अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से व्यंजित हुई है।
- (९) उसकी सामाजिक चेतना में मानवता और इन्सानियत के अर्थापकर्ष के सम्बन्ध में तीखे और गहरे व्यंग्य किये गये हैं।
- (१०) उसे आज की जिन्दगी का दस्तावेज कहा जाता है।
- (११) इसमें परिवेश को विसंगतियों, व्यवस्थाओं के प्रहारों और राजनीतिक तथा सामाजिक विद्रुपताओं का पूरा दस्तावेजी अंकन किया है।
- (१२) व्यापक कथा-फलक, विविध क्षेत्रों की अन्तरंगता की विकृति, पतन और मूल्यहीनता को व्यंग्य की तेज धार पर प्रस्तुत किया गया है।
- (१३) इसमें स्वतन्त्र भारत के गाँवों की बदलती तस्वीर सच्चाई के साथ दिखाई गई है।
- (१४) शहरी निगाह या सैलानी नजर से गाँवों को नहीं देखा गया है।
- (१५) इस राग में सम और विषम दोनों स्वर उभरते हैं।
- (१६) क्रमबद्ध कथा के स्थान पर अनेक छोटी-बड़ी कथाओं को एक साथ जोड़ दी गयी सी लगती है।
- (१७) इसमें मुख्य चोट राजनीतिक व्यवस्था पर है जो हमारे समस्त दुःखों का कारण कही जा सकती है।
- (१८) लेखक ने प्राचीन सड़ी-गली परम्पराओं पर व्यंग्य किया है, अन्धविश्वासों पर व्यंग्य किया है।
- (१९) यह उपन्यास राष्ट्रव्यापी अराजकता और अव्यवस्था की प्रतीक-कथा तथा विद्रुपताओं का महाभारत है।

(२०) इसमें आज की समस्त सभ्य विकृतियाँ विद्यमान हैं जो हमारी नई संस्कृति की देन है।

(२१) यह भारतीय ग्राम जीवन का उपन्यास है जो आजादी से पहले की प्रेमचंद की पीढ़ी तक विस्तृत ग्राम कथा की परम्परा का हिस्सा है लेकिन दूसरी और इसमें व्यंग्य का विध्वंसक अभिप्राय भी है।

४.१.७ आदमी का जहर : कथ्यगत समीक्षा :

‘आदमी का जहर’ एक अपराध कथा है जो रहस्यपूर्ण प्रसंगों से भरी है। एक तरह से अगम्भीर होने का खतरा उठा कर इसे लिखा गया है। इसके बावजूद, इससे उद्घाटित होता सामाजिक यथार्थ स्मरणीय है। नामवरसिंह मानते हैं, “आज के ख़ौफनाक बाजार तंत्र और मीडिया के रंग-ढंग को देखें तो ‘आदमी का जहर’ एक आश्चर्यजनक पूर्वाभास है।”^{२२}

‘आदमी का जहर’ उपन्यास की कथ्यवस्तु का प्रारंभ एक रेस्तराँ से होता है। इस रेस्तराँ में हरिश्चन्द्र और रूबी पति-पत्नी खाना खाना आए थे। पति-पत्नी के संवादों से विषय वस्तु का आरंभ होता है। वे दोनों इतवार को दोपहर का खाना घर से बाहर ही खाते थे। खाने के पहले हरिश्चन्द्र एक खास ‘बार’ में जाकर ‘बियर’ या ‘जिन’ पीता था और उस वक्त रूबी उसके साथ बैठकर अन्नानस का रस पीती थी फिर वे दोनों इस रेस्तराँ में आकर खाना खाते थे। हरिश्चन्द्र और रूबी के उपभोक्तावादी स्वच्छंद जीवन का संकेत देता है, जिससे सामाजिक जीवन का उथलापन, दैहिक लालसाओं से व्याप्त जीवन प्रस्तुत होता है।

‘आदमी का जहर’ उपन्यास में एक रहस्यपूर्ण अपराध कथा है। इसका प्रारंभ एक ईर्ष्यालु पति से होता है। हरिश्चन्द्र और रूबी की शादी को आठ साल हुए थे, उनकी कोई सन्तान न थी, इसलिए परिवार में दोनों थे। उन्हें बाकी कोई कमी नहीं थी। शहर के किनारे पर एक सही स्थान में उनका बंगला था, मखमली दूब का लोन था। शहर में सबसे नये ‘फ्लावर शो’ में इनाम मिलता था। उनके पास स्वास्थ्य था, सुन्दरता थी, अधिक पैसा था और अच्छी सामाजिक आर्थिक योग्यता थी।

हरिश्चन्द्र रेफ्रिजरेटर्स का व्यवसाय करता था। उसकी दुकान शहर की अत्याधुनिक दुकानों में से थी और अपने व्यवसाय के कारण शहर के सभी जाने-माने आदमियों से उसकी जान-पहचान थी। हरिश्चन्द्र और रूबी इतवार को दोपहर का खाना घर से बाहर खाते थे। यह क्रम अनेक सालों से चल रहा था। खाने के पहले हरिश्चन्द्र एक खास बार में जाकर 'बियर' पीता था और रूबी उसके साथ बैठकर अनन्नास का रस पीती थी। दोपहर के बाद सोते थे। शाम को साथ-साथ सिनेमा देखते थे। पति-पत्नी अनेक सालों में इतवार साथ-साथ बिताते थे। लेकिन पिछले दिनों हरिश्चन्द्र के मन में रूबी के बारे में अनेक बार सन्देह और संशय का दौरा पड़ चुका था। फिर भी इतवार के इस क्रम में कोई खास फर्क नहीं आया था, पर हरिश्चन्द्र का संशय बढ़ता जा रहा था।

‘आदमी का जहर’ उपन्यास के मध्य की कथा को देखे उसमें रूबी उसी दिन ललित कला अकादमी में नुमाइश देखने का बहाना बनाकर जनक्रान्ति प्रेस के मालिक अजीतसिंह से मिलने होटल जाती है। पति हरिश्चन्द्र छिपकर उनका पीछा करता है। डायमंड होटल शहर के सबसे ज्यादा धने बाजार में था। और औसत दर्जे के होटलों में माना जाता था। संशय के कारण हरिश्चन्द्र घर से पिस्तौल लेकर निकला था। इस समय सात बज गये थे। और दिन की रोशनी खत्म हो चुकी थी। होटल में रूबी एक आराम कुर्सी पर पड़ी हुई थी। उसके हाथ में अनन्नास के रस का गिलास था। अजीतसिंह दरवाजे के पास खड़ा हुआ ड्रेसिंग टेबल के सामने अपने जिस्म पर पाउडर छिड़क रहा था। व्हिस्की का गिलास ड्रेसिंग टेबल पर ही था। इसी समय हरिश्चन्द्र ने कमरे में प्रवेश किया। यह देखकर हरिश्चन्द्र में ईर्ष्या का ज़हर फैल गया। उसने पिस्तौल अजीतसिंह पर ताक दी। यह देखकर अजीतसिंह ने कहा - “खबरदार ! गोली मत चलाना। पहले मेरी बात।”^{२३} इधर हरिश्चन्द्र ने पिस्तौल चलाई। पहली गोली नजदीक होने के कारण दीवार से टकराई। दूसरी गोली के चलते ही अजीतसिंह गिर गया। रूबी बाथरूम का दरवाजा मजबूती से

पकड़कर खड़ी रही। उसने अपने को बचाने की कोशिश नहीं की। सिर्फ चिखकर कहा - “तुमने इसे मार डाला है।”^{२४}

‘आदमी का जहर’ उपन्यास की कथा आज की सामाजिक राजनीतिक स्थितियों के बीच से निकली है। हरिश्चन्द्र तीसरी गोली नहीं चला सका। उसने पिस्तौल रूबी की ओर फेंक दी और बोला, “उसमें अभी दो गोलियाँ बाकी हैं। अच्छा होगा, तुम अब मुझे शूट कर दो।”^{२५} इस तरह हरिश्चन्द्र पत्नी रूबी के नाजायज संबंध से परेशान होकर अजीतसिंह पर गोली चला देता है। उसके बाद अजीतसिंह को अस्पताल ले जाया जाता है। सर्जन की पोस्टमार्टम की रिपोर्ट के अनुसार यह तथ्य सामने आता है कि अजीतसिंह की मौत गोली से नहीं, ज़हर देने से हुई थी।

‘आदमी का ज़हर’ उपन्यास में अजीतसिंह की हत्या के बाद विषयवस्तु नया बदलाव लेती है। रूबी पर हत्या का आरोप लगाया जाता है। उमाकांत एक पत्रकार और महान जासूस था। वह हरिश्चन्द्र और रूबी को बचाने के लिए इस मामले को अपने हाथ लेता है। इसके बाद अनेक विस्मय जनक नतीजा सामने आते हैं। अपराधों की दुनिया का अन्धकार धना होता है। तनाव बढ़ता जाता है। उमाकांत रूबी के अतीत के सम्बन्धों को जान जाता है। रूबी शादी के पहले मेरठ में महिला कोलेज में लेक्चरर थी। वहीं अजीतसिंह की चचेरी बहन रत्ना कोलेज में पढ़ाती थी। रत्ना से रूबी की बड़ी गहरी दोस्ती थी। रूबी संदीप की माँ थी। संदीप शादी से पहले उसी के होनेवाले पति कैप्टन आनन्द से हुआ था। आनंद की मृत्यु एक जीप दुर्घटना में हो जाती है। संदीप की उम्र दस साल से अधिक थी। उसे रत्ना ने दत्तक पुत्र मान लिया था। वह नैनीताल के एक पब्लिक स्कूल में पढ़ रहा था। बाद में रूबी की शादी हरिश्चन्द्र से होती है। अपने वैवाहिक जीवन को बरबाद होने से बचाने के लिए यही मजबूरी थी। अजीतसिंह रत्ना के पति द्वारा यह जानकारी तथा संदीप और रूबी का एक फोटो प्राप्त कर लेते हैं। इसके आधार पर अजीतसिंह रूबी को ब्लैकमेल करने की धमकी देकर उससे रुपये पाता था।

वह कहता कि जनक्रान्ति में बिना नाम की एक कहानी छापेगा। उस कहानी के सिलसिले में हमारा और संदीप का फोटो भी उसी के साथ प्रकाशित करेगा।

‘आदमी का जहर’ उपन्यास में अजीतसिंह नामक पत्रकार की जहर देने से मौत की कथा प्रस्तुत है। उमाकांत अपने साथी बादशाह की मदद से जरीन, मिस लायल, रत्ना, हरिसिंह आदि के बयान लेता है। अजीतसिंह के नौकर महीपाल तथा उसके जनक्रान्ति प्रेस कार्यालय की तलाशी लेता है। उमाकांत तथा बादशाह को वहाँ एक फोटो चित्र मिल जाता है। उसमें रूबी, रत्ना और एक बच्चा था। उसी प्रकार उमाकांत को वहाँ कुछ पुराने लेख मिलते हैं। जिनके आधार पर वह पार्वती महिलाश्रम पहुँच जाता है। यह स्थान रईसों का चकला और भ्रष्टाचार का अड्डा था। यहाँ पहुँचते ही एक नया हत्याकांड सामने आता है। ‘मलिना’ एक उन्नीस वर्षीय कथक नृत्य कलाकार थी एक दिन वह अचानक गायब हो गयी थी। वह पन्द्रह दिन बाद शहर के ही पास रेल की पटरी पर कटी पायी गयी थी। सी.आई.डी. ने निष्कर्ष निकाला था कि यह आत्महत्या का मामला है। उन्ही दिनों साप्ताहिक ‘जनक्रान्ति’ में एक सम्पादकीय छपा था, भ्रष्टाचार के अड्डे। उसमें शहर के एक बड़े प्रसिद्ध महिला आश्रम के खिलाफ अनेक प्रकार के सन्देह प्रकट किये गये थे। संपादक ने लिखा था कि इस महिलाश्रम में जिसका नाम सभी जानते हैं और लिखने की जरूरत नहीं - लड़कियों को फँसाकर लाया जाता था। महिला आश्रम की इमारत पुरानी थी और उसमें अनेक ऐसे कमरे थे, जिनमें किसी भी लड़की को आसानी से छिपाकर रखा जा सकता था। उन्हें संस्था के प्रबन्धकों और शहर के दूसरे रईसों के साथ पापाचरण के लिए मजबूर किया जाता था। यह सब कानून की निगाहों के नीचे बरसों से होता आ रहा था।

इस जानकारी के साथ उमाकांत पार्वती महिलाश्रम की सुपरिन्डेंट कुमारी वीणा गहलौत का समाज-सेवी के रूप में साक्षात्कार लेने का बहाना बनाकर पहुँच जाता है। उमाकांत कुमारी वीणा गहलौत का साक्षात्कार लेता है और वहाँ के अनेक जगहों के फोटो खिंचता है। इस प्रकार उमाकांत को ऐसे सबूत प्राप्त हो जाते हैं, जिसके आधार पर वह यह सिद्ध कर सकता है कि

मलिना की हत्या हुई थी और मलिना तथा अजीतसिंह के हत्यारे एक ही थे। वे थे प्रतिष्ठित नेता शांतिप्रकाश जी और जसवंत। बाद में उमाकांत तथा बादशाह पुलिस फोर्स लेकर शांतिप्रकाशजी के बंगले पर पहुँचते हैं। वहाँ बेडरूम में वीणा गहलौत दिखाई देती है। राजनीतिक नेता शांतिप्रकाश तथा जसवंत को भी अजीतसिंह ब्लैकमेल करता था। इसीलिए शांतिप्रकाश कुमारी वीणा गहलौत का बुर्का तथा चप्पलें पहलकर अस्पताल में अजीतसिंह को जहर देने गया था क्योंकि अजीतसिंह जनक्रान्ति साप्ताहिक के माध्यम से उनसे रुपये पाता था। इन सबूतों के साथ शांतिप्रकाश, जसवंत तथा कुमारी वीणा गहलौत पकड़े जाते हैं।

४.१.८. आदमी का ज़हर का अंत :

उपन्यास में हत्या के बीच हत्या की खोज को रहस्यमयता से स्पष्ट किया है। राजनीति में वर्चस्व बनाए रखने तथा अपने सभी गलत कारनामों, भ्रष्टाचार को छिपाने के हेतु निर्ममता से पत्रकार को ज़हर देकर उसका काँटा रास्ते से नेता साफ कर देते हैं। इस तरह मनुष्यता को तिलांजली देने वाले नेता समाज में जहर की भाँति समाज को विनाश में गर्क करने वाले हैं। वे आदमी के खाल में छिपे मनुष्यता की मौत करानेवाले घातक जहर हैं।

‘आदमी का जहर’ उपन्यास का समापन नाटकीय और विश्वसनीय है। उमाकान्त कहता है - “इस शहर को अब कम-से-कम पन्द्रह दिन मेरे बिना रहना होगा।”^{२६} सिद्दीकी ने उसी तरह जवाब दिया, शहर की बदकिस्मती ! बादशाह ने भी कहा, “ठीक कह रहे हो, उस्ताद, यह शहर इसी लायक है।”^{२७}

इस उपन्यास की विषयवस्तु सामाजिक, राजनीतिक स्थितियों के बीच से निकली है। आज राजनीतिक नेताओं की दृष्ट प्रवृत्ति की चरमसिमा तो वह है कि अपराध स्वयं करते हैं और उसके बदले निरपराधियों को सजा दिलाना चाहते हैं। समाज में प्रतिष्ठित नेता बने घूमते हैं। ऐसी अपराधों की दुनिया से ऊबकर उमाकांत कुछ दिन बाहर जाना चाहता था। शांतिप्रकाश तथा जसवंत जैसे अति बदमाश जेल चले गये थे। अब यह शहर

पन्द्रह दिन तक कम से कम बिना किसी वारदात से रहेगा। शहर में अमन रहेगा, यह सोचकर उमाकांत कुछ दिन नैनीताल जाना चाहता था।

उपन्यास का एक साधारण दिखाने वाला हत्याकांड असाधारण रहस्यमयता से धिरता जाता है और उपन्यास के अंत तक एक प्रत्याशित तनाव बिन्दु तक जा पहुँचता है। वह हत्याकांड भद्र समाज की नंगी सच्चाइयों को रोशनी में लाता है। डॉ. परमानंद श्रीवास्तव के अनुसार “श्रीलाल शुक्ल ने तनावपूर्ण और अमूर्त विषयों पर लिखने की जगह क्रूर विसंगत यथार्थ पर लिखने का रास्ता चुना है। उनका मानना है कि चरम प्रश्नों पर अमूर्त लेखन प्रायः तटवर्ती लेखन ही होता है जो खतरे की लहर को नहीं छूता।”^{२८} इस तरह प्रस्तुत उपन्यास भयानक यथार्थ का उद्घाटन करता है जिसका संकेत अंत में देखते हैं।

‘आदमी का जहर’ उपन्यास की विशेषताएँ :

- (१) इस उपन्यास में यथार्थ के विविध रूपों के साथ-साथ अपराध जगत का चित्रण है।
- (२) राजनीतिक सत्ता-लोलुपता, भ्रष्टता, अराजकता समाज में अधिक फैली हुई है।
- (३) इसमें बेरोजगार, प्रशासनिक व्यवस्था और स्त्री मानसिकता, शोषण, पराधिनता का वास्तविक चित्रण है।
- (४) ‘आदमी का जहर’ एक अपराध कथा है जो रहस्यपूर्ण प्रसंगों से भरी है।
- (५) इसमें समाज में बसे ईर्ष्यालु व्यक्तियों को लोगों के सामने खड़ा किया है।
- (६) इसमें हमने देखा कि गलत व्यक्ति अपराध करके उन्हीं का गुनाह दूसरों को थोप देता है।
- (७) राजनीतिक नेताओं की दृष्ट प्रवृत्ति का चित्रण हम इसमें देखते हैं।
- (८) ‘आदमी का जहर’ उपन्यास में रहस्यकथा के आधार पर यथार्थता भी सामने रखी है।

४.१.६. सीमाएँ टूटती हैं : कथ्यगत समीक्षा :

सीमाएँ टूटती हैं आधुनिक और गतिशील जीवन के अवरोधों की पहचान तथा चरित्रों की अतः परख के कारण महत्त्वपूर्ण है। “फाटक से बाहर मुड़ते ही गाड़ी के बैकव्यू मिरर में सुप्रीम कोर्ट के गोलाकार बरमदे और खंभे पुँछ गए। उनकी जगह पीछे भागती हुई सड़क और हवा से उलझती हुई टहनियों ने घेर ली। उडती हुई गर्द के झीनेपन में स्कूटर के दो-एक घब्बों को छोड़कर सारी सड़क वीरान पड़ी थी।”^{२६}

इस प्रकार उपन्यास के आरंभ में संकेतित वीरानगी सूनापन, अकेलापन पाठक के भीतर एक धरातल का निर्माण करते हैं, जिससे उपन्यास के पात्र दुर्गादास की मानसिकता को समझने में सहायता होती है। आरंभ से ही लेखक उपन्यास को संवेदनात्मक स्तर पर उँचा उठाते हैं।

उपन्यास में अपराध कथा न होते हुए भी उसमें अपराध कथा जैसा प्रवाह है। मानवीय सम्बन्धों में विश्वास और प्रेम ही सबकुछ है। प्रेम और विश्वास के खोने पर संबंध टूटने लगते हैं, उनकी हत्या हो जाती है, वे निरर्थक लगने लगते हैं। इस उपन्यास की विषयवस्तु ऐसे ही एक दुर्गादास नामक व्यक्ति के परिवार से सम्बन्धित है। दुर्गादास दिल्ली का रहने वाला था। कनाटप्लेस में उसकी रेडियों, ग्रामोफोन आदि की बड़ी दुकान थी। उन्हें दो लड़के-तारानाथ और राजनाथ, एक लड़की चाँद थी तथा परिवार में राजनाथ की पत्नी थी। पत्नी बीस वर्ष पूर्व मर चुकी थी। लखनऊ में भी विमल और गोविन्द की साझेदारी में उसने एक रेडियों और बिजली के सामान की दूकान खुलवायी थी, जिसकी देख-रेख गोविन्द किया करता था। दुकान के कारण दुर्गादास और विमल दोनों ही महीने में एकाध बार दिल्ली से लखनऊ जाता था। उसी रात उसी कमरे में गोविन्द की हत्या हो जाती है। इस दिन गोविन्द को किसी एक महेमान का भी इंतजार था। दुर्गादास को हत्या के अपराध में पकड़ लिया जाता है। बाद में सुप्रीम कोर्ट से आजीवन कारावास की सजा होती है। सुप्रीम कोर्ट ने अपना आखिरी फैसला दे दिया था। उसके परिवार के करीब विमल ही था। विमल, दुर्गादास के परिवार के सदस्यों को साहस और हिम्मत

से रहने की सलाह देता है। दुर्गादास के पुत्र तारानाथ और राजनाथ तथा पुत्री चाँद और दोस्त विमल को विश्वास है कि दुर्गादास ने हत्या नहीं की है। विमल अपने दोस्त को बचाने के लिए बहुत कोशिश करता है। उसी कारण दुर्गादास की फाँसी की सजा कम होकर आजीवन कारावास हो जाती है।

‘सीमाएँ टूटती हैं’ उपन्यास की कथा एक अपराध कांड पर आधारित है। विमल दुर्गादास के परिवार के सदस्यों को समझाता है कि दुर्गादास कुछ दिन तक जेल में रहेंगे, फिर उन्हें छुड़ाने की कोशिश हो सकती है। फिर आगे कहता है - उन्हें ब्लड-प्रेसर है, शायद उनकी तंदुरुस्ती को देखकर सरकार उन्हें पहले ही छोड़ दे। जैसे दुर्गादास पर भरोसा करते थे, उतना ही भरोसा मुझ पर करो। इस तरह विमल अपने मित्र के परिवार को सुखी और प्रसन्न देखना चाहता था। इसी कोशिश में वह तेईस वर्षीय चाँद, जो उसे अंकिल कहती थी, उससे प्रेम करने लगता है। विमल की आयु सैंतालीस वर्ष की थी। वह विधुर था और उसका लखनऊ में जूली नामक स्त्री से भी शारीरिक संबंध था। विमल चाँद को किस्मत से मिला हुआ एक अनोखा तोहफा मानता था। चाँद का आकर्षण उसे पहले - चौकन्ना करता था। यह बात उसे भद्दी लगने लगती, किन्तु प्रेम की मजबूरी के कारण वह महसूस करता “इस प्रेम का अंत शादी में नहीं हो सकता, आत्महत्या में भले ही हो जाये।”^{३०} यह बात विमल लखनऊ में जूली को बताता है। चाँद और विमल का यह सम्बन्ध अतीत भूला देता है। यहाँ से मानवीय रिश्तों की हत्या होने लगती है।

‘सीमाएँ टूटती हैं’ उपन्यास में हम धर्म पर विश्वास को देखते हैं। धर्म पर विश्वास रखनेवाला तारानाथ एक छोटे कस्बे के इंटरमीडिएट कालेज का प्रिंसिपल था। अपने पिता की सजा के संबंध में वह मानता था कि भगवान की यही इच्छा थी। यह सोचकर शांत हो जाता था। वह सोचता है कि जो कुछ उनके साथ हुआ है वह दुनिया में हजारों लोगो के साथ हो चुका है। इसी बीच विमल का पत्र चाँद को मिलता है और उसमें उसने कहा था कि मैं सब आरोप अपने ऊपर लेने को तैयार हूँ। लेकिन मैं हत्यारा नहीं हूँ। विमल के पत्र को पढ़कर चाँद का यह विश्वास दृढ़ हो जाता है। वह अपने भाईयों को

विमल के एहसानों की याद दिलाती है। उसके विचार में हत्यारा कोई तीसरा ही व्यक्ति होगा। वह अपने सहपाठी मुकजी के प्रेम को ठुकराकर विमल के अलावा किसी से भी प्रेम नहीं करना चाहती। विमल और चाँद के प्रेम के कारण दुर्गादास के परिवार में तनाव बढ़ता है। इन पारिवारिक उलझनों के कारण चाँद बंगलौर जाना चाहती है, जहाँ एक इन्स्टीट्यूट में रिसर्च ओफिसर के कुछ पद रिक्त थे। बंगलौर जाने के बारे में राजनाथ तथा उसकी पत्नी नीला विरोध जताते हैं। लेकिन इनके समान तारानाथ उसका विरोध नहीं करता।

४.१.१० सीमाएँ टूटती हैं का अंत :

विमल, दुर्गादास के परिवार का विश्वास पाने के लिए अपने ऊपर हत्या का आरोप लेने को तैयार है। यह बात उसने चाँद को बता दी थी। इस प्रकार धर्म, प्रेम और अपराध जैसी वृत्तियों में बंधी जिन्दगी वह जी रहा था। इस अव्यवस्थित उलझाव से जूझते हुए वह मुंबई चला जाता है। दूसरी और चाँद भी बंगलौर जाना चाहती है क्योंकि मुंबई से बंगलौर नजदीक है। तारानाथ सोचता है कि शायद समय बहुत हो चुका है अब चाँद को रोका नहीं जा सकता। “तारानाथ को उसके लिए सहानुभूति का अनुभव हुआ, पर वह उस निश्चलता और वीरानगी के लिए नहीं थी। वह सहानुभूति एक नए प्रकार की थी, जो समानांतर चलते हुए किसी सहयात्री के लिए जो यात्रा के एक मोड़ पर अचानक बिलकुल करीब आ गया हो, पैदा होती है।”^{३९}

✱ ‘सीमाएँ टूटती हैं’ उपन्यास की विशेषताएँ :

- (१) उपन्यास की कथा एक अपराध कांड पर आधारित है।
- (२) यह उपन्यास धर्म, प्रेम तथा अपराध - जैसी वृत्तियों में बंधी हुई जिंदगी के उलझाव से निरंतर जूझता है।
- (३) इसकी सबसे बड़ी समस्या मानवीय संबंधों की हत्या के प्रयास और उन संबंधों के बचाव का दृन्द्र।
- (४) उपन्यास में केवल उच्च मध्यवर्ग की रोमानी मानसिकता का चित्रण है। उसमें विरोध या विद्रोह का जन्म असन्तोष से होता है।

- (५) व्यक्ति या वर्ग अपनी अभावग्रस्त स्थितियों से असंतुष्ट होता है, वह उससे ऊबरना चाहता है परंतु स्थापित मान्यताएँ और व्यवस्थाएँ उसे ऊबरने नहीं देती।
- (६) उपन्यास में शारिरीक भोग-लिप्सा और उसके प्रभाव से बनते-बिगड़ते सम्बन्धों को प्रस्तुत किया है।
- (७) उपन्यास में मानव सम्बन्धों की सीमाएँ टूटने का संकेत करते हुए मानवीय रिश्तों के यथार्थ की पहचान को केंद्रियता प्रदान की गई है।
- (८) उसमें स्त्री की मानसिकता, शोषण, पराधिनता का यथार्थ चित्रण है।

४.१.११ मकान : कथ्यगत समीक्षा :

‘मकान’ उपन्यास संगीत की पृष्ठभूमि में कलाकार नारायण बनर्जी की जीवन की आकांक्षाओं, असंगतियों और तनावों को केन्द्र में रखकर निर्मित है। यह उपन्यास डायरी शैली में लिखा है। नारायण बनर्जी असिस्टेंट एकाउन्टेन्ट एक सितारवादक है। वह जीविका के लिए परिवार को दूसरी जगह छोड़कर अपने शहर में आता है और यहीं से मकान की तलाश शुरू होती है। उपन्यास की विषयवस्तु का आरंभ नगर-निगम से हुआ है। जैसे - “इस नगर की सड़के जितनी गन्दी है, नगर-निगम का दफ्तर उतना ही शानदार है।”^{३२} उपन्यास का आरंभ शहर की सड़को की भीड़ का परायापन, शहर की गंदगी, घुटन का चित्र प्रकट करता है। जिसमें शहर के प्रति ऊबाहट, बेरुखी, अरुचि का अनुभव पाठक के भीतर निर्माण होता है, जो पाठक को आसानी से औपन्यासिक वस्तु की संवेदना का आकलन करने के लिए पृष्ठभूमि बन जाता है। जैसे नारायण के लिए यह दफ्तर की इमारत नहीं है, एक वर्जित स्वर है। इस इमारत को नारायण देखना नहीं चाहता, पर रोज देखकर उकसाता था। “जीवन की यह एक ट्रैजेडी है कि हम जिनको नहीं देखना चाहते, उन्हीं को बार-बार देखना पड़ता है और जिन्हें हम बहुत चाहते हैं, उन्हें देखने को तरसते रह जाते हैं।”^{३३} इस प्रकार उपन्यास की विषयवस्तु आरम्भ से ही नारायण पर आधारित लगती है।

एक मध्यमवर्गीय नौकरीपेशा आदमी के लिए मकान का मिलना एक बहुत बड़ी समस्या है। इसके विचित्र और हास्यास्पद और कठोर अनुभव इस उपन्यास में भरे पड़े हैं। नगर निगम के कार्यालय में अनेक पर्सनल असिस्टेंट, टाइपिस्ट और अर्दलियों की साँप-सीड़ी बिछी थी। नारायण आवास योजना के अफसर के कमरे में खड़ा था। अफसर किसी दूसरे व्यक्ति से निपट रहे थे। अफसर के पीछे खिड़की के शीशे में नारायण अपने प्रतिबिम्ब को देख रहा था। उस व्यक्ति के जाने के बाद नारायण अपनी समस्या बताता है कि चार-पाँच महीने से उसे मकान नहीं मिला है। दूसरी और नये-नये लोगों को निगम के मकान एलोट होते चले जा रहे थे। नारायण अच्छा सितारबादक होने के कारण अफसर उसे जल्द-से-जल्द मकान की व्यवस्था का आश्वासन देता है। नारायण को अपने पुराने नगर को लेकर बड़ी आशाएँ थी, “पर मेरी शंका फटीचर असिस्टेंट एकाउंटेंट की थी, जो सात साल पुरानी साइकिल के लिए विकल हो रहा था। यह जीवन की दूसरी ट्रेजडी है - कि हम जैसों के जीवन को, जिनकी ललकार दसों दिशाओं में गूँज रही है, शेर, चीते नहीं, छोटे-छोटे चूहे खाते हैं।”^{३४}

‘मकान’ उपन्यास में लेखक ने नारायण बनर्जी के सामने कई तनाव खड़े किये हैं। सारे दिन दफ्तर की निरर्थक आपाधायी शाम को अकेले सड़को, पार्को, सिनेमाघरों की सैर, यह सब सपने की तरह बीत रहा था। उसे कम किराये पर अच्छा मकान मिलना उस महानगर में असंभव था। उसे मकान दे सकता था केवल उसका अफसर। इसलिए अफसर से बार-बार मिलना आवश्यक था। लेकिन यूनियन ने बताया था कि इस अफसर से कोई काम करा लेना बैल दूहने बराबर है। अफसर को जब यह मालूम होता है कि नारायण ने बी.ए. में भूगोल पढ़ा रहे थे। उसका एक कोन्वेण्ट स्कूल में थी। आठवें में पढ़ती थी। अफसर ने भूगोल का आरंभ भारत देश से किया था। एशिया और आस्ट्रेलिया पूरा हो चुका था। आजकल अमेरिका चल रहा था। शीर्षक था - ‘विश्व भूगोल की झलक’। पत्र देखकर नारायण कहता है कि इस पत्र में पूरा ‘गागर में सागर’ है।

‘मकान’ उपन्यास में मकान के लिए सिफारिश हम देखते हैं। कभी-कभी नारायण अतीत के अनुभवों को वर्तमान में प्रतीक की तरह खींचता था। जैसे - “पुराने अनुभव रेडीमेड गार्मेन्ट की तरह सचमुच ही अनेक बार हमें नंगा होने से बचा लेते हैं।”^{३५} इसी समय उसे उसे पत्नी मीनाक्षी तथा आश्रम के स्वामी शांतानंद महाराज के दो पत्र मिले थे। आश्रम के महाराज ने सितारवादन के लिए आमंत्रित किया था। पत्नी मीनाक्षी का पत्र चार-पाँच पढ़ा था। पत्र के अंत का ‘आपकी-दासी-मी.’ पढ़कर नारायण अपने विवाहित जीवन के बसन्त काल में पहुँच जाता है। नारायण को परिवार की याद सताती है।

उसी नगर के स्वामी शांतानंद के पत्र के अनुसार नारायण आश्रम पहुँच जाता है। आश्रम के सितारवादन की खबर तथा फोटो अखबार में छपा था। नारायण की प्रशंसा हुई, उसे आज का उत्कृष्टतम कलाकार माना गया था। उसने दो घंटे तक पूरिया कल्याण बजाया था। उसके आसपास बड़े शास्त्रीय ढंग से सांस्कृतिक - आध्यात्मिक दार्शनिक बातें हो रह थी। स्वामी शांतानंद नारायण की कला से प्रेम करते थे। उसे अपना भाई जैसा मानते हुए अपने आश्रम की प्रबंध-समिति का मेंबर बनाते हैं। उन्होंने नारायण के मकान के लिए सिटी एडमिनिस्ट्रेटर से सिफारिश भी की थी। जो बाद में मकान उसे दिया गया।

‘मकान’ उपन्यास में नारायण बनर्जी अपने राग-विराग को बार-बार सुनता है। अपने अतीत में गोता लगाता है। उस राग को फिर से रचना चाहता है पहले से बेहतर। इसमें यूनियन संघर्ष भी देखते हैं। यूनियन नेता बारीन हलदार नारायण को एक फर्जी यूनियन की जानकारी देता है। जिसे सिटी एडमिनिस्ट्रेटर ने बनाया था। हलदार भी नारायण को अगले हफ्ते यूनियन में एक कल्चरल प्रोग्राम का निमंत्रण देता है। वह मकान की समस्या के बारे में गरीबों के प्रति सहानुभूति दिखाता था। नगर निगम के कार्यालय में हड़ताल होती है। दफ्तर के लोग तीन बजे से ही उठकर पार्क की ओर जाने लगे थे। अफसर दावों और पैंतरेबाजी में माहिर था यूनियन नेता बारीन हलदार के

खिलाफ कोई क्रूर चाल चलाता है। वारीन के साथ विश्वासघात होता है। अफसर ने कुछ भाड़े के टट्टुओं को पकड़कर एक यूनियन बनाई थी। उन्हें ही कर्मचारियों का प्रतिनिधि बताता है। इधर हलदार का यूनियन टूट जाता है। हलदार ने नारायण से कहा था कि यूनियन के आंदोलन से घबराकर अफसर महीने-भर में ही अस्पताल में पड़ा मिलेगा, परंतु अफसर की जगह खुद वारीन हलदार अस्पताल में भरती हो गया था। अफसर तो अपनी पूरी गरिमा और महिमा के साथ दफ्तर में बैठा रहा और वारीन हलदार अस्पताल में कहता रहा- “अस्पतालों और अखबारों में इतना सम्मान मुझे कभी नहीं मिला। यह सब इसी फूटी खोपड़ी की बदौलत है।”^{३६} पुलिस के लाठी - चार्ज में उसकी कमर, कन्धों और कुहनियों पर भी चोटें आयी थी। उसकी खबर अखबारों, एक पोस्टर से दूकानों, कारखानों और सड़कों तक पहुँच चुकी थी।

‘मकान’ उपन्यास में लेखक ने ये बताने का प्रयास किया है कि व्यक्ति को अपने गोल तक पहुँचने के लिये कितने संघर्ष करने पड़ते हैं। एक दिन अफसर के कमरे में एक राजनीतिक नेता पुतनबाबू जो भवानीगंज वार्ड के कोरपोरेटर थे। एजुकेशन कमेटी और लैंड एल्टिमेट कमेटी के चेयरमैन भी रह चुके थे। उन्हें नारायण अपनी व्यथा बताता है कि अनेक महीने हो गये दिल्ली में डेपुटेशन से लौटकर अपनी जगह वापस आया हूँ। तब नेता कहता है - “इनकी खोपड़ी बड़ी चक्करदार है। इनके सर के बीच एक सादी कील ठोक दो, निकालकर देखोगे तो कील नहीं रहेगी, स्कू बन जायेगी।”^{३७} क्योंकि साहब इतना ही कहते थे कि कोशिश करता हूँ। इसी कारण नारायण अन्य जगह मकान ढूँढने जाता है। जिला मत्स्यक्रय-विक्रय अधिकारी के कार्यालय के पास एक कमरा खाली था, पर वह भी दो-दिन पहले डिस्ट्रिक्ट फिश मार्केटिंग आफिसर ने चार सौ रुपये माहवार किराये पर ले लिया था। नारायण सोचने लगा कि मेरी तनखाह तो सिर्फ पाँच सौ रुपये है। वह निराश लौट आता है। इसके बाद दफ्तर के एक साथी ने एक खाली मकान दिखाने का वादा किया था। वह चाय और समोसे का शौकीन था। नारायण ने उसे मकान मिलने पर संगीत कार्यक्रम सुनाने का आश्वासन दिया था। वह साथी नारायण को गंदे

मोहल्ले में मकान दिखाने ले जाता है, पर नारायण गंदगी देखकर भाग आया था ।

एक दिन एक होटल में अफसर और उनकी लड़की नारायण को मिलते हैं । अफसर बताता है कि स्वामी शांतानंद महाराज की सिफारिश पर आपको ऐस्पानगर में एक फ्लैट एलर्ट कर दिया गया है । उसके पीछे एक हरी-भरी अमराई है । वहाँ कला साधना के लिए प्रेरणा मिलती रहेगी । नारायण यह सुनकर धन्यवाद व्यक्त करता है । उसे लगा अफसर ने उसे वह सब दे दिया है, जिसकी उसकों महीनों से तलाश थी ।

मकान को लेकर दफ्तर का प्रत्येक साथी बधाई देता है । इसी खुशी में आकाशवाणी के इरशाद और चित्रा को प्रिन्स होटल में चाय पिलाता है । वह सोचने लगा कि अब दिल्ली से परिवार को बुलाकर नये सिरे से सद्गृहस्थी की जीवन-पद्धति अपनानी है, होटल, सड़को की आवारागर्दी, रम की नियमित बोतल, सिम्मी की गली इन सबको छोड़ना चाहता था । मकान मिलने पर नारायण को हिचक और उदासीनता का अनुभव होता है । बाद में नारायण सिम्मी के साथ मकान देखने जाता है । यहाँ सिम्मी सोचती है कि नारायण परिवार बसायेगा और उसका साथ छोड़ देगा । वह रो देती है, तब नारायण उसे समझाता है । कुछ दिन बाद दिल्ली से बड़ा लड़का पिन्टू आ जाता है, उसे भी मकान दिखाता है । उसे शांतानंद महाराज के आश्रम में ही रूकाता है और वह सितार लेकर रिक्शे से आश्रम की ओर निकलता है । आश्रम पर बैठते ही उसका मन उन बातों के लिए तिलमिला उठता है जिनका उसकी पत्नी मीनाक्षी के आने पर जीवन में निषेध होनेवाला था । वह रिक्शा सिम्मी के घर की ओर मोड़ देता है । उस मोहल्ले में उसने भागते हुए आदमियों को देखा । भागते हुए आदमी ने नारायण के पेट में छुरा भोंक दिया, तब वह रिक्शे की सीट से लुंढककर जमीन की ओर आ रहा था । लोगों ने नारायण को रिक्शे के नीचे पड़ा हुआ पाया । इस प्रकार वह दुर्घटना का शिकार होकर कुछ हत्यारों द्वारा उसकी हत्या हो जाती है । हवा बन्द थी, पर उल्टे हुए रिक्शे का अगला पहिया अब भी धीरे-धीरे घूम रहा था ।

४.१.१२ मकान का अंत :

इस दुर्घटना के बाद वह सब कुछ किया गया, जो एक कलाकार की मृत्यु के बाद किया जाता है या किया जाना चाहिए। राजनीतिक पक्ष और प्रतिपक्ष दोनों ही कानून और व्यवस्था की गिरती हुई हालत पर चिन्तित हुए। गुंडागर्दी पर पुलिस की निंदा हुई। दो-सौ गुंडे गिरफ्तार किये गये। उसमें बुजुर्ग अनवर मियाँ भी थे।

नगर-निगम के नये एडमिनिस्ट्रेटर ने घोषणा की कि जो मकान पहले नारायण को दिया गया था, वह अब निगम की और से रियायती किराये पर उसके परिवार को दिया जायेगा। पत्नी मीनाक्षी को नगर-निगम की एक प्राइमरी पाठशाला में अध्यापिका का काम दिया गया, जो उसने कुछ दिन किया भी। बाद में बड़ा लड़का पिंटु को निगम में हाउसिंग इंस्पेक्टर के पद पर नियुक्त किया गया, जिसके साथ जुड़ी हुई हैसियत, इज्जत, तनख्वाह आदि संतोषजनक थी। लड़की छूटी का नाम आकाशवाणी के नवोदित कलाकारों की सूची में दर्ज किया गया। नारायण के सितारवादन के कुछ रिकॉर्ड भी बने।

सिम्मी संगीत का डिप्लोमा लेकर लड़कियों के एक स्थानीय कॉलेज में छोटी कक्षाओं को संगीत सिखाने लगी। नारायण की मृत्यु का वर्ष पूरा होने पर सिम्मी ने अपने कॉलेज में नारायण का स्मृति-दिवस पुराने सिटी एडमिनिस्ट्रेटर की अध्यक्षता में मनाया। बाद में नारायण की विशेषता को लेकर पत्र-पत्रिकाओं में अनेक लेख निकले और रसज्ञ आलोचकों ने इस बात को विशेषज्ञों की भाषा में शास्त्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित किया यही उपन्यास पूर्ण होता है।

✳ 'मकान' उपन्यास की विशेषताएँ

- (१) इसमें राजनीतिक पक्ष और प्रतिपक्ष दोनों ही कानून और व्यवस्था की गिरती हुई हालत का चित्रण किया है।
- (२) गुंडागर्दी पर पुलिस की निंदा हुई है।

- (३) एक मध्यमवर्गीय नौकरीपेशा आदमी के लिए मकान का मिलना एक बहुत बड़ी समस्या है। इसके विचित्र और हास्यास्पद और कठोर अनुभव इस उपन्यास में भरे पड़े हैं।
- (४) उपन्यास में मकान की खोज एक अविराम खोज है और वह एक रहस्य से दूसरे रहस्य तक ले जाती है।
- (५) इसमें महानगर का चित्रण है। महानगरों में आम आदमी का जीना मुश्किल है, पर मरना आसान है।
- (६) महानगरों में साधारण मनुष्य का जीवन कितना सस्ता है, इसे मकान उपन्यास में चित्रित किया है।
- (७) मानसिक, आर्थिक, प्रशासनिक एवं श्रमिक वर्ग का चित्रण उनकी प्रमुख विशेषता है।

४.१.१३ पहला पड़ाव : कथ्यगत समीक्षा

‘पहला पड़ाव’ में मजदूरों, मिस्त्रियों, ठेकेदारों, इंजीनियरों और शिक्षित बेरोज़गारों के जीवन पर केन्द्रित किया है और उन्हें एक सूत्र में पिरोये रखने के लिए एक दिलचस्प कथाफलक की रचना की है। संतोषकुमार उर्फ सत्ते परमात्मा जी की बनती हुई चौथी बिल्डिंग की मुंशीगीरी करते हुए न सिर्फ अपनी डेली-पैसिंजरी, एक औसत गाँव-देहात और ‘चल-चल रे नौजवान’ टाइप ऊँचे संबोधनों की शिकार बेरोज़गार जिन्दगी की बखिया उधेड़ता है, बल्कि वहीं हमें जसोदा उर्फ ‘मेमसाहब’ - जैसे जीवंत नारी चरित्र से भी परिचित कराता है।

‘पहला पड़ाव’ उपन्यास की विषयवस्तु का आरंभ इस प्रकार है- “चैत की अमावस के पहले से ही मेडूराम उर्फ नेता का मन कसमसाने लगा था। उनकी मेमसाहब भी कभी-कभी दीवार से अपनी धनुष-जैसी तीनी पीठ टिकाकर एक गीत गुनगुनातीं। उसके बोल हमारी समझ में न आते पर इतना हम समझ लेते कि उन्हें भी अपने गाँव की याद सता रही है।”^{३८}

उपन्यास के आरंभ में विलासपुर मजदूर-दम्पति तेरह-सौ रूपये कमाकर अपने गाँव रातवाली रेलगाड़ी से जा रहे थे। तीन स्टेशन पार करके निगोंहा स्टेशन आते-आते गाड़ी ही में लूट गए। डकैती के कारण दोनों वापस अपने मकान के काम पर आते हैं। मेमसाहब उर्फ जसोदा ने लूटमार की पूरी जानकारी संतोष उर्फ सत्ते को बताई थी। सत्ते ने सोचा नेता-दम्पति और दूसरे मुसाफिरों को लूटने वाली जो युवाशक्ति थी, वह उसके ही पुराने डेलीवाले पैसेंजर थे, जिनके साथ सत्ते अपने गाँव से रोज पढ़ने के लिए लखनऊ आता था। उसके कुछ साथी लूटमार, पोकैटमार करते थे। इस प्रकार आरंभ से तय है कि उपन्यास में दो वर्ग हैं, एक अपनी रोजी रोटी के लिए परिस्थितिवश मजदूरी करने वाला वर्ग तथा इन्हें लुटनेवाली युवाशक्ति, मजदूर जहाँ काम करते हैं वे ठेकेदार, इंजीनियर, जमींदार आदि उनका शोषण करते हैं।

कथा की शुरुआत बिलासपुरी मजदूरों के उस जत्थे से होती है जो साल भर कमाने के बाद जोत ज्वारे के दिन में गाँव लौटते हैं, लेकिन दो मजदूर यात्रा के बीच में लुटने के बाद पुनः काम पर आ जाते हैं और फिर उनकी पुरानी दिनचर्या शुरू हो जाती है। कथाकार ने यहां बिलासपुरी मजदूरों को केन्द्र में रखते हुए समाज के उस वर्ग चरित्र को गहराई के साथ उभारा है, जो किसी न किसी प्रकार इनके जीवन से जुड़े हुए हैं। इन मजदूरों का एक मुंशी है, सत्ते जिसका वास्तविक नाम संतोषकुमार है। यह मुंशी भारतीय समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, जो युवा है तथा जो लाचार और बेबस भारतीय शिक्षा व्यवस्था के बीच भटकता, मुंशीगिरी करते हुए अपनी पढ़ाई जारी रखने को बाध्य है। उसे मजदूरों से सहानुभूति है तथा वाकई वह उनको शोषण और अत्याचार से मुक्ति दिला कर, स्वतंत्र जिन्दगी प्रदान करना चाहता है लेकिन जिस व्यवस्था के लिए वह काम करता है, वह व्यवस्था उसे बस खाने पीने भर देती है तथा इस बात के लिए बाध्य करती है कि वह उसके हितों की रक्षा करे। “इन सबको यह शर्त मंजूर थी, पर मेमसाहब ने अपनी भी एक शर्त रखी।”^{३६}

इस उपन्यास में सार्थक जिजीविषा की तलाश हम देखते हैं। ‘पहला पड़ाव’ भी बिलासपुरी मजदूरों के बीच से गुजरते हुए आम आदमी की जिजीविषा को रेखांकित करता है। नेता की मृत्यु के बाद गर्भवती जसोदा को काम पर रखने को लेकर सत्ते और इंजीनियर साहब के बीच तकरार होती है, जो बढ़ती ही जाती है। इंजीनियर साहब समाज के उस वर्ग से आते हैं, जिसका एकमात्र उद्देश्य है पैसा कमाना। इस बीच नेता की मृत्यु की हत्या के रूप में शिनाख्त होती है तथा उसके दाह संस्कार में इंजीनियर साहब के रूख को देख कर, सत्ते उनके अस्तित्व को नकारता है। पूंजीवादी समाज में, सम्बन्धों के सारे आयाम कैसे धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं, एकी ही जाति का व्यक्ति कैसे दूसरे से कटता जाता है, ‘पहला पड़ाव’ के पात्रों को देख कर महसूस होता है। उसकी नैतिक जिम्मेदारी अपने वर्ग की सुरक्षा और अपने विकास तक आ कर सिमट जाती है। आज का मजदूर अपनी वास्तविक स्थिति से वाकिफ है तथा वह इन छोटे मोटे परिवर्तनों झांसे में नहीं आने वाला है तथा इस प्रकार की यूनियन में अब उसकी आस्था भी नहीं रह गयी है और “सच पूछो तो यूनियन शुनियन की कोई जरूरत नहीं है।”^{४०}

‘पहला पड़ाव’ में कोई बाते एक साथ उभरकर सामने आती है। मध्यप्रदेश के बिलासपुर, रायपुर, छत्रीसगढ़ आदि स्थानों से आये इन मजदूरों की टोली में हर उम्र के लोग हैं। महिलाएँ हैं, युवतियाँ हैं, बच्चे हैं, भूख और बदहाली से बचने के लिए दलालों के हाथ में पड़ कर ये मजदूर दूर दराज इलाकों से नगर और महानगर में आते हैं, लेकिन शोषण और व्यभिचार का क्रूर शिकंजा यहां भी इनका पीछा नहीं छोड़ता है। ये मजदूर एक ही स्तर पर शोषित नहीं होते हैं, क्योंकि शोषक वर्ग के पास कई रास्ते हैं तथा वे रूप बदल-बदल कर इस शोषण में भागीदार बनते हैं। इन मजदूरों का रहन सहन अत्यंत साधारण है तथा किसी प्रकार ये अपना जीवन यापन करते हैं लेकिन क्या लोग इन मजदूरों की वास्तविक हालत से वाकिफ है, कतई नहीं। सत्ते प्रेम वल्लभ की हरकत से क्षुब्ध हो कर कहता भी है, “माना, भाई कि तुम उंचे दर्जे के लुच्चे हो, हर बात का मजाक ठीक नहीं होता।”^{४१}

प्रसिद्ध साहित्यिक समाजशास्त्री लुसिएं गोल्डमान ने पूंजीवाद के विकास के साथ, उपन्यास के स्वरूप को जोड़ते हुए, इस बात की और संकेत किया कि कैसे व्यक्ति, समाज और उसकी संस्कृति इससे प्रभावित होती है। 'पहला पड़ाव' के मजदूर भी आम आदमी है तथा सत्ते उनकी दशा सुधारने के लिए यूनियन का गठन करता है, जो लाल पाल बाबू जैसे स्वार्थी, भ्रष्ट और अवसरवादी नेताओं के चक्कर में पड़ कर समाप्त हो जाती है। ऐसे लोग केवल अपनी अस्मिता बरकरार रखने के लिए समूह का इस्तेमाल करना चाहते हैं, चाहे वह समूह कितना ही दलित या पीड़ित क्यों न हो ? वे अध्यक्ष पद स्वीकारने का मतलब संगठन को आर्थिक मदद दे दिलाकर, अपने स्वार्थ की राजनीति करना समझते हैं। राजनीति में अपराधीकरण को बढ़ावा दे कर ये लोग रघुवंश जैसे माफिया किंग के माध्यम से सत्ता की राजनीति करना जानते हैं, जो आज समूचे देश में हो रही है।

इस प्रकार उपन्यास का कथ्य, सही मायने में एक बहुत बड़े फलक को हमारे समक्ष उभारती है। बहुत कुछ इस उपन्यास में कहा गया है और बहुत कुछ उसमें व्यंजित है।

४.१.१४ पहला पड़ाव का अंत

यूनियन टूट जाने बाद संतोष सोचने लगता है कि मजदूर को पेट के लिए काम चाहिए क्रांति नहीं। यूनियन को लेकर लालभाई ने विश्वासघात किया, पर अभी बहुत कुछ किया जा सकता है। जिनके हित में लड़ाई लड़ी जा रही थी, उनमें सही चेतना की कमी थी। इधर संतोष सावित्रीवाली जमीन बीस हजार रूपयों में आनंद साहब को बेच देता है। जसोदा के पति नेता की हत्या रघुनाथ ने की थी, वह आज अस्पताल में मौत का सामना कर रहा था। इस तरह उपन्यास का संतोष आज पुरी तरह आजाद था। इन सभी समस्याओं के आगे वह सोचता है कि अब पढ़ाई, आरंभ की जाए, क्योंकि अब कानून की पढ़ाई संतोष के लिए पेट पालने की मजबूरी नहीं, एक लौहजाल को तोड़ने की तैयारी होगी।

अंत में देखे तो ‘पहला पड़ाव’ उपन्यास में आर्थिक यथार्थ का लेखा-जोखा है। स्वाधीनता के बाद देश में औद्योगीकरण का काम सरकारी स्तर पर तीव्र गति से चला तो सरकार और उद्योगपतियों का, सत्ता और धन का गठबंधन हो गया। डॉ. परमानंद श्रीवास्तव के मतानुसार “विकास प्रगति के व्यक्तिगत सार्वजनिक उपक्रमों तक उसका ही विस्तार है। वही बीसवीं शताब्दी का सच है। सत्ते के जेहन में दृश्य कुछ ऐसे ही उभरता है एक कूड़े का ढेर जिसमें न इक्कीसवीं सदी की उमंग भरी आशाएँ हैं न ग्यारहवीं सदी के सांस्कृतिक सपने। यह कहने का विशेष अर्थ है कि कहानी जितनी सत्ते की है, उतनी ही जसोदा मेमसाहब की।”^{४२}

श्रीलालशुक्ल की दृष्टि में यह बदलाव और संकल्प सत्ते की जिन्दगी का पहला और सार्थक पड़ाव है। वह अंधी पगडंडियों पर भटकते हुए एक बार तो हताश हो जाता है, लेकिन फिर साहस और धैर्य के साथ अंधी गुफा से मुक्ति पाने का प्रयास आरंभ करता है। इन व्यवस्था से उसका मोहभंग होता है। उस लौहजाल को तोड़ने के लिए वह फिर से कानून की पढ़ाई आरंभ करता है। इस प्रकार मनुष्योचित साहस, संकल्प, दृढ़ता, आत्मविश्वास, संघर्षशीलता, व्यक्तित्व निर्माण करना, जीवन का पहला पड़ाव है।

✱ ‘पहला पड़ाव’ उपन्यास की विशेषताएँ

- (१) ‘पहला पड़ाव’ उपन्यास की संरचना शोषण पर आधारित है।
- (२) उसमें युवा पीढ़ी के भविष्य का संकेत किया है। साथ-साथ शोषण, हत्या और लूट का सामाजिक स्तर पर सूक्ष्मदृष्टि से उद्घाटन है।
- (३) उपन्यास का अंत एक व्यवहारिक आदर्शवाद में होता है।
- (४) दो तरह की जीवन पद्धति वाले लोगों के प्रति कथाकार के रचनात्मक व्यवहार में जिस अंतर की बात ऊपर की गयी है, उसके विपुल साक्ष्य उपन्यास में हैं।
- (५) उपन्यास की कथा बहुत सुविन्यस्त नहीं है, किन्तु इस सदी के आखिरी दशकों का सामाजिक यथार्थ, अपने जितने कोणों और आयामों के साथ उपन्यास में उभारा है।

- (६) समूचे देश में विकास के नाम पर चल रहे निर्माण कार्यों के जरिए ईंट, पत्थर और कंक्रीट के जिस विशाल जगल में समूचे देश को ढाला जा रहा है, लाभ, लोभ, अपहरण, लूट, भ्रष्टाचार और अपराधीकरण की जो नयी संस्कृति देश में पनप रही है, उसका रोमांचक और यथार्थ निर्देशन कथानक में हुआ है।
- (७) समाज तथा व्यक्तियों के मनोविज्ञान की उनकी गहरी समझ पूरे समाजशास्त्रीय आशयों से, ऐसे वर्णनों और विवरणों में जीवंत हो कर उभरी है।
- (८) पूंजीवादी समाज में, सम्बन्धों के सारे आयाम कैसे धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं, एक ही जाति का व्यक्ति कैसे दूसरे से कटता जाता है, 'पहला पड़ाव' के पात्रों को देख कर महसूस होता है।
- (९) भारतीय प्रशासन, राजनीति, शिक्षा व्यवस्था, न्याय व्यवस्था आदि पर उनका व्यंग्य, बरबस राग दरबारी की तरह, इस उपन्यास के भी व्यंग्य उपन्यास होने का आभास देता है।

४.१.१५ बिस्रामपुर का संत : कथ्यगत समीक्षा

‘बिस्रामपुर का संत’ उपन्यास सन् १९९८ ई. में प्रकाशित हुआ है। इसका बड़ा भाग भूदान आंदोलन की राजनीति और उसके यथार्थ विमर्श से सम्बन्धित है। उपन्यासकार ने अंत में सर्वोदय दर्शन की समीक्षा की है। उपन्यास की कथा का आरंभ इस कथन से है- “जिस समय राजनभवन के दिवानखाने में राज्य के मुख्यमंत्री महामहिम से मिलने का इंतजार कर रहे थे, खुद महामहिमा अपने शयनकक्ष में एक सपना देख रहे थे। यह हलके बुखार में हलके नाश्ते के बाद की नींद का सपना था।”^{४३} महामहिमा मुख्यमंत्री को मिलने से इन्कार कर देते हैं। उसी दिन रात को महामहिम का बुखार उतर जाता है। वे दूसरे दिन बिस्तर पर लेटे हुए अखबार देख रहे थे। इस प्रकार उपन्यास का अधिकांश भाग कुँवर जयंतिप्रसाद सिंह जो महामहिम राज्यपाल है, उनकी जीवन यात्रा पर केन्द्रित है। उपन्यास का प्रारंभ उनके सपने से होता है। वे अस्सी वर्ष की उम्र में जबकि राज्यपाल के रूप में उनके कार्यकाल का

थोड़ा ही समय रह गया था। वे पच्चीस-छब्बीस साल पूर्व के सपने देख रहे थे। उपन्यास का अन्य भाग आचार्य विनोबाभावे के भूदान आंदोलन की विफलता पर केन्द्रित हैं।

श्रीलाल शुक्ल का 'बिस्रामपुर का संत' आचार्य विनोबाभावे के भूदान आंदोलन पर केन्द्रित उपन्यास है। कथा के केन्द्र में उसके नियोजक सूत्र की भूमिका में, कुंवर जयंतीप्रसाद सिंह हैं जिनकी अपनी जीवन यात्रा भी लगभग इस शताब्दी के समानांतर ही रही है। उनके बड़े भाई ताल्लुकेदार होने पर भी एक राजनीतिक प्राणी थे। वे लम्बी अवधि तक कांग्रेस में रह कर सर्वोदयी समाजवादी बने थे। स्वाधीनता आंदोलन के अंतिम दौर में वे अंग्रेजी की जेल में रहे और अब कांग्रेसी शासको की जेल में रहते हैं। अपनी हाईकोर्ट की प्रैक्टिस छोड़ कर कुंवर जयंति प्रसाद सिंह ही उनकी रियासत की देखभाल करते हैं। लेकिन वे अपने भाई की तरह साधारण लोगों में खप नहीं पाते। वे दूसरी धातु के बने हैं। "वे स्वभाव से अड़ियल थे और इस अड़ियलपने को स्वाभिमान समझने के आदी थे। अपने जिस विवेक पर उन्हें बड़ा भरोसा था वह वास्तव में हर परिस्थिति में अपना हित समझने चतुरता का ही दूसरा नाम था। उन्होंने विलायत जा कर बैरिस्ट्री पढ़ी थी और अंग्रेजों की अनुशासनप्रियता की कथाएं या दंतकथाएं उनके जीवन दर्शन का मूलाधार थी।"^{४४}

'बिस्रामपुर का संत' अपने समय की राजनीति पर लिखा गया एक तीखा और कठोर उपन्यास है। कुंवर जयंति प्रसाद सिंह जब राजनीति के क्षेत्र में अपनी पहचान बनाना शुरू करते हैं तब भारतीय राजनीति का वह दौर शुरू हो चुका था जब स्वाधीनता संग्राम में की गयी जेल यात्रा के प्रमाणपत्र से अधिक अभिजात्य, बड़े नेताओं से सम्पर्क और अफसरों एवं बड़े औद्योगिक घरानों से सांठ गांठ का महत्व बढ़ गया था। नेहरू युगीन राजनीति में ये सारी चीजें, एक स्वतंत्र की हैसियत पा चुकी थी। पारिवारिक संतुलन की तलाश भी इस अवसरवादी राजनीति का एक हिस्सा बन चुकी थी। लेकिन जयंति प्रसाद सिंह के बड़े भाई स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय हिस्सेदारी के बावजूद अब कांग्रेस छोड़ कर सर्वोदयी समाजवादी बन चुके थे और जब तब कांग्रेस सरकार

की जेल में रहते थे उन्हीं के परिवार के एक और सदस्य के रूप में जयंति प्रसाद को अपने साथ में रख कर स्वाधीनता सेनानियों की उपेक्षा और उत्पीड़न के लांछन से बचा जा सकता था। सरकार में ऊँची हैसियत वाले विभिन्न पदों पर काम करने के बाद जब कुंवर जयंति प्रसाद सिंह को बिस्रामपुर के आश्रम में सुन्दरी के आकस्मिक निधन का समाचार मिलता है तो वे अपने मन में सुन्दरी की स्मृतियों को जीते हुए बिस्रामपुर की यात्रा करते हैं।

कुंवर जयंति प्रसाद सिंह राजनीति कदाचार का स्वयं एक हिस्सा बन कर उसकी प्रकृति का उद्घाटन करते हैं। उससे ऊपर और अलग न होकर उसका एक हिस्सा बनने के कारण ही उनके चरित्र की विश्वसनीयता बढ़ी है और उनके अंतर्विरोधों में पैनी तराश आ सकी है। आश्रम जीवन की सादगी उनके अभिजात्य संस्कारों के विरोध में खड़ी हो जाती है। गोचारण संस्कृत के कूड संस्कारों वाले आश्रम और उसकी पद्धति पर वे व्यथा भरी प्रतिक्रिया प्रकट करते हैं। जीवन भर के संस्कारों को छोड़ पाना उनके वश में न होने पर वे दिल्ली की एक प्लंबिंग कम्पनी से कमोड की व्यवस्था करवाते भी हैं। कुछ अटपटा लगने भी वे आश्रम में थर्मस में रखा गया पानी चांदी के गिलास से पीते हैं। उसे उठा कर देने के लिए भी किसी आदमी की जरूरत होती है। चांदी का गिलास आश्रम की संस्कृति में कुछ बेमेल सा लगने पर वे स्टेनलेस स्टील का गिलास मंगा लेने की सोचते हैं। यह समझाने में भी उन्हें अधिक समय नहीं लगता कि आश्रम में सेवा के इस 'पाखंड' को अधिक समय तक झेल पाना उनके लिए मुश्किल होगा।

बिस्रामपुर का संत उपन्यास में भूदान आंदोलन की गतिविधियां एवं परिणामों का चित्रण हम देखते हैं। विवेक ने अपने लिए अपनी राह स्वयं बनायी है, अपने पिता से अलग और स्वतंत्र। वामपंथी विचारधारा से प्रतिबद्ध वह दिल्ली विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र का प्रोफेसर है। उसकी सादगी को देख कर कुंवर जयंति प्रसाद सिंह जब तब अपने अभिजात्य रख रखाव पर अपराधबोध सा अनुभव करते हैं। आंदोलन के संदर्भ में, उसके गांव में ही रहने के दौरान सुन्दरी से उसकी चर्चा होती रही थी। वह गांधी और मार्क्स के मेल में

विश्वास नहीं करता जैसाकि उस दौर के अनेक लोग इस थीसिस की बात करते थे। विचारधारा जब महज कर्मकांड में बदल जाती है तो वह दोनों को समान रूप से नुकसान पहुंचाती है - चाहे वह गांधीवाद हो या मार्क्सवाद। भूदान आंदोलन के संदर्भ में वह सुन्दरी से कहता है, “आचार्य जी का आंदोलन एक दोधारी तलवार है जो एक और साम्यवाद को काटती है, दूसरी और गांधीवाद को।”^{४५} गांधी के किसान कैसे थे और वे उनके बारे में क्या सोचते थे इसका खुलासा लुई फिशर के साथ उनकी बातचीत से होता है। फिर विनोद भाव से वह सुन्दरी को आश्वस्त करता है कि गांधीवाद और मार्क्सवाद साथ साथ रह सकते हैं, वे एक हो सकते हैं। इसे खुलासा करता हुआ वह कहता है, “उसका तरीका यही है कि हम दोनों साथ-साथ रहने लगे, हमेशा के लिए एक हो जाएं।”^{४६} सुन्दरी को भी शायद लगता है कि गांधीवाद और भूदान आंदोलन से अपने गहरे मतभेदों के बावजूद विवेक ने उन्हें गम्भीरतापूर्वक समझ कर उन पर बात की है।

‘बिस्रामपुर का संत’ की कथा कुंवर जयंति प्रसाद सिंह के दृष्टि बिन्दु से प्रस्तुत की गयी है। लेकिन कुंवर जयंति प्रसाद सिंह के रूप में कथा के दृष्टि बिन्दु का यह चुनाव कथा के विन्यास और विकास में बाधा भी डालता है। जयश्री और सुंदरी के साथ अपने घटित अनुभव तक तो ठीक है लेकिन जब कथा के कोण सुंदरी और सुशीला अथवा सुंदरी और विवेक की और मुड़ते हैं तो दृष्टि बिन्दु का यह चुनाव परेशानी पैदा करता है। इसमें बहुत से ऐसे घटना प्रसंगों की उपस्थिति से बच पाना असम्भव होता है जिनके वें न तो साक्षी है और न ही भोक्ता। विवेक और सुन्दरी से सम्बंधित अनेक प्रसंग इसी कोटि के हैं।

अगर इस उपन्यास पर भूदान आंदोलन पर लिखी गयी पहली महत्वपूर्ण कृति का लेबल न लगा होता तो अंतर्विरोधों से धिरे एक राजपुरुष, जमींदार और पद लोलुप, कामुक की मानवीय त्रासदी का चरित्र प्रधान पठनीय उपन्यास होता। इसमें सर्वोदय कथा से ज्यादा उसके नायक के

अंह की हत्या है। बाकी सब चरित्र कुंवर साहब की त्रासदी को ही उभारने का काम करते हैं। उस रूप से यह एक सफल और पठनीय उपन्यास है।

✳ बिस्मामपुर का संत का अंत

कथ्य के समापन में भूदान-यज्ञ और ग्रामदान का उल्लेख किया है। सर्वोदय-दर्शन और इस आंदोलन के सिद्धान्तों की कुछ जानकारी दी है। सन् १९५०-५१ में साम्यवादियों के नेतृत्व में भूमिपतियों के खिलाफ किसानों का व्यापक आंदोलन चल रहा था। यह संघर्ष महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित सर्वोदय-दर्शन के सर्वथा विपरीत था। आचार्य विनोबा भावे जी का भूदान आंदोलन उन्नीसवीं शताब्दी के छठे और सातवें दशक में एक सशक्त आंदोलन के रूप में विकसित हुआ था। इसे हिंसा और लोभ के ऊपर सौहार्द और सहज मानवीय उदारता की विजय के रूप में देखा गया। उसे सामाजिक विषमता के निवारण का एक अमोघ अस्त्र समझा गया। दूसरी ओर इसे प्रगति विरोधी, क्रांति विरोधी और बड़े भूस्वामियों का पोषक मानकर इसकी उपेक्षा की गयी। इस आंदोलन के विषय में इसी कारण राजनीतिशास्त्रियों और अर्थशास्त्रियों के विचार, स्वाभाविक हैं, एक से नहीं हैं। भूदान का कोई उल्लेखनीय व्यावहारिक और स्थायी समाधान नहीं दे पाया। भूदान और ग्रामदान के क्षेत्र में बिहार राज्य सबसे आगे है। उसी बिहार में छोटे किसानों और भूमिहीन खेतिहर मजदूरों की दशा अन्य राज्यों से विषम है। बड़े भूस्वामियों में और छोटे किसानों और खेतिहर मजदूरों में आज भी बिहार में हिंसक संघर्ष देखने को मिल रहा है।

✳ 'बिस्मामपुर का संत' उपन्यास की विशेषताएँ

- (१) 'बिस्मामपुर का संत' उपन्यास में एक राज्यपाल के सेवा-निवृत्ति पूर्व तथा उत्तर की जीवनयात्रा का वर्णन और उनके ही जीवन सम्बन्धित घटनाओं के आधार पर भूदान आन्दोलन की गतिविधियाँ तथा आन्दोलन की विफलता का यथार्थ चित्रण हुआ है।
- (२) सहकारिता के क्षेत्रों की गतिविधियाँ एवं परिणामों का चित्रण।
- (३) श्रमिक वर्ग, बेरोजगारी, जातीय अहंकार एवं संकीर्णता का चित्रण है।

- (४) वर्ग विषमता, अपराध वृत्तियों के बढ़ने का एवं स्त्री की मानसिकता, शोषण, पराधीनता का यथार्थ चित्रण है।
- (५) प्रशासनिक व्यवस्था एवं शिक्षा क्षेत्र के यथार्थ का चित्रण है।
- (६) इसमें नैतिक मूल्यों का विघटन हो रहा है। पुरातन मूल्यों का लोप हो रहा है।
- (७) जमींदारी प्रथा के सामाजिक-राजनीतिक पक्ष को अभिव्यक्त करते हुए चारित्रिक विघटन की सम्पूर्ण मानसिकता को उजागर किया है।
- (८) यह उपन्यास जमींदारों की जमीन बचाने की धूर्तता, आन्दोलनकारियों की असफलता, गाँव की जमीन का हास्यास्पद, बँटवारा, जमीन वालों की दयनीय स्थिति आदि का जीवंत दस्तावेज है।

● संदर्भ सूची ●

- (१) श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृ. ०६
- (२) वही, पृ. ७२
- (३) सं. अखिलेश : श्रीलाल शुक्ल की दुनिया, पृ. १६४
- (४) श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृ. ४६
- (५) सं. अखिलेश : श्रीलाल शुक्ल की दुनिया, पृ. १६४
- (६) श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृ. ११०
- (७) वही, पृ. १३२
- (८) सं. अखिलेश : श्रीलाल शुक्ल की दुनिया, पृ. ३५
- (९) श्रीलाल शुक्ल : अज्ञातवास, पृ. १०३
- (१०) वही, पृ. ५१
- (११) वही, पृ. ७१
- (१२) वही, पृ. ७२
- (१३) मफत पटेल : हिन्दी उपन्यास में मनोवैज्ञानिकता, पृ. २५४
- (१४) श्रीलाल शुक्ल : अज्ञातवास, पृ. १०७
- (१५) डॉ. विजयचन्द्र : हिन्दी साहित्य आलोचना एवं अनुसंधान, पृ. ४२
- (१६) श्रीलाल शुक्ल : रागदरबारी, पृ. ५१
- (१७) वही, पृ. ६२
- (१८) वही, पृ. ६३
- (१९) वही, पृ. १०१
- (२०) वही, पृ. ३३५
- (२१) वही, पृ. ३३५
- (२२) सं. नामवर सिंह : श्रीलाल शुक्ल संचयिता, पृ. ११
- (२३) श्रीलाल शुक्ल : आदमी का जहर, पृ. १६
- (२४) वही, पृ. २०
- (२५) वही, पृ. २०

- (२६) श्रीलाल शुक्ल : आदमी का जहर, पृ. १६८
(२७) वही, पृ. १६८
(२८) तद्भव, पत्रिका, पृ. ०४
(२९) श्रीलाल शुक्ल : सीमाएँ टूटती हैं, पृ. ०६
(३०) वही, पृ. ३२
(३१) वही, पृ. २०६
(३२) श्रीलाल शुक्ल : मकान, पृ. ०६
(३३) वही, पृ. १०
(३४) वही, पृ. ११
(३५) वही, पृ. ६८
(३६) वही, पृ. १४०
(३७) वही, पृ. ६१
(३८) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. ०७
(३९) वही, पृ. ३०
(४०) वही, पृ. १७३
(४१) वही, पृ. १७३
(४२) तद्भव, पत्रिका, पृ. ०७
(४३) श्रीलाल शुक्ल : बिस्रामपुर का संत, पृ. ०७
(४४) वही, पृ. २१
(४५) वही, पृ. १७५
(४६) वही, पृ. १८४

पंचम् अध्याय

- ५.० श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में चरित्र-योजना
 ५.१ प्रस्तावना
 ५.२ शुक्लजी की औपन्यासिक सृष्टि के प्रधान पात्र
 ५.२.१ 'सूनी घाटी का सूरज' उपन्यास के प्रधान पुरुष पात्र
 ५.२.२ 'सूनी घाटी का सूरज' उपन्यास के प्रधान स्त्री पात्र
 ५.२.३ 'अज्ञातवास' उपन्यास के प्रधान पुरुष पात्र
 ५.२.४ 'अज्ञातवास' उपन्यास के प्रधान स्त्री पात्र
 ५.२.५ 'राग दरबारी' उपन्यास के प्रधान पुरुष पात्र
 ५.२.६ 'आदमी का जहर' उपन्यास के प्रधान पुरुष पात्र
 ५.२.७ 'आदमी का जहर' उपन्यास के प्रधान स्त्री पात्र
 ५.२.८ 'सीमाएँ टूटती हैं' उपन्यास के प्रधान पुरुष पात्र
 ५.२.९ 'सीमाएँ टूटती हैं' उपन्यास के प्रधान स्त्री पात्र
 ५.२.१० 'मकान' उपन्यास के प्रधान पुरुष पात्र
 ५.२.११ 'मकान' उपन्यास के प्रधान स्त्री पात्र
 ५.२.१२ 'पहला पड़ाव' उपन्यास के प्रधान पुरुष पात्र
 ५.२.१३ 'पहला पड़ाव' उपन्यास के प्रधान स्त्री पात्र
 ५.२.१४ 'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास के प्रधान पुरुष पात्र
 ५.२.१५ 'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास के प्रधान स्त्री पात्र
 ५.३ शुक्लजी की औपन्यासिक सृष्टि के गौण पात्र
 ५.३.१ 'सूनी घाटी का सूरज' उपन्यास के गौण पात्र
 ५.३.२ 'अज्ञातवास' उपन्यास के गौण पात्र
 ५.३.३ 'रागदरबारी' उपन्यास के गौण पात्र
 ५.३.४ 'आदमी का जहर' उपन्यास के गौण पात्र
 ५.३.५ 'सीमाएँ टूटती हैं' उपन्यास के गौण पात्र
 ५.३.६ 'मकान' उपन्यास के गौण पात्र
 ५.३.७ 'पहला पड़ाव' उपन्यास के गौण पात्र
 ५.३.८ 'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास के गौण पात्र

५.० श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में चरित्र-योजना

५.१ प्रस्तावना

उपन्यास साहित्य में कथा-तत्त्व पर प्रहार करके, उसके पारम्परिक आधार को ढहाकर उसके एक प्रमुख विपक्षी के रूप में चरित्र-चित्रण का उद्भव हुआ है। बदलते जीवन की विभिन्न समस्याएँ, उसका यथार्थ रूप केवल कथा के माध्यम से प्रस्तुत करना उपन्यासकार के लिए न केवल अधूरा अपितु असम्भव-सा भी प्रतीत होने लगा। इसीलिए जीवन की जटिलता एवं विविध भाव-भंगिमाओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करने के लिए उपन्यासकार के लिए पात्र तथा उसके द्वारा चरित्र-चित्रण का माध्यम ही पर्याय के रूप में दिखाई दिया। उन्नीसवीं सदी की पूँजीवादी व्यवस्था में यान्त्रिक युग के अभाव के कारण व्यक्ति को अत्यधिक महत्ता प्राप्त हुई। यह शक्तिशाली, साहसी 'व्यक्ति' उपन्यासों में प्रतिष्ठा पा गया और इस व्यक्ति के चरित्र को ही उपन्यास का पर्याय समझ लिया गया। आगे चलकर यह 'व्यक्ति' पात्रों के विभिन्न रूपों में चित्रित होने लगा और पात्रों के विविध आयामी चित्रण को चरित्र का चित्रण कहा जाने लगा और इस चरित्र-चित्रण को उपन्यासों में अत्यधिक महत्त्व प्राप्त हुआ।

उपन्यासों में चरित्र को सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त हुआ है। पाश्चात्य दृष्टि में मानव के अंतः स्थलीय रहस्यों और उनकी बाह्य प्रिय-अप्रिय छबियों तथा क्रिया-कलापों का मर्मस्पर्शी उद्घाटन ही उपन्यास का सर्वस्व है। अन्य तत्त्व इस लक्ष्य के केवल पूरक या संवर्धक मात्र होते हैं। ई.एम. फोर्स्टर ने भी कथा से मुंह मोड़कर पात्र और चरित्र को ही उपन्यासों का तथा उनके चरित्रों की गत्यात्मकता अथवा संप्राणता से ही उपन्यास अधिक शक्तिशाली बनता ऐसा माना है।

उपन्यासों में चरित्र-चित्रण को जो महत्त्व प्राप्त हुआ है उसके मूल में पात्र ही हैं और ये महान पात्र, एक नहीं कभी-कभी अनेक रचयिताओं को प्रेरित कर विभिन्न रचनाओं को जन्म देने की शक्ति रखते हैं। उपन्यासकार जीवन के फलक को साकार करने के लिए मनुष्य को ही पात्र-रूप

में ग्रहण करता है तथा उसके चरित्र को बहु-आयामी अर्थवत्ता प्रदान कर उसे अमर बना देता है। यही कारण है कि अनेक बार उपन्यास के पात्र उपन्यास से भी अधिक ख्याति प्राप्त कर लेते हैं और उपन्यास के बदले पात्र ही याद रह जाते हैं।

उपन्यासकार पात्रों के मनोभावों तथा बाहरी कार्य व्यापारों को प्रखर एवं गतिशील बनाने के लिए नाटकीयता का सहारा लेते हुए उसका प्रत्यक्षीकरण करता है। वह अपनी संवेदना की सघनता से पात्रों के परिवेश तथा उनके अंतर्मन में झांककर उन्हें उद्घाटित करता है। वह जीवन के विविध अनुभवों, व्यक्तियों, समाज तथा जगत से पात्रों के सम्बन्ध आदि की व्याख्या करता है। समग्र जीवन को व्यक्त करने की शक्ति इन्हीं पात्रों में होने के कारण पात्रों को उपन्यासों में क्रमशः केन्द्रिय स्थान मिलता गया और चरित्र-चित्रण उपन्यास में प्राणभूत तत्त्व बन गया। उपन्यासों में चरित्र-चित्रण का उपयोग बिम्ब, प्रतीक जैसा किया जाने लगा और इस बिम्ब प्रतीकात्मक के कारण उपन्यास को एक नई कामयाबी प्राप्त हुई।

उपन्यास में चरित्र-चित्रण को अत्यधिक महत्ता प्राप्त हुई है और उसकी कुशलता एवं कलात्मकता एक प्रकार से उपन्यास की महत्ता में निर्णायक बन गई। चरित्रों के अभाव में उपन्यासों में न तो कथानक का निर्माण तथा विकास ही सम्भव है और न कथोपकथन जैसी प्रणाली की कल्पना की जा सकती है। चरित्रों के अभाव में उपन्यासकार की कल्पनाशीलता एवं प्रतिभा कौशल को भाव-भूमि मिलना मूर्श्किल तो होगा ही साथ में उपन्यास के मूल उद्देश्य की पूर्ति भी असम्भव होगी। अतएव यह निर्विवाद सत्य है कि चरित्र-चित्रण उपन्यास के अन्य परम्परागत तत्वों को अत्यन्त सहायक सिद्ध होने के साथ उन्हें अस्तित्व की गरिमा प्रदान करता है। इसीलिए उपन्यास में चरित्र-योजना का पारम्परिक दृष्टि से ही क्यों न हो स्वयं सिद्ध है। इस तरह उपन्यास में चरित्र-चित्रण को अत्यधिक महत्त्व प्राप्त हुआ है क्योंकि मनुष्य जीवन के विविध रूपों एवं आयामों को उद्घाटित करने में वही तत्त्व कथा से

अधिक सक्षम प्रतीत हुआ और अपने उद्देश्य-पूर्ति में भी वह अन्य तत्वों से अधिक सफल समझा जाने लगा ।

उपन्यास विधा में चरित्र-योजना को अधिकाधिक महत्ता मिलने के कारण विविध प्रकार के पात्र अपनी अलग-अलग विशेषताएँ लिए दृष्टिगोचर होते हैं । कथावस्तु की दृष्टि से इनके प्रधान पात्र तथा गौण पात्र जैसे दो मुख्य भेद किए जाते हैं परन्तु चरित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रतिनिधि, व्यक्तिवादी, मिश्र स्थिर, समतल एवं विकसनशील आदि अनेक प्रकार के पात्र दृष्टिगोचर होते हैं ।

प्रतिनिधि पात्र अपनी चारित्रिक विशेषताओं द्वारा किसी एक वर्ग-विशेष अथवा समुदाय-विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं । फलस्वरूप ऐसे किसी एक पात्र को समझ लेने पर उसी प्रकार के एक पूरे समुदाय या विशिष्ट वर्ग को जाना जा सकता है । सही देखा जाय तो इनकी अपनी कोई निजी विशेषता नहीं होती और ऐसे पात्रों में मानव की गहरी संवेदना, जटिल भावबोध और स्वतंत्र चिंतन शक्ति को प्रभावित करने की क्षमता नहीं के बराबर होती है । जहाँ भी कहीं थोड़ा अधिक प्रभाव होता है, क्षणिक होने के कारण वह स्थायी नहीं रह सकता । ऐसे पात्र हमारे राग-विराग के ऊपरी स्तर को आम तौर पर, छूते हुए विस्मय, कौतुहल, उत्तेजना आदि पैदा करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं ।

५.२ शुक्लजी की औपन्यासिक सृष्टि के प्रधान पात्र

बाबू श्रीलाल शुक्लजी ने ग्यारह उपन्यासों की रचना की है । उनके सभी उपन्यासों में प्रधान-पात्र को 'स्त्री हो या पुरुष' उनको संघर्ष करता हुआ चित्रित किया है । 'सूनी घाटी का सूरज' उपन्यास में रामदास को अपने अभावों से संघर्ष करता हुआ चित्रित किया है । तो 'अज्ञातवास' उपन्यास में रजनीकांत के माध्यम से सरकारी अधिकारियों की विलासिता का चित्रण किया है । 'राग दरबारी' उपन्यास में रंगनाथ को भी चिंतित बताया है, तो 'आदमी का जहर' उपन्यास में भी हम उमाकांत को भी इस तरह देखते हैं । 'सीमाएँ टूटती हैं' उपन्यास में विमल सलुजा को भी अविश्वासी, विलासी,

स्वार्थी चित्रित किया है। 'मकान' उपन्यास के मुख्य पात्र के सामने भी कई समस्या हम देखते हैं। 'पहला पड़ाव' उपन्यास का प्रधान पात्र संतोषकुमार है। ये पात्र आज के पढ़-लिखे युवकों का प्रतिनिधित्व करता है। 'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास का मुख्य पात्र कुँवर जयंति प्रसादसिंह सामंत वर्ग का प्रतिनिधि थे।

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों के प्रधान स्त्री पात्र को देखे तो 'सूनी घाटी का सूरज' में सत्या उर्फ अनिता। 'अज्ञातवास' में प्रभा। 'आदमी का जहर' में रूबी। 'सीमाएँ टूटती हैं' में चाँद। 'मकान' में सिम्मी। 'पहला पड़ाव' में जसोदा उर्फ मेमसाहब। 'बिस्रामपुर का संत' में सुन्दरी आदि प्रधान स्त्री पात्र है।

५.२.१ 'सूनी घाटी का सूरज' उपन्यास के प्रधान पुरुष पात्र

रामदास- 'सूनी घाटी का सूरज' एक चरित्र प्रधान उपन्यास है किन्तु रामदास का चरित्र जिस रूप में प्रस्तुत हुआ है, उससे वह एक पूरी पीढ़ी का प्रतिनिधि बन जाता है। "साधनहीन और शैशव में ही अनाथ हुआ रामदास एक अनाम जिजीविषा से परिपूर्ण है जो घोर संकटों में भी शिक्षा के उच्च स्तर को आयात करता है।"^१

उपन्यास का नायक या मुख्य पात्र रामदास एक गरीब किसान का लड़का है। वह अपनी हालातों और समस्याओं से लड़ता हुआ वह एम.ए. अर्थशास्त्र की परीक्षा प्रथम स्थान में उत्तीर्ण होता है। अभ्यास के दौरान उसने अनेक सपने संजोये थे, लेकिन अन्ततः हर जगह उसका शोषण होता है। अपनी तमाम योग्यता के बावजूद अपने सपनों को केवल टूटते हुए देखने और उसकी पीड़ा को सहने के सिवां वह कुछ नहीं कर पाता। वह विसंगत एवं गलत परिस्थितियों के साथ स्वयं को समायोजित नहीं कर सका, परिणामतः अस्तित्व के सभी आलोकित अरमानों को त्यागकर जर्जर प्रांतर में १३५ रु. मासिक पर मास्टरी करने के लिए तुम्हीं जैसो को आना पड़ता है। आरम्भ से ही जो व्यवस्था तुम्हारे मार्ग में बाधाओं को खींच-खींच कर लाती रही, वही अब तुम्हें इन बाधाओं के देश में खींचे लिए जा रही है। इस बात को लेकर रामदाससिंह

कहता है - “यहाँ मैं न आऊंगा तो और कौन आएगा?”^२ यह आदर्शकृत समाधान है जो यथार्थ के विरोध में पड़ता ही है, उपन्यास के नायक को विश्वसनीयता भी प्रदान नहीं करता है।

रामदाससिंह के व्यक्तित्व में अभावपूर्ण ग्रामीण परिवेश है, ग्रामीण मजदूरों का निर्मम शोषण, विषमतापूर्ण शहरी वातावरण, धनिक लोग की रूमानी जीवन दृष्टि, शिक्षा संस्थाओं का गलत रूप तथा उनमें आदर्शों के लुभावने चेहरों में छिपे भयानक चेहरे, मजबूर व्यक्ति की प्रतिभा का निर्मम शोषण, नयी प्रजातांत्रिक व्यवस्था में जनसाधारण की प्रवंचना, ध्येयशील युवक की सूनी घाटी में लौटने की लाचारी आदि का वास्तविक चित्रण रामदाससिंह के माध्यम से उपन्यास में प्रस्तुत है। इन चारित्रिक विशेषताओं को उभारने के लिए शुक्लजी ने आत्मनिवेदनात्मक कला का प्रयोग किया है। रामदास ने अपनी प्रेमिका अनिता को अपनी आत्मकथा पढ़ने के लिए दी है। उस आत्मकथा का अधिक भाग रामदास का व्यक्तित्व प्रस्तुत करता है।

उपन्यास में रामदाससिंह एक ऐसे क्षत्रिय का बेटा है जिसे अपनी तीन बेटियों की शादी के लिए कुल डेढ़ बीघा जमीन और घर एक अमीर ठाकुर के यहां गिरवी रख देना पड़ता है और वह बंधुआ मजदूर का जीवन बिता रहा है। गांवों में इस तरह के गरीब ठाकुरों की एक दो सच्ची दास्ताने हो सकती हैं पर ऐसी कहानियां प्रतिनिधि यथार्थ नहीं बनातीं। सवाल यह है की अगर रामदास क्षत्रिय न हो कर, ब्राह्मण होता तो ? तो भी कोई फर्क न पड़ता लेकिन यदि उसके साथ कोई दलित जाति जुड़ी होती तो भी क्या ‘सूनी घाटी का सूरज’ के नायक की संघर्ष यात्रा यही रहती।

५.२.२ ‘सूनी घाटी का सूरज’ उपन्यास के प्रधान स्त्री पात्र

सत्या- ‘सूनी घाटी का सूरज’ उपन्यास में सत्या उर्फ ‘अनिता’ को लेखक ने प्रधान स्त्री पात्र के रूप में प्रस्तुत की है। सत्या उर्फ अनिता एक इंजीनियर की पुत्री थी। घर पर केवल पिता-पुत्री रहते थे। सत्या के पिता किसी पेट्रोल कंपनी में नौकरी करते थे। वे हमेशा दौरो पर बाहर रहते थे। सत्या लखनऊ युनिवर्सिटी में पढ़ रही थी। बंगले में अकेली रहती थी।

उसकी सहेली बेबी थी। सत्या हर विषय पर अपने विचार रखती थी। इस बात को लेकर वह कहती है “और मैं भी तुम्हारे लिए इतनी अपरिचित नहीं हूँ। कुछ समझकर ही तुमने मुझसे अपनी बातें बताई हैं। मेरी शक्तियाँ बहुत कम हैं। कुछ और न कर सकूँ, फिर भी तुम्हारी कठिनाइयों के बारे में तुम्हारे साथ सोच तो सकती ही हूँ। उसमें भी तुम्हें आपत्ति होगी।”^३ सत्या उर्फ अनिता में बौद्धिक विमर्श भी भरा पड़ा है।

रामदाससिंह ने अपनी आत्मकथा में सत्या का नाम अनिता रखा है। सत्या रामदास से प्रेम करती थी वह रामदास की प्रेमिका के साथ-साथ उसकी शुभचिंतक थी, उससे अपनापन, सहानुभूति रखती थी। वह उसकी प्रतिभा की कायल थी, उसमें रुचि लेती थी। रामदाससिंह उसे अपने संस्मरण जिसमें उसने सत्या को अनिता का नाम दिया है। वह संस्मरण उसे पढ़ने के लिए देता है। संस्मरण पढ़ने के बाद सत्या रामदास के दोस्त रामानुज चटर्जी से विवाह कर लेती है। यह चरित्र अभिजात्य समाज के संस्कारों का प्रतीक है।

५.२.३ ‘अज्ञातवास’ उपन्यास के प्रधान पुरुष पात्र

रजनीकांत- रजनीकांत ‘अज्ञातवास’ उपन्यास का प्रधान पात्र है। वह जमींदार का बेटा था। पिता एक छोटे जमींदार थे। उनको बड़े जमींदार किसान मानते, किसान उन्हें राजा समझते। रजनीकांत सिंचाई विभाग का सुपरिन्टेंडिंग इंजीनियर था। रजनीकांत के चरित्र के माध्यम से सरकारी अधिकारियों की विलासिता, भ्रष्टता, दुहरा व्यक्तित्व, मिथ्या अभिमान, दंभ, प्रदर्शन एवं लोभ का उद्घाटन होता है। रजनीकांत को गाँव के प्रति जो आकर्षण था, वह इसी कारण धीरे धीरे कम हुआ। उसने तथा कथित शहरी संस्कारों के कारण अपनी ग्रामीण अनपढ़ पत्नी को तिरस्कृत कर दिया। जैसे शहरी सभ्यता की चमक-दमक से प्रभावित रजनीकांत प्रभावित था और वह अपनी वास्तविकता को, अपनी संस्कृति को भूल गया था।

रजनीकांत अब व्यूक कार, कीमती फर्निचर, अधिक सम्पत्ति, कोठी, स्विमिंग पुल, कलापूर्ण वाटिका, टेनिस कोर्ट वाले इंजीनियर बन गया था। पिता की संपत्ति की आखिरी बूंद तक उसकी पढ़ाई में खर्च हो

जाती है। माता-पिता का देहांत होने पर उसका रहन-सहन, जीवन-व्यापार, नाटक के अभिनेता जैसा बन जाता है। उसे सस्ता आत्मसंतोष प्रिय था। पैसे पर निर्भर सामाजिक प्रतिष्ठा, जहोजलाली, ब्लैकमेल के रूपये, धोखेबाजी उसके जीवन के अंग बन गए थे। उच्च शिक्षा, ऊँचा पद, सम्पत्ति, सम्मान पाने की महत्वाकांक्षा, चाटुकारों का साथ, सब दिखावे का आदर और प्रेम लूटने की सहन प्रवृत्ति, परम्परा से मिली हुई किसानों की स्वार्थ बुद्धि इन सबने एक ऐसा व्यक्तित्व का निर्माण किया कि सबकुछ चमकदार होते हुए भी कलंकित था। उसे प्रेमिका डॉ. सीमादत्त की तुलना में अपनी पत्नी रानी गँवार लगती थी। इसलिए वह पत्नी को घर में कैदी के समान रखता था। उसे घृणा, तिरस्कार और शराब पीकर किया गया बलात्कार ही गृहस्थी के रूप में उसने प्रदान किया था। रजनीकांत रूप्यों की धुंध में खोया हुआ था। वह एक दिन 'अज्ञातवास' का चित्र देखकर बदल जाता है। उसकी सदसद्विवेक बुद्धि जागृत हो जाती है। वह पश्चाताप से दग्ध हो जाता है। अतः अपने अतीत का दुःख-दर्द अपनी पुत्री प्रभा के सामने खोलकर रख देता है। उसके अतीत का दुःख, वेदना मानों हृदय की पीड़ा बन जाती है। अर्थात् मामूली-सा दिल का दौरा पड़ता है। इस बीमारी में पुत्री प्रभा का निःस्वार्थ स्नेह, सेवाअनुभव पाता है। उसे मरने से डर लगता था। उसे अपना अतीत याद आने लगता है। अंत में वह उसी वातावरण में पहुँचना चाहता है। उसे लगता है कि उसके गाँव के लोग जहाँ थे, उनके मुकाबले में वह एक इंच भी आगे नहीं बढ़ पाया था। वह वहीं जाना चाहता करो। “अपनी अपूर्णता को देखकर मूझे सम्पूर्णता से सम्पृक्त करो।”^४ इस तरह वह यष्टि से समष्टि की ओर जाना चाहता था।

इस प्रकार यह ऐसा वर्ग चरित्र है, जो नौकरशाही, अफसरशाही के उच्च पदस्थ अवसरवादी, भ्रष्ट, ऐय्याशी, खोखलेपन का जीवन बिताता था। ऐसे व्यक्ति घूस के पैसे पर ऐय्याशी करते हैं। जनता को ठगते हैं और बिना कुछ किये यश लूटते हैं। सत्यप्रकाश मिश्र इनके चरित्र का पर्दाफाश करते हुए कहते हैं कि “रजनीकांत के माध्यम से लेखक ने स्वतंत्र भारत के शासनतंत्र यथार्थ को ही उद्घाटित किया है। विनायक की कै, रजनीकांत का

हार्ट-एटैक और पश्चाताप उपन्यास को बहुत मूल्यवान नहीं बनाता। यद्यपि 'अज्ञातवास' का पश्चाताप एक प्रकार के पाप की स्वीकृति के कारण रजनीकांत को मुक्त अवश्य करता है, परंतु दूसरे अन्य प्रकार के पापों के प्रति कोई पश्चाताप नहीं है। इस अर्थ में पाप स्वीकृति भी वैयक्तिक सुख की कामना के विस्तार का एक एक उपाय बन जाती है।”^५

प्रतिपाद्य है कि यह रजनीकांत का व्यक्तिगत स्तर पाप बोध है। उसने जीवन में भोगे सुख-दुःख में सुख अधिक है। उसमें पाप कर्म अधिक है। इन सबको अनुभव करने लगता है और एक नयी जिंदगी चाहता है। रजनीकांत के चरित्र के माध्यम से मनुष्य की अंतः प्रवृत्तियों और यथार्थ के कारणों का उद्घाटन हुआ है।

५.२.४ ‘अज्ञातवास’ उपन्यास के प्रधान स्त्री पात्र

प्रभा- प्रभा रजनीकांत की एकमात्र संतान थी, जो अमेरिका से शिक्षा प्राप्त कर आनेवाले प्रेमी शशिकांत की प्रतीक्षा कर रही थी। प्रभा ने अंग्रेजी में एम.ए. किया था। उसकी उम्र बाइस साल की थी। उसे ग्राम गीत बहुत अच्छे लगते थे। जब उसे अपनी स्वर्गवासी माँ रानी की याद आती है, तब पिता से कहती है- “तो मैं यह हूँ। घृणा, असंगति, कटुता, पीड़ा, निराशा की सन्तान। कुरूपता के ढेर से काल ने मुझे निसर्ग के हाथों खींचा है, और मैं अब तक इस सबसे अनजान रही।”^६ फिर समय से मानों समझौता करके ओर पिता के प्रति स्नेह दिखाते हुए कहती है- “पापा, इन्हीं असंगतियों का नाम जीवन है।”^७ अतः प्रभा का चरित्र पिता के साथ माँ की याद में तथा पिकनिक के समय प्रस्तुत हुआ है।

५.२.५ ‘राग दरबारी’ उपन्यास के प्रधान पुरुष पात्र

रंगनाथ- ‘राग दरबारी’ उपन्यास में लेखक ने रंगनाथ नामक एक शोध-छात्र को नायकत्व प्रदान किया है। इस बात को लेकर रंगनाथ ‘राग दरबारी’ उपन्यास का प्रमुख पात्र है। वह इतिहास में एम.ए. है। उसके बाद उसने शोध-कार्य आरंभ किया था। इसी दौरान शोध-छात्र रंगनाथ अपना स्वास्थ्य सुधारने हेतु शिवपालगंज में अपने मामा वैद्यजी के पास आता

है। मामा वैद्यजी के परामर्श के निमित्त उसके अध्ययन का अधिकतर समय वैद्यजी की बैठक में बीतने लगता है। परिणामस्वरूप वह शिवपालगंज का एक विशिष्ट दर्शक की भाँति अन्य कार्य-कलापों का अवलोकन करता है। वह वैद्यजी की बैठक में तथा अन्य कहीं अपनी राय भी जाहिर करता था। उपन्यास में प्रस्तुत विविध गतिविधियाँ, राजनीतिक दाँवपेंच, सामाजिक मनोवृत्तियों से वह परिचित होता है। जैसे लंगड़ का नकल का मसला, कोआपरेटिव यूनियन में गबन आदि घटनाएँ। रंगनाथ गाँव के जीवन में अनायास रस लेता है। रंगनाथ एक सामान्य बुद्धिजीवि की भाँति चिंता व्यक्त करता है। उसे लगता है कि स्वतंत्रता, जनतंत्र, न्यायपालिका, विकास, पंचायत राज, सहकारिता तथा अन्य जनतांत्रिक संस्थाएँ निहित स्वार्थों एवं अवांछनीय तत्वों के हाथ की कठपुतली भर बनकर रह गयी है। परमानंद श्रीवास्तव जी ने उसके व्यक्ति की समीक्षा इस प्रकार की है -

“शिक्षा और दूसरे मूल्यों की ऐसी तैसी करते हुए सबके सब कुम्भीपाक में हैं। रंगनाथ के मन में कहीं इस व्यवस्था से विरोध की लहर उठ रही है तो वह शुरु में ही जान लेता है कि पहली कोशिश में वह भरभरा कर लुढ़क गया है। शेष रहता है- पलायन-संगीत या भ्रष्टाचार समुच्चय का स्वांग। रंगनाथ के सामने कोई सार्थक विकल्प नहीं है या तो काल्पनिक अमूर्त आधुनिकता में या अतीत में या एक हवाई दुनिया में जहाँ दूसरे गम नहीं हैं कहीं छुप जाना है। यथार्थ इतना विद्रुप और भयानक है कि उसे देखना एक हास्यास्पद और त्रासद अनुभव है।”⁵

इस प्रकार रंगनाथ शिवपालगंज की विद्रुपता, भयानकता के प्रति कुछ करना चाहता था। वह स्वयं मामा वैद्यजी के खिलाफ खड़े होने का फैसला करता है, पर कुछ नहीं कर पाता बल्कि वहाँ से पलायन करता है।

५.२.६ ‘आदमी का जहर’ उपन्यास का प्रधान पुरुष पात्र

उमाकांत- उमाकांत ‘आदमी का जहर’ उपन्यास का प्रधान चरित्र है। वह उपन्यास में अजीतसिंह की हत्या के बाद उपस्थित होता है। वह एक पत्रकार था। वह उपन्यास की रहस्यमय घटना की पोल-खोल

करता है। वह पहले दिल्ली में एक प्रसिद्ध अखबार के विशेष संवाददाता का काम करता था। अपराधों की रिपोर्टिंग करने में उसे बड़ा निपूण समझा जाता था। उसे अपराध और अपराधियों के बारे में गहरी जानकारी थी। वह हरिश्चन्द्र और रूबी के परिवार का मित्र था। उसकी अजीतसिंह की हत्या के मामले में पुलिस इंस्पेक्टर सिद्दीकी विशेष सहायता लेते हैं।

उमाकांत में अपराधों की रिपोर्टिंग करते-करते तीन विषयों के प्रति दिलचस्पी पैदा हुई- समाजशास्त्र, अपराधशास्त्र और खून की वारदातें। उसने समाजशास्त्र का नियमित अध्ययन किया, अपराधशास्त्र के बारे में लेख-लिखने शुरू किये थे। वह अपराधों की खास तौर से हत्याओं के मामलों की, निजी तौर से जाँच-पड़ताल करने लगा था। खून के अनेक ऐसे मामले थे, जिनमें पुलिस असफल हो चुकी थीं, उसकी कोशिशों से सुलझ गये थे। वह सही रास्ते से चलकर सही अपराधी को पकड़ता था। उससे पुलिस से ऊँचे स्तर पर उसकी नामना बढ़ी थी। इस तरह उमाकांत जनसामान्य में धीरे-धीरे क्राइम-रिपोर्टर के बजाय एक 'प्राइवेट जासूस' गिना जाने लगा था। वह पिछले वर्षों से लखनऊ में रह रहा था और मुंबई के एक अखबार में संवाददाता भी था।

अजीतसिंह की हत्या के मामले में पहले उमाकांत हरिश्चन्द्र और रूबी से पूछताछ करता है। उमाकांत यहाँ एक हत्या के साथ दूसरी हत्या का भी पता लगाता है। शांतिप्रकाश, जसवंत और वीणा गहलौत तीनों को पुलिस के हाथ सौंप देता है और दूसरे दिन नैनीताल की अधूरी यात्रा पूरी करने चला जाता है।

इस प्रकार अपराधी ढूँढने में पुलिस की सहायता करने वाला, ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ, मेधावी, न्याय के प्रति निष्ठावान व्यक्ति के रूप में उमाकांत प्रस्तुत है। पत्रकारिता के कलंकित पक्ष का प्रतिनिधित्व अजीतसिंह करता है, तो पत्रकारिता के विधायक पक्ष का प्रतिनिधित्व उमाकांत करता है।

५.२.७ 'आदमी का जहर' उपन्यास का प्रधान स्त्री पात्र

रुबी- 'आदमी का जहर' उपन्यास का प्रमुख स्त्री पात्र रुबी है। वह हरिश्चन्द्र की पत्नी है। दोनों पति-पत्नि इतवार के दिन होटल में खाना खाते थे। पति हरिश्चन्द्र को रुबी पर सन्देह था। रुबी उसे व्यभिचारी प्रतीत होती थी।

सन् १९५८ में जब रुबी लगभग चौबीस साल की थी। उसके माँ-बाप दिल्ली में थे। रुबी मेरठ के एम.बी. गर्ल्स कॉलेज में लेक्चरर थी। अजीतसिंह की चचेरी बहन रत्ना भी वही पर लेक्चरर थी। उसकी शादी हो चुकी थी। रुबी और रत्ना की धनिष्ठ मित्रता थी। युनिवर्सिटी में जब रुबी पढ़ती थी तब उसकी मित्रता आनन्द से हो गयी थी। आनन्द लुधियाना का रहने वाला था और फौज में सेकिंड लेफ्टिनेंट की हैसियत से दिल्ली में नियुक्त हुआ था। रुबी और उसने शादी करने का वादा किया था। वह चार दिन के लिए मेरठ आया और रुबी के साथ रहा। उसके बाद दो महीने के भीतर ही एक एक्सिडेंट में वह मर गया। आनन्द के न रहने से रुबी के प्रति लोगों का रुख अचानक बदल गया। जो कल तक एक स्वाभाविक व्यवहार की बात थी, वही अचानक अब अपराध बन गयी और रुबी के लिए आवश्यक हो गया कि वह झूठ का सहारा लें। रत्ना को ये घटनाएं शुरू से मालूम थी। उसने छुट्टी ले ली। रुबी ने एक बच्चे को जन्म दिया। अवैध संतान होने के कारण उसे दिल्ली के एक बालगृह में रखा गया। एक साल बाद रत्ना ने उसे दत्तक पुत्र के रूप में स्वीकार किया। अजीतसिंह रत्ना का चचेरा भाई होने के कारण वह एक बार मेरठ ऐसे मौके पर आया, जब वहाँ संदीप भी मौजूद था। रत्ना और संदीप के साथ रुबी का एक फोटो उसने लिया था। जिसकी एक कोपी उसने रत्ना के यहाँ से किसी तरह पा ली थी। शायद रत्ना के पति से अजीतसिंह को मालूम हुआ कि संदीप रुबी का लड़का है। उसके बाद रुबी से अजीतसिंह का 'ब्लैकमेल' का दौर शुरू हुआ।

कुछ दिनों बाद हरिश्चन्द्र से रुबी शादी करती है। उससे अतीत की ये बातें छिपाती है। दोनों के शादी के बाद अजीतसिंह रुबी से सिर्फ

रुपये ही नहीं चाहता था। उसे अपनी प्रेमिका बनाने की भी इच्छा थी। अब तक रुबी से वह फोटो वापस के बहाने पन्द्रह-सोलह हजार रुपये पा चुका था।

अजीतसिंह को गोली लगने के बाद रुबी उसको बचाने के लिए अस्पताल जाती है और अजीतसिंह को बचने की प्रार्थना करती है। “मैं वहाँ उसकी जीवनरक्षा की प्रार्थना करने गयी थी, उसे जहर देने नहीं।”^६ पत्रकार उमाकांत रुबी को पहले से ही निर्दोष समझ रहा था।

अतः रुबी के चरित्र से स्पष्ट है कि दुर्भाग्य से आने वाले संकटों में नारी की मानवतापूर्ण मदद करने के बजाय उसका अधिकाधिक दैहिक, आर्थिक शोषण करनेवाले फरेबी इस समाज में मौजूद हैं।

५.२.८ ‘सीमाएँ टूटती हैं’ उपन्यास के प्रधान पुरुष पात्र

विमल सलुजा- विमल सलुजा ‘सीमाएँ टूटती हैं’ उपन्यास का प्रधान पात्र है। यह चतुर, अविश्वासी, विलासी, स्वार्थी और रसिक है। विमल सलुजा दिल्ली का एक व्यवसायी था। उसकी आयु सैंतालीस वर्ष की थी। वह दुर्गादास नामक रेडियो, ग्रामाफोन आदि के दुकानदार का मित्र था। उसकी बीबी शादी के तीन साल बाद मर गयी थी, तब विमल उन्नीस साल का था। वह पत्नी से बहुत प्यार करता था, वह प्यार न था, सिर्फ साथ भर था, तब से आज तक वह विधुर जीवन जी रहा था।

विमल दुर्गादास के साथ पिछले पन्द्रह सालों से परिचित था। दुर्गादास को बड़े भाई की तरह मानता था। लखनऊ में दुर्गादास ने एक रेडियो और बिजली के सामान की दुकान खुलवायी थी। वह दुर्गादास के परिवार को सुखी और प्रसन्न देखना चाहता था। दुर्गादास का छोटा पुत्र राजनाथ को वह व्यवसाय में सहयोग करता है। दुर्गादास की लड़की चाँद तथा बहु नीला के प्रति सहानुभूति दिखाता था। वह काम-पिपासू होने के कारण स्त्रियों को आकर्षित करने के लिए सिनेमा दिखाने ले जाता था। इसी प्रयास में दुर्गादास की तेईस वर्षीय लड़की चाँद, जो विमल को ‘अंकिल’ कहती थी, उससे वह प्रेम करने लगता है।

विमल सलुजा व्यवसाय के कारण जब-जब लखनऊ जाता था, वहाँ जूली नामक स्त्री से उसके शारिरिक सम्बन्ध भी थे। वह लखनऊ में जूली को डिलाइट होटल के अपने पुराने कमरे में बुलाता था। वही जूली से चाँद का राज बताता है। वह व्हिस्की का एक घूँट पीकर बोला “मेरी हालत तुम से उल्टी है मैंने सिर्फ पाप किये हैं और किसी के लिए नरक नहीं झेला है। पर न जाने मैंने कौन-सा सबाब किया था, भाग्य ने अचानक मुझे एक अनोखा तोहफा दिया है।”^{१०} वह चाँद को किस्मत से मिला हुआ एक अनोखा तोहफा मानता था। चाँद का आकर्षण पहले से उसे चौकन्ना करता था किन्तु प्रेम की मजबूरी के कारण यह अनुभव करता है कि “इस प्रेम का अंत शादी में नहीं हो सकता, आत्महत्या में भले ही हो जाय।”^{११} यह सम्बन्ध अतीत भूला देता है। यहाँ से मानवी सम्बन्धों की हत्या होने लगती है। उनका स्थान संदेह, अविश्वास, धृणा तथा द्वेष ले लेता है। राजनाथ, तारानाथ और नीला, विमल को हत्यारा और विश्वासघाती मानते हुए गालियाँ देने लगते हैं। चाँद के सम्बन्ध को लेकर सभी नाराज होते हैं। चाँद का सहपाठी मुकर्जी भी नाराज हो जाता है। अतः विमल दुर्गादास के परिवार का विश्वास पाने के लिए अपने ऊपर गोविन्द की हत्या का आरोप झेलने को राजी हो जाता है। इस तरह वह धर्म, प्रेम और अपराध जैसी तर्कातीत वृत्तियों में बँधी हुई जिन्दगी जी रहा था। इस अव्यवस्थित उलझाव से जूझते हुए वह बम्बई चला जाता।

५.२.६ ‘सीमाएँ टूटती हैं’ उपन्यास के प्रधान स्त्री पात्र

चाँद- चाँद दुर्गादास की इकलौती कन्या थी। वह कैमिट्री शोध-छात्रा थी। उसकी उम्र तेईस वर्ष की थी। वह अपने से दुगुने उम्र के और पिता के मित्र विमल से प्रेम करती थी। विमल के साथ वह मथुरा पिकनिक पर भी जाती है। चाँद का सहपाठी हम उम्र मुकर्जी उससे प्रेम करना चाहता था, पर उसे वह इन्कार कर देती है। वह मुकर्जी से कहती है कि हम वैज्ञानिक हैं, प्रेम के झेमेलों में अपना समय बरबाद नहीं करना है।

चाँद जब पिकनिक के लिए मसूरी जाती है, तो वहाँ एक समाजशास्त्र के प्रोफेसर से उसका परिचय होता है। उनके साथ दार्शनिक बातें

होती हैं। वे दोनों फ्रांस में विद्यार्थियों का आक्रोश, भारत की जनजातियाँ, जापान की औद्योगिक प्रगति, समाजवादी देशों की नारियाँ आदि विषयों पर चर्चा करते हैं। चाँद खुद को यथार्थवादी मानती थी।

मसूरी में विमल भी आने वाला था, लेकिन वह न आने के कारण चाँद जल्दी दिल्ली वापस आती है। वह जब देखती है कि परिवार वाले विमल को पिता का दुश्मन और असली हत्यारा करार देते हैं तब चाँद उनका विरोध करके विमल की भलमनसाहत का वर्णन करती है। अंत में वह बंगलौर जाना चाहती है, वहाँ एक इंस्टीट्यूट में रिसर्च ऑफिसर की जगह का इंटरव्यू था।

५.२.१० ‘मकान’ उपन्यास के प्रधान पुरुष पात्र

नारायण बैनर्जी- नारायण बैनर्जी ‘मकान’ उपन्यास का प्रधान पात्र है। नारायण एक प्रसिद्ध सितार वादक था। वह नगर-निगम के कार्यालय में असिस्टेंट एकाउंटेंट था। उसकी उम्र पैंतालीस साल की थी। उसने अंग्रेजी, संस्कृत और भूगोल में बी.ए. किया था। उसके पिता निलमणि बैनर्जी छब्बीस वर्ष पहले स्वर्गवासी हुए थे।

नारायण दिल्ली से लौटकर अपनी जगह वापस आया था, पर अनेक महीने गुजरने पर भी उसे अभी तक मकान नहीं मिला था। उसके बीबी-बच्चे-सब दिल्ली में रहते थे, पत्नी बीमार थी। इधर नारायण की हालत का चित्रण इस प्रकार है “यह पैंतालीस साल के आदमी का चुचका हुआ चेहरा था, जो पुत्री-पुत्र कलत्र, भाग्य-भावना-भगवान तथा कला-कामिनी-कादम्ब के झमेले में कभी रामकृष्ण परमहंस की कोटि में पाता है।”^{१२} उसे मकान न मिलने के कारण वह एक होटल में रहता था। वह होटल भी कोई अशोका या ओबेरोय-शेर्टन नहीं, बल्कि साधारण थी। उसे जीवन में सितारवादन पर मुग्ध होकर तीन प्रेमिकाएँ मिली थी। नारायण श्यामा का ट्यूशन लेकर साठ रुपये महीना कमाता था। वह संगीतकार होने के बावजूद स्वाधीनता के बाद का एक टिपीकल मध्यमवर्गीय चरित्र है। राजेश जोशी के अनुसार “आजादी के युग के रोमान का लगता है, एक अंतिम चिथड़ा इसकी भी जेब में रखा है। इसमें अंह,

आत्मस्वाभिमान और कलाकार वाला भी है, जो कभी-कभी दिखता है। शराब के नशे में वह अक्सर बाहर आता है। एक दमित व्यक्तित्व। सारे शहर को अपना ही घर कहने और एक साधारण से लड़के को लेकर पांच सितार होटल में शराब पीने जाने वाला चरित्र, आमतौर पर प्रकट नहीं होता। सामान्य रूप से तो एक औसत व्यावहारिक मध्यमवर्गीय चरित्र ही सामने बना रहता है।”^{१३}

नारायण सोचता है कि शरीर इस समय दिलासलाई और आतिशबाजी की मिलीजुली दुकान बनाने में अनेक तत्वों का हाथ है। पहला तत्व श्यामा है, दूसरा रम का पौवा है, तीसरा यह मकान है, चौथा इतने दिनों बाद, इतने पास से पायी गयी नारी के प्रसाधनों की सुगन्ध है और पाचवां तत्व इसी कमरे में श्यामा जो देह में नहीं, मन में रह रहकर कचोटती है।

नारायण की मकान के अभाव में दुर्गति हो रही थी। बीबी-बच्चों से दूर, सितार को कमरे के कोने में धूल और मकड़ियों के हवाले करके इस समय अफसर से मकान के लिए बराबर मिलते रहना उसके लिए और भी आवश्यक हो गया था। इसी से वह अपने वर्तमान की निरर्थकता की चुनौती दे सकता था। लेकिन अफसर से कोई काम करा लेना बैल दूहने जैसा था। नारायण संगीत कलाकार होने के कारण वह संगीत कला के बहाने औरत का शोषण करता था। वह कलाकार कम, लम्पट ज्यादा लगता है। उसकी व्यावहारिक बुद्धि, उसका लालच, दारुखोरी और कामुकता उसके कलाकार को बड़ा नहीं बनने देते।

एक दिन नारायण प्रिंस होटल में व्हिस्की पीने जाता है तो वहाँ उसके अफसर मिलते हैं, वे उसे जानकारी देते हैं कि उसे मकान ऐस्पानगर में एलर्टि कर दिया है। नारायण मकान पा कर दोस्तों के साथ खुशियाँ मनाता है। उसके बाद उसके जीवन में बदलाव आया, उसने भरे बाजार में आवारागर्दी करते हुए अफसरों से घिरी दुनिया में अपने बचाव की जरूरत को जैसा अनुभव किया, वैसा पहले कभी नहीं किया था। यहीं से उसने एक नये संकल्प का आरंभ किया। इसी समय दिल्ली से बड़ा लड़का पिंटू आ जाता है, उसकी रहने

की व्यवस्था स्वामाजी के आश्रम में करता है। वह स्वयं सिम्मी के मुहल्ले में चला जाता है। वहाँ कुछ गुडों द्वारा नारायण की हत्या हो जाती है।

अतः उपन्यास का प्रधान पात्र नारायण आजादी के बाद की उस पीढ़ी का प्रतीक है जो सपने देखने जाली, महत्वाकांक्षी, पीढ़ी है।

५.२.११ 'मकान' उपन्यास के प्रधान स्त्री पात्र

सिम्मी- सिम्मी एक वेश्या कन्या थी। वह दुबली-पतली, सांवले रंग की थी। उसके बाल काले और खूब घने थे। उसकी प्रिय सहेली श्यामा थी। सिम्मी संगीत महाविद्यालय के चौथे साल में पढ़ाती थी। उसका भाई इंजीनियर था। वह पहले उसके साथ रहता था, अब वह कहीं बदली होकर दूसरे गाँव गया था।

सिम्मी का परिचय नारायण से श्यामा ने कर दिया था। आगे चलकर सिम्मी और नारायण के संगीत शिष्या के साथ शारीरिक सम्बन्ध भी बढ़ गये थे। लेकिन वह खुद को नारायण के काबिल नहीं मानती थी। उसके यहाँ नारायण अक्सर आया करता था। वह नारायण के साथ सिनेमा देखने भी जाती थी। उसे सहेली श्यामा की मौत की खबर सुनकर गहरा दुःख होता है।

'मकान' उपन्यास का प्रधान स्त्री पात्र सिम्मी शहर के गुलगपाड़े मुहल्ले में अकेली रहती थी। अन्वर मिया उसके सरपरस्त और मेहरबान थे। वे नहर और पी.डबल्यू.डी. में बड़े-बड़े ठेके लेते थे। अन्वर मियाँ चाहते थे कि इस साल म्यूजिक का डिप्लोमा मिल जाय तो उसे अगले साल से वे रिफाए गर्ल्स कॉलेज में म्यूजिक टीचर लगवा देंगे। उन्हें यह मुहल्ला अच्छा नहीं लगता था। लेकिन उनके कारण मुहल्ले के लोग डरते थे, सिम्मी की और कोई भी आँख उठाकर नहीं देख सकता था। इस योजना के अनुसार सिम्मी संगीत का डिप्लोमा लेकर लड़कियों के स्थानीय कोलेज में छोटी कक्षाओं को संगीत सीखाने लगी थी। उसी कालेज में उसने नारायण का स्मृति-दिवस भी मनाया था।

५.२.१२ ‘पहला पड़ाव’ उपन्यास के प्रधान पुरुष पात्र

संतोषकुमार- संतोषकुमार ‘पहला पड़ाव’ उपन्यास का आधार है। उसने एम.ए. (राजनीतिशास्त्र) तक शिक्षा पायी थी। वह अब लखनऊ के स्थानीय कॉलेज में एल.एल.बी. कर रहा है। इसी के साथ वह नगर-निगम आवास योजना के भवन-निर्माण योजना के ठेकेदार परमात्मा के यहाँ मुंशी उर्फ सुपरवाइजर का काम करता था। कई बार वह अपनी पढ़ाई को लेकर कहता है- “कानून की पढ़ाई मेरे लिए अब पेट पालने की मजबूरी नहीं, एक लौह जाल तोड़ने की तैयारी होगी।”^{१४} वह पात्र आज के बेरोजगार पढ़े-लिखे भारतीय युवको का प्रतिनिधित्व करता है। यह निम्न मध्यमवर्गीय परिवार का युवक स्वयं को विभिन्न वर्ग समूहों के बीच घिरा पाता है।

संतोषकुमार के चरित्र का उद्घाटन नेता दंपति और दूसरे मुसाफिरों का लूटने वाली युवाशक्ति के माध्यम से हुआ है। वह पिछले साल तल रेल का डेली पैसेंजर रहा था। उनका एक संगठन भी था। वह उसकी कार्यकारिणी का दो साल तक उपाध्यक्ष रह चुका था। उसे मालूम था कि लूटमार करनेवाली हरचरण एंड कंपनी ही होगी। मेंडूराम उर्फ नेता दम्पति को आश्वासन देता है कि लुटेरों का पता मैं लगाऊंगा। वह परमात्माजी के मकान पर काम कर रहा था। परमात्माजी की ससुराल उसके गाँव की ही थी। उनकी पत्नी संतोषकुमार की सहेली थी। अतः वह परमात्मा जी को जीजा जी कहती थी। संतोष परमात्मा जी के यहाँ मुंशी होकर भी मजदूरों का हमदर्द था। उसके अधीन भंडार-नियंत्रण, कार्मिक खंड, वित्तीय प्रबंध आदि अनुभाग थे। मकान के सामान की खरीददारी करने मजदूर मंडी जाना, परमात्मा जी को चौराहे से पान-तम्बाकू ला देना, इस तरह के वह घरेलू कामकाज भी करता था। वह भविष्य के सपने देखता था कि सूनी सड़क या गाँव का हरा-भरा ऊबड़-खाबड़ रास्ता और सबसे ऊपर वह खुद। वकील होने का उसका सपना था कि “मैं बहस कर रहा हूँ और जज ही नहीं, कई सीनियर वकील भी पीछे की सीट पर बैठकर मेरी बहस बड़े सम्मान और उत्सुकता के साथ सुन रहे हैं।”^{१५} इसकी जिन्दगी की यह पहली राह है अथवा संतोष की अबतक की आपाधापी और

कशमकश के बाद शुरु होने वाली उसकी जीवनयात्रा का यह पहला पड़ाव है, जहाँ दिवास्वप्नों के लिए भी कोई जगह नहीं है। संतोष यह जिन्दगी भी अपने लिए नहीं जीना चाहता, उन सबके लिए, जो मजदूर और दयनीय है, स्थितियों के दुष्चक्र में फंसे छटपटा रहे हैं, या तो इतने हत चेतन हैं कि उसे अपनी नियति मान बैठे हैं। यह संतोष की यात्रा के पहले पड़ाव का अनुभवों से उपजा आत्मचिन्तन था।

संतोषकुमार के गाँव में परिवार की समस्या अलग थी। एक ज्योतिष ने माँ को समझा दिया था कि अगले साल माँ का मृत्यु-योग है। अतः माँ मरने से पहले छोटे पुत्र संतोष की बहू और पोते का मुँह देखना चाहती थी। माँ इसी साल विवाह का मोर-मुकूट बंधवाना चाहती थी, इधर संतोष की एल.एल.बी. प्राक्सी से चल रही थी। वह सिर्फ इम्तहान देने जाता था। उसके साथ उसका पुराना दोस्त प्रेमवल्लभ भी एल.एल.बी. कर रहा था। वे दोनों “उत्तर प्रदेश दैनिक मजदूर संघ” का गठन करते हैं। संतोष इसका महासचिव बनता है।

जब मजदूर मेंडूराम उर्फ नेता की हत्या होती है, तो उसकी हत्या का कोई सबूत नहीं है। जिसने कुछ देखा था और जो कुछ-कह सकता था, वह बाल मजदूर गूंगा था। नेता की पत्नी जसोदा को संतोष कुछ रूपयों की मदद देता है, और हत्या का बदला लेने का आश्वासन देता है। वह परमात्मा जी की नौकरी भी छोड़ देता है, विधवा जसोदा तथा सुरेश को अपने गाँव पहुँचाता है। उसके पिता के पास आज पंद्रह बीघा घटिया जमीन और आधे बीघे में घर बसा हुआ था।

वह परमात्मा जी की पत्नी सावित्री के अनुरोध पर आधा बीघा जमीन शहर में चार हजार रुपये में खरीद लेता है। वह नौकरी के लिए प्रयत्न करता रहता था। आज से चार साल पहले उसको सहायक खाद्य निरीक्षक के पद के लिए इंटरव्यू में बुलाया था। पर न घुस न ऊँची सिफारिश होने के कारण इंटरव्यू में फेल हो जाता है। पिछले कोअर्पिरेटिव बैंक के क्लर्क की हैसियत की नौकरी करेगा। पर घर की चिताएँ, दो-तीन-महीने बाद होने

वाली कानून की परीक्षाएँ, लगभग खाली जेब, मजदूर यूनियन के झमेले, खास तौर से प्रेमवल्लभ की जंजाल -भरी दोस्ती और जसोदा की चिंता उसी के साथ रघुनाथ जो हरी ट्रैकर का मुटल्ला मालिक था, नेता की हत्या का उस पर संदेहपूर्ण आरोप था। इस प्रकार नेता के हत्यारे को खोजना चाहता था आदि उलझनों से संतोष घिर गया था। वह न्याय पाने के लिए इंजीनियर साहब को नीचा दिखाना चाहता था। परमात्मा जी को खींचकर अपने मजदूर यूनियन में लाना चाहता था।

उसी समय निर्माण-निगम के श्रीवास्तव साहब ने एक आदमी भेजकर संतोष को यूनियन छोड़ने के लिए धमकाता है। दोनों में हाथापाई होती है, विधवा मजदूरनी जसोदा संतोष को बचाती है तब संतोष कहता है - 'झांसी-की रानी की कलाइयाँ ऐसी ही रही होगी।' ^{१६} वह महसूस करने लगा कि अब सतर्क काम करना होगा। यही उसका चिरंतन मैदान था। उसके ठेकेदार ने दो-चार मकान बनवाये थे, वही रह रहा था।

संतोष ने मेंडूराम के हत्यारे की खोज के आशय को लेकर उसने यूनियन बनायी थी लेकिन हत्या करने वाला रघुनाथ किसी दूर्घटना में धायल होकर अब अस्पताल में दम तोड़ रहा था। इसके बाद वह लाल बाबू के कहने पर अपनी यूनियन श्रीवास्तव की यूनियन में सिम्मिलित कर देता है और स्वयं एल.एल.बी. का अध्ययन करने लगता है। वह महीनो बाद कानून की कक्षा में हाजिर था, पर प्राध्यापक गैर-हाजिर थे। परीक्षा की नकल और प्राप्ति से ऊब कर वह अब पढ़ना चाहता था। यही उसका मुकद्दर था। वह स्कूटर चलाना भी सीखता है। उसने सोचा उसके सारे दिवास्वप्न पीछे छूट रहे हैं। वह आज़ाद है, ठोस जमीन पर पांव टिकाकर कानून की पढ़ाई उसके लिए अब पेट पालने की मजबूरी नहीं, एक लौहजाल तोड़ने की तैयारी साबित होगी। इस प्रकार संतोष अपने पैरों पर खड़े होना चाहता था। जीवन के कठोर, कटु अनुभवों ने उसकी सोच, कर्म में बदलाव लाया था।

अतः उपन्यास में शोषण, अपराध तंत्र का आयाम धन कमाने के हथकंडे, हत्या और लूट, इन सब के अभेद रहस्यों के उद्घाटन है।

संतोष मानो इस अंधेरी दुनिया में सेंध लगा रहा है। उसके संगठन, क्रान्ति, आंदोलन महज शब्द प्रतीत होते थे। उनका खोखलापन बेरोजगारों का व्यसन बन जाता है। उपन्यास के अंत में अधिक बड़े संघर्ष की दिशा में पहल का एक प्रस्ताव है - हारे थके मन का एक नया संकल्प है।

५.२.१३ 'पहला पड़ाव' उपन्यास के प्रधान स्त्री पात्र

जसोदा उर्फ मेमसाहब- जसोदा का चरित्र बहुत सजीव चरित्र है। “रोजी रोटी की तलाश में अपने गाँव घर को छोड़, सैंकड़ों मील दूर शहर में आयी यह युवती मजूरिन नये परिवेश, साथी मजूरों, ठेकेदार, इंजीनियर, सेठों तथा अपने तमाम छद्म शुभचिन्तकों की घेरेबंदी में अपनी प्रकृत और बुनियादी ताकत के बल पर, पति की हत्या के बावजूद उससे बेखबर अपने को सहेजती हुई, अपने नवजात शिशु को लेकर अंततः अपने ही दुनिया जहान के नरक में नयी चुनौतियाँ झलने के लिए वापस लौट जाती है। “इंट, पत्थर और कंक्रीट के संवेदनशून्य परिवेश में जसोदा एक हरियाली की तरह जहाँ तहाँ झलकती है।”^{१७}

जसोदा मेंडूराम उर्फ नेता की पत्नी थी। जो बिलासपुर से उसके साथ मजदूरी करने आयी थी। वह अपने पति के साथ रोजी-रोटी के तलाश में सैंकड़ों मील दूर शहर में आयी थी। शहर में मजदूरी करते हुए उसके पति की हत्या हो जाती है। पति के हत्या का उस पर गहरा सद्मा पहुँचता है। जसोदा के प्रति मुंशी संतोष विशेष सहानुभूति रखता था। वह उसका सौन्दर्य देखकर उसके प्रति आकर्षित होता है। उसे पति की हत्या का बदला लेने का आश्वासन भी देता है। इस ग्रामीण स्त्री का सौन्दर्य देखकर वह उसका मेमसाहब नाम रखता है।

संतोष का दोस्त प्रेमवल्लभ भी उस पर जबरदस्ती करता है। वह उसके विधवापन का, असहायता का लाभ उठाना चाहता था। अंत में वह इन सब झंझटों में बचने के लिए अपने बेटे को लेकर देवर धन्ना के साथ शंकरगढ़ चली जाती है।

उपन्यास में इस गरीब स्त्री का शारीरिक, आर्थिक शोषण होता है, वह असहायता, निराधारता का प्रतीक है। उसमें स्त्रीत्व की ममता भरी क्षमाशीलता, साहस और उदारता भी भरपूर है।

५.२.१४ 'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास के प्रधान पुरुष पात्र

कुँवर जयंतिप्रसादसिंह - कुँवर जयंतिप्रसादसिंह एक राज्य के महामहिम राज्यपाल थे। यह सामंत वर्ग के प्रतिनिधि थे। वे स्वभाव से ही और संसाधनों से भी क्रूर शिकार करते थे। वे सबकुछ एक साथ पाना चाहते थे। उनमें कामाशक्ति से उपजा सौन्दर्य प्रेम था। राजनीतिक लाभ, सुविधाएँ, सुरक्षा, कीर्ति, यश मिलने पर भी उसकी अतृप्तियाँ बेशुमार थीं। महामहिम होकर भी उन्हें जनता की चिंता के बजाय राजभवन के पर्दों के रंगों की चिंता होती है। वे संकीर्ण खयालों के थे। उनके पूर्व के राज्यपाल दलित थे। इसलिए कुँवर जयंतिप्रसाद राजभवन के सोफे, गद्दे बदलकर और राजभवन का गंगाजल छिड़ककर शुद्ध पवित्र बनाते हैं। “वह स्वाभाविक रूप से अपनी कमजोरियों और खूबियों के साथ उभरने वाले चरित्र हैं।”^{१५}

जिस समय राजभवन के दीवानखाने में राज्य के मुख्यमंत्री उनसे मिलने का इंतजार कर रहे थे, वे खुद अपने शयनकक्ष में अर्द्धनिद्रा में सुन्दरी से रतिक्रीड़ा का एक सपना देख रहे थे। पर उनका शरीर थक चुका था और कामोत्तेजक स्वप्नों को दुहरा-दुहरा कर देखना उन्हें और भी थकान दे रहा था। वे खुद की बुढ़ापे की शक्ल देखकर डर जाते हैं। उन्हें बुढ़ापा पसंद नहीं था। उनकी त्रासदी यह है कि अस्सी साल की उम्र में भी उनके सपने में जयश्री, सुंदरी का शरीर आता था।

कुँवर जयंतिप्रसाद विद्यार्थी जीवन में वे अपने पिता के मित्र की बहू जयश्री से प्रेम करते थे। जयश्री का सिग्नल मिलते ही उससे सहवास की तरकीबें ढूँढने लगते थे, जिसमें वे भलीभाँति सफल हो जाते थे। इसी कारण बी.ए.में उन्हें प्रथम कक्षा प्राप्त नहीं हो पायी थी। उन्होंने विलायत जाकर बैरिस्टरी पढ़ी थी और अंग्रेजी की अनुशासन-प्रियता की कथाएँ या दंत कथाएँ उनके जीवन दर्शन की मूलाधार बनी हुई थी।

कुँवर जयंतिप्रसाद बाद में बिस्रामपुर में सर्वोदय आंदोलन में शरीफ हुए। इसी दौरान सर्वोदय की कार्यकर्ता सुन्दरी की और आकर्षित हुए थे। सुन्दरी उनकी उम्र से तीस साल छोटी तथा उनके बेटे विवेक की दोस्त थी। कुँवर साहब सुन्दरी के प्रति कामासक्त होकर उससे विवाह का प्रस्ताव रखते हैं। सुन्दरी उनके विवाह प्रस्ताव को अस्वीकार करते हैं। इस तरह उनके लिए प्रेम और विवाह सिर्फ शरीर को प्राप्त करने का सुगम रास्ता था इस सोच को वे भारी जवानी से लेकर बुढ़ापे तक नहीं बदल पाये।

कुँवर जयंतिप्रसाद का गवर्नरी का दौर खत्म होकर वे अपने पुराने नौकर धीरजसिंह को लेकर बिस्रामपुर चले जाते हैं। उनकी भूदान आंदोलन में बहुत पहले से आस्था थी। बिस्रामपुर का आश्रम उसीका जीता-जागता प्रतीक था। वे बिस्रामपुर चले जाते हैं। बिस्रामपुर का आश्रम अब राजभवन में परिवर्तित होने जा रहा था। वे बिस्रामपुर के संत-सा जीवन जी रहे थे। वह जीवन जीते-जीते जब सुन्दरी कांड की जानकारी सुशीला के माध्यम से बेटा विवेक को मिलती है, तब सच तो स्वीकार करने का साहस उनमें नहीं बचता, परिणामस्वरूप उन्हें बेतवा नदी में जीवन-लीला समाप्त करनी पड़ती हैं। यहाँ अनैतिकता आत्महत्या का कारण नहीं है, वे खुद अपनी नजरों में गिर गए थे। डॉ. अरविन्द त्रिपाठी के अनुसार- “पर बिस्रामपुर के इस कलयुग-संत में ऐसी कौन-सी आत्महंता कामना आ गयी जो जीते जी नहीं मिल सकी। गांधी, नेहरू और लोहिया की पीढ़ी को छोड़कर इस देश में कोई राजनेता पैदा नहीं हुआ है, जिनमें आत्मसाक्षात्कार की ताकात हो। रिग्रेट या ‘कनफेशन’ कर पाने की मानसिक बनावट हो। यहां तो सब के सब बिस्रामपुर के संत बने बैठे, पर कोई आत्महत्या नहीं करता।”^{१९}

‘बिस्रामपुर का संत’ उपन्यास में जयंतिप्रसाद का चरित्र एक सुविधा परस्त विलासी इन्सान के रूप में प्रस्तुत है। यह चरित्र स्व केन्द्रित है। जयंतिप्रसाद हालातों से मुकाबला नहीं कर सकते। उनमें प्रत्येक घटिया बात को ऊंचा रूप देने की असत्यता थी। वे कामलोलूष, डरपोक, अनैतिक चरित्र के व्यक्ति थे।

५.२.१५ 'बिस्रामपुर के संत' उपन्यास के प्रधान स्त्री पात्र

सुंदरी- सुंदरी उपन्यास का अधिक लागावी और बुद्धिवादी चरित्र है। वह एक लम्बी, छरहरी लड़की थी। वह भूदान आंदोलन की एक समर्पित कार्यकर्ता थी। उसने सर्वोदय आंदोलन के संकल्पों के अनुसार एक आश्रम आरंभ किया था। उसमें ग्रामोद्योग, माध्यमिक विद्यालय, नारीकल्याण का शिल्प प्रशिक्षण केन्द्र तथा बाल विहार स्थापित किया था। बाल विहार में गरीब और अनाथ बच्चों के रहने और शिक्षा का प्रबंध था।

सर्वोदय आंदोलन के प्रारंभ में सुन्दरी का परिचय कुँवर जयंतिप्रसाद तथा उनके पुत्र विवेक से हुआ था। वह विवेक से प्रेम करती थी, किन्तु सुंदरी का अकाल निधन होने के कारण दोनों का विवाह नहीं हो सका।

सुंदरी ने बिस्रामपुर में अपनी जीवन के उन्तीस साल बिताए थे। उसे विज्ञापनबाजी पसंद नहीं थी। वह कहती- “व्यक्ति कुछ नहीं होता, संस्था उससे बड़ी होती है और संस्था से भी बड़ा होता उसका अंतर्निहित सिद्धान्त”^{२०} वह तत्त्वनिष्ठ ईमानदार समाज सेविका थी। बिस्रामपुर में उसकी टिप्पणीयों का एक संग्रह था। उनमें से कुछ टिप्पणीयों को विवेक ने प्रकाशित किया था। सुंदरी के इस पात्र के संदर्भ में अरविन्द त्रिपाठी जी कहते हैं- “उसकी मृत्यु में भूदान आन्दोलन की त्रासदी समाहित है। कहना चाहिए कि सुंदरी आज के गिरे हुए समाज में नैतिकता और कर्तव्यनिष्ठा की जलती हुई दीपशिखा है, जो स्वयं को बुझाकर औरों को रोशनी करती है।”^{२१} यही अभिमत सुंदरी के व्यक्तित्व का यथार्थ मूल्यांकन है।

५.३ शुक्ल जी की औपन्यासिक सृष्टि के गौण पात्र

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों के गौण पात्र को देखे तो उनकी संख्या काफी है। जैसे-कि पहला उपन्यास ‘सूनी घाटी का सूरज’ को देखे तो उसमें रामनाथसिंह, रामनारायण, मुंशीजी, ठाकुर छोटूंसिंह, अमजदअली, मुंशी नवरतनलाल, बाबू मुसदीलाल, दीन दयाल, सोहन सिंह, वैद्य धरणीधर, बाबू रामरतन, महाराजा, ठाकुर अम्बिकेशसिंह, रामदास, सुरेन्द्रप्रताप, श्याममोहन

अग्रवाल, ठाकुर राजेश्वरसिंह, राजधर, रामानुज चटर्जी, छोटी ठकुराइन, फुला काकी, बेबी आदि सहायक पात्र हैं।

‘अज्ञातवास’ उपन्यास के गौण पात्र को देखे तो उसमें विनायक, देवीदत्त ओवरसियर, रामलाल, बनवारी अहीर, वसंत का लड़का, रानी, डॉ. सीमादत्त आदि।

‘राग दरबारी’ में वैद्यजी, बट्टी पहलवान, रूपन बाबू, पिसिपल, सनीचर, छोटू पहलवान, राधेलाल, गयादीन, लंगड, जोगनाथ, मास्टर मोतीराम, रामाधीन, खन्ना मास्टर, मालवीय, बेला, बूआ आदि।

‘आदमी का जहर’ उपन्यास में हरिश्चन्द्र, अजीतसिंह, बादशाह, पुलिस इंस्पेक्टर, सिद्धकी, विद्यानाथ सिन्हा, शांतिप्रकाश, जसवंत, मिस लायल, जरीना, रत्ना, वीणा गहलौत, मलिना उर्फ मालती आदि।

‘सीमाएँ टूटती हैं’ उपन्यास में राजनाथ मलहोत्रा, तारानाथ मलहोत्रा, शंकर, मुकर्जी, डॉ. फड़के, प्रोफेसर, दुर्गादास मलहोत्रा, नीला, जूली आदि।

‘मकान’ उपन्यास में सिटी एडमिनिस्ट्रेट, बारीन हलदार, स्वामी शांतानंद महाराज, सेठजी, इरशाद, पिटू, श्यामा, मिसेज हलदार, चित्रा, मिनाक्षी आदि।

‘पहला पड़ाव’ उपन्यास में परमात्मा जी, मेंडूराम उर्फ नेता इंजीनियर, प्रेमवल्लभ, सुरेस, मिस्त्री, संतोष के बड़े भाई, संजीवन भाई, दारागो, कुँवर साहब, रघुनाथ, सावित्री आदि।

‘बिस्रामपुर का संत’ उपन्यास में विवेक, धीरजसिंह, राव साहब, राजा साहब, रेड्डी साहब, निर्मल भाई, प्रभास भाई, रामलोटन, मंत्रीजी, दुबे महाराज, जयश्री, सुशीला बेन, केतकी आदि।

५.३.१ ‘सूनी घाटी का सूरज’ उपन्यास के गौण पात्र

(१) रामनाथसिंह-

रामनाथसिंह उपन्यास का प्रधानपात्र रामदास के पिता हैं। वह ठाकुर के यहाँ बंधुआ मजदूर का काम करते थे। ठाकुर, उसका परिवार

और रामदास इन्हें 'काका' कहते थे। रामनाथसिंह उपन्यास में सामान्य किसान वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। उपन्यासकार दिखाना चाहते हैं कि आजादी मिलने के बाद भी भारतीय सामान्य किसान की स्थिति कितनी बदतर है। वह किसान से मजदूर और मजदूर से किस प्रकार सर्वहारा बन जाते हैं।

(२) ठाकुर छोटूंसिंह-

यह पात्र महाजान वर्ग का है। स्वाधीनता के बाद भी महाजनी व्यवस्था बरकरार है। उसे ठाकुर छोटूंसिंह के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उनका चरित्र चित्रण अल्प होते हुए भी अपना एक अलग प्रभाव छोड़ जाता है। ठाकुर छोटूंसिंह किसानों को ऋण देता है, उनके अज्ञान का, अशिक्षा का लाभ उठाता है। किसानों को मजदूर बनाकर आजीवन उनका शोषण करना यह प्रवृत्ति ठाकुर में दिखाई देती है। शराब पीना इनकी ऐय्याशी है। लेकिन किसी गरीब को कभी मदद की हो या मदद चाहता हो तो ताना देकर उसे अपमानित करना वे अपना अधिकार समझते हैं। जैसे- “यह टुकड़खोर फीस के पैसे माँगता है ? उसके बाप ने कमाकर दिया था ? इन सालों पर हजारों रुपये गँवा दिये। अब यह भी छाती पर मूँग दलने बैठा हुआ है। बेटा भैंस न चराएंगे। पढ़ेंगे और बालिस्टरी करेंगे। हमी एक गधे है जो इनके बाप का बोझ ढोएंगे।”^{२२} गरीबों के शोषण के बारे में वह कहता है। “जिस आदमी का नाम भगवान के नाम पर होता है, उसे जूते खाने पड़ते हैं। भगवान बदला लेता है।”^{२३} यह पात्र शोषक व्यवस्था का पूंजीपति चरित्र को प्रस्तुत करता है।

(३) रामनारायण-

रामनारायण उर्फ रमन्ना रामचरण का लड़का था। उसके पिता को चोरी करने की आदत थी। रामनारायण, रामदास का सहपाठी तथा कक्षा में सबसे बड़ा होने के कारण अन्य छात्रों को पिटता था। एक दिन पंडित जी के डांटने के बाद स्कूल की शिक्षा छोड़ देता है और गाँव में रहकर दूसरों के जानवर चराता है। कुछ दिन बाद शहर जाकर एक होटल में बर्तन मांजने लगता है। फिर स्टेशन के बाहर कुली बन जाता है।

इस तरह गाँव के अधिकतर बालकों को उचित संस्कार, परिवेश न मिलने के कारण वे अपनी गरीबी और अभावों से ऊबर नहीं पाते, उसे ढोने के लिए अभिशप्त हो जाते हैं।

(४) अमजदअली-

यह पात्र रामदास की कक्षा में पढ़ने वाला अच्छे छात्र के रूप में उपन्यास में उपस्थित होता है। कभी-कभी पढ़ने में रामदास का स्थान पहला, तो अमजदअली का दूसरा। यह पहला-दूसरा स्थान एक दूसरे में ही परिवर्तित होता था। रामदास और अमजदअली में धनी मित्रता थी। वह रामदास को हर समय सहयोग देने के लिए तत्पर रहता था। अमजदअली का गणित विषय अच्छा था, हिन्दी कमजोर थी। वह हिन्दी कम जानता था। वह रामदास को गणित पढ़ाता और रामदास इसे हिन्दी। स्कूल में भी समय-समय पर वह रामदास की सहायता करता था। उसे प्रेरणा देता था।

इस चरित्र के माध्यम से लेखक झूठे धर्म और जातिभेदों को तोड़कर रख देता है। धर्म और जाति से परे मन की विशालता और मानवतापूर्ण स्नेह पर आधारित सच्ची मित्रता, आत्मीयता को अमजदअली के द्वारा लेखक ने उद्घाटित किया है।

(५) पंडित जी-

पंडित जी रामदास के गाँव की पाठशाला में पंडित थे। पंडित जी विधुर थे। उनके यहाँ लछमिया कोरिन नाम की एक स्त्री गोबर के कंडे पाथने के लिए आती थी। कुछ दिन बाद पता चला कि उसके पेट का बच्चा पंडित का है। उसके बाद गाँव के बाँभनों एवं कोरियों में तनातनी हो गयी। एक दिन पंडित जी गाँव से गायब हो गये। कोई कहता वे तीर्थयात्री बने और बट्टीधाम में उनकी मृत्यु हो गई। कोई कहता था कि उन्होंने अयोध्या के किसी महंत के यहाँ ड्योढ़ीगीरी कर ली है।

पंडित जी के द्वारा लेखक स्पष्ट करते हैं कि गाँवों में नैतिकता के नियम और जाति की दीवारें सख्त होती हैं। व्यभिचार वहाँ किसी

स्थिति में स्वीकार्य नहीं है, उसी प्रकार दो भिन्न जातियों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध का भी वे घोर निषेध करते हैं।

(६) मुंशी नवरतनलाल-

मुंशी नवरतनलाल स्कूल के हेडमास्टर थे। उन्होंने रामदास को ठाकुर के चंगुल से निकालकर अपने घर शरण दी थी और कहा था- “तुम्हारा मन हो तो तुम मेरे यहाँ रहकर पढ़ो। घर के लड़के की तरह काम करो, खाओ-पिओ और पढ़ो लिखो।”^{२४}

मुंशी जी में अपने पिता अमीन साहब के प्रति अटूट आस्था थी। उनके विरोध में एक शब्द भी कभी नहीं कहते थे। रामदास जब परीक्षा में फेल होने का कारण बताता है, तब उसे चरवाहों का, अपने से गरीब लोगों का दृष्टांत देकर समझाते हैं कि जीवन में आगे बढ़ने के लिए हर समय संघर्ष झेलने पड़ते हैं। रामदास जब प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होता है, तो उसे कानपुर जाकर अंग्रेजी पढ़ने का अनुरोध करके उसकी यथासंभव सहायता करते हैं।

अतः एक आदर्श शिक्षक के रूप में यह पात्र चित्रित हैं, जो विद्या दान के साथ गरीब छात्रों की मदद भी करता है।

(७) दीनदयाल-

यह छतरपुर का रहने वाला, पचास साल का दीन-हीन किसान था। लंबा बदन, पर बहुत दुबला, हड्डी का मजबूत, पर गाल पिचके हुए। ठूड़ी पर बड़ी हुई दाढ़ी यह उसका हुलिया था। माथे झुर्रियाँ और आँखें गढ़े में थी पर कभी-कभी जब वह उत्साह से बात करता तो वे चमकने लगती। उसके चलने में हमेशा फुर्ती पाई जाती। उसे देखकर किसी भूखे और बूढ़े चीते का ध्यान रामदास को आता था। अपने खाने के साथ ही वह रामदास के लिए खाना बना लिया करता था। रामदास और वह एक ही तंबू में रहते थे।

दीनदयाल ईमानदार और मेहनती था लेकिन भ्रष्टाचारी ठेकेदार को इन गुणों से कोई लेना-देना नहीं था। वह दीनदयाल पर अत्याचार करता था। इस तरह दीनदयाल ठेकेदारों के यहाँ काम करने वाले शोषित, दरिद्र मजदूरों का प्रतिनिधित्व करता है।

(८) बाबू रामरतन-

ये गंगापुर रियासत की कोठी की देखभाल करते थे। इन्होंने मुंशी नवरतन की चिट्ठी लेकर आये रामदास के निवास का प्रबंध किया था। कुछ दिन बाद महाराज कोठी बेच देते हैं, तब बाबू रामरतन कानपुर छोड़ गंगापुर चले जाते हैं। यह पात्र एक सद्पात्र के रूप में उपन्यास में उपस्थित है और रामदास की जीवन कथा को आगे बढ़ाने में सहायक है।

(९) ठाकुर अम्बिकेशसिंह-

ठाकुर अम्बिकेशसिंह कानपुर में स्कूल हेडमास्टर थे। ठाकुर हमेशा जोधपुरी कोट पहनते थे। मुँछे बड़ी-बड़ी और ऊपर की और उमेठी हुई थी। भरा हुआ चेहरा था। मोटे और काले फ्रेम का चश्मा आँखों पर लगाते थे। लगभग छह फूट ऊँचे थे। ये भारतीय सभ्यता को अधिक महत्व देते, उसी प्रकार का अनुशासन छात्रों को देते थे।

(१०) महाराज-

महाराज गंगापुर के जमींदार थे। महाराज रामदास को कोठी में रहने के लिए जगह देते हैं। पर वजीफा देने से इन्कार करते हैं। वह करते हैं- “टिनेंसी ऐक्ट लग गया है। अब कोई बेदखल नहीं हो सकता। अब गंगापुर के पास चमार तक महाराज हो जाएंगे। खराब दिन आए हैं। यह कोठी में जब तक चाहे तो कोई रह लें। पर अब वजीफे के दिन लद गए।”^{२५} इस तरह जमींदार-व्यवस्था और सामंती जीवन के टूटने से व्यथित महाराज का चित्रण किया है।

(११) ठाकुर राजेश्वरसिंह-

ठाकुर राजेश्वरसिंह कृषि विभाग के पेंशन प्राप्त ऊँचे अधिकारी थे। उन्होंने विश्वविद्यालयों में कृषि सम्बन्धी अनुसंधान किए थे। उसके परिणाम स्वरूप इस देश में उन्हें उच्च पद मिला था। ब्रिटिश शासन के समय सरकार जिस प्रकार देश में कृषि की उन्नति की व्यवस्था करना चाहती थी। उसी प्रकार की योजना बनाने, फिर उस योजना को कार्यान्वित कर कृषि

के क्षेत्र में उन्नतिहीन उन्नति दिखाने की उन्हें अगाध प्रतिभा मिली थी। उन्हें 'सर' का खिताब भी मिला था।

यह उच्च पद पर आसन अभिजात्य वर्ग के अवसरवादी, धन-दौलत, सुख-सुविधा, ऐश्वर्य का आनंद लेने वाले दंभी पात्र के रूप में प्रस्तुत है।

(१२) छोटी ठकुराइन-

छोटी ठकुराइन ठाकुर छोटूसिंह की दूसरी पत्नी थी। वह पति से बचकर घर का अनाज बेचती थी। घर की चार-दीवार में बंद रहकर, चौबीसों घंटे-गंदे लड़कों को खिलाने में, खाना पकाने और बर्तन मलने में, अनाज की कूटपीस में सारा दिन बिताने के बाद अपनी ऊब और घुटनमिटाने का उसका यही साधन था। इससे उसे पैसा मिलता था, स्वास्थ्यवर्धक प्रसन्नता आती थी। पड़ोसी वनिये का जवान लड़का राजवली और छोटका के अनैतिक सम्बन्धों की चर्चा दबी जबान से की जाती थी।

इस पात्र के माध्यम से लेखक ग्रामीण स्त्रियों के जीवन का, उनके व्यवहारों का चित्रण करते हैं।

(१३) फूला काकी-

रामदास जब पढ़ने के लिए कानपुर आ जाता है तब किराएदार के रूप में मकान मालकिन फूला काकी से परिचित होता है।

औद्योगिक प्रगति के साथ शहरों की जनसंख्या बढ़ती गई। उसी अनुपात में आवास व्यवस्था नहीं हुई। मकानों की संख्या कम पड़ने लगी। जिन लोगों ने छोटे-छोटे कमरे बनाकर किराए पर दिए, उनमें से एक फूला काकी थी। ऐसे मकान मालकिन का वह प्रतिनिधित्व करती है।

(१४) बेबी-

बेबी ठाकुर राजेश्वरसिंह की इकलौती संतान थी। इसकी उम्र सतराह साल की थी। वह अपने पिता के शोफर फिलिप के साथ दिल्ली भाग जाती है। यह पात्र हाई-सोसायटी के संस्कारों का प्रतीक है।

५.३.२ 'अज्ञातवास' उपन्यास के गौण पात्र

(१) देवीदत्त-

देवीदत्त उर्फ गाँडेस गिवेन, कुछ लोग प्यार से जी.जी. कहते थे। वह रजनीकांत का मित्र था। वह एक सफल वकील था। उसकी आमदनी अच्छी थी। वह अपने मीठे स्वभाव के लिए प्रसिद्ध था। वह वकालत की सफलता के सिलसिले में दो-चार दान धर्मवाली संस्थाओं का सभापति तथा बार असोसियेशन का मंत्री भी था। वह टेनिस अच्छी खेलता था तथा ब्रिज में शहर का सबसे अच्छा खिलाड़ी माना जाता था। वह भी पीने का शौकीन था।

(२) वसंत का लड़का-

यह गाने वाले ग्रामीण वसंत का लड़का है। यह पढ़ा-लिखा होने के कारण क्रांतिकारी है। लेखक ने उसमें नयी मानसिकता दिखाकर प्रगतिशील चेतना का प्रतीक बना दिया है। “वसंत के लड़के का क्रोध और तिरस्कार संपूर्ण मध्यवर्ग के प्रति हैं। अभिरुचि और संस्कृति पर व्यंग्य है। एक विशेष प्रकार की सौन्दर्याभिरुचि पर व्यंग्य है जो विनाश और संरक्षण पर बल देती हैं।”^{२६}

(३) विनायक-

हिन्दी भाषी विनायक विश्वविद्यालय में संस्कृत का प्रोफेसर था। लेकिन वह ज्यादा अंग्रेजी बोलता था। वह रजनीकांत का मित्र था। उसे सभी प्यार से फिलासाफर कहते थे। उसके पढ़ने के सिवा दो शौक थे, पीने का और बोलने का। वह कोरे पांडित्य और ऐय्याशी से परिपूर्ण जीवन बितानेवाले उच्च मध्यमवर्गीय पात्र का प्रतिनिधित्व करता है।

(४) गंगाधर-

गंगाधर रजनीकांत के साथ कॉलेज में पढ़ा था। वह डॉक्टर बनकर संयोग की बात कि दोनों एक ही शहर में आए थे।

(५) बनवारी अहीर-

बनवारी अहीर पात्र उपन्यास में ग्रामीण लोकगीत गाने वाले व्यक्ति के रूप में उपस्थित है। लेखक उसके बाहरी व्यक्तित्व का

परिचय इस तरह देते हैं- “भुखमरे, अधपनवे गरीब का चेहरा है।” वह पेशेवर लठैत था। बाद में उसके आधे अंग को लकवा मार गया, फिर भी वह होली और धमार गाता था। ढोलक और मजीरे के ऊपर उसकी स्पष्ट ऊँची, कुछ मीठी, कुछ कड़ी आवाज चारों ओर फैलकर थोड़ी देर के लिए ग्राम- संगीत के सरल स्वच्छंदता को अपने में समेट लेता था।

बनवारी अहीर के साथ बहरैची, राधे और रामचरण भगाने वाली टोंली में उपन्यास में उपस्थित हैं।

(६) ओवरसियर-

यह डाकबंगले पर ‘गंगाधर एण्ड कंपनी’ की व्यवस्था के लिए उपस्थित पात्र है। यह ग्रामीण लोकगीत गाने वालों की व्यवस्था करता है। बड़े अधिकारी से छोटे अधिकारी, कर्मचारी के शोषण के रूप में यह पात्र उपन्यास में आया है।

(७) रामलाल-

रामलाल गाँव का एक गरीब व्यक्ति था। वह गाँव में सुतली बँटता था, दिनभर जितनी सुतली निकलती, उसकी रस्सियाँ बनाता और इतवार तथा बुधवार को बाजार में बेच देता था। उसके बारे में कहा जाता है, ‘रमता जोगी, बहता पानी।’ यह उसके मनमौजीपन पर गाँव वालों की प्रतिक्रिया थी।

(८) डॉ. सीमादत्त-

डॉ. सीमादत्त तेईस साल की सरकारी अस्पताल में डॉक्टर थी। यह दिखने में आकर्षक युवती थी तथा आर्थिक रूप से पूरी तरह स्वतंत्र थी। उसने अपने पति को छोड़ रखा था। वह कहती “मैं नयी रामायण लिख रही हूँ। सीता को राम ने बिना अपराध के छोड़ दिया था, मैं वैसी सीता नहीं। अपना अपमान करने वाले राम को स्वयं छोड़ चुकी हूँ।”^{२७}

(६) रानी-

रानी प्रभा की माँ तथा रजनीकांत की अशिक्षित, ग्रामीण संस्कार वाली पत्नी थी। इसका चरित्र रजनीकांत के स्मृति लोक के माध्यम से उद्घाटित हुआ है।

५.३.३ 'राग दरबारी' उपन्यास के गौण पात्र

(१) वैद्यजी-

वैद्यजी राग दरबारी उपन्यास का शिखर पात्र है। शिवपालगंज के खल-समाज का नायकत्व वैद्यजी, उनके कुनबे और उनके संगी-साथी करते हैं, जो परजीवी बिचौलिया संस्कृति के प्रतिनिधि हैं, जो हर युग में रहे हैं। उपन्यासकार श्रीलाल जी के शब्दों में “वैद्यजी थे, और रहेंगे। अंग्रेजों के जमाने में वे अंग्रेजों के लिए श्रद्धा दिखाते थे। देशी हुकूमत में वे देशी हाकिमों के लिए श्रद्धा दिखाने लगे। वे देश के पुराने सेवक थे।”^{२८}

इस प्रकार वैद्यजी अवसरवादिता के मूर्त रूप है। गाँव की राजनीतिक गतिविधियों के सूत्रधार हैं। शिवपालगंज इन्हीं के इशारों पर नाचता है। वे कॉलेज के मैनेजिंग कमेटी के चेयरमैन और कोआपरेटिव युनियन के मैनेजर थे। कॉलेज के चेयरमैन होने के नाते प्रिंसिपल को वे एक गुलाम की तरह नचाते हैं। वे मैनेजिंग कमेटी की बैठक नहीं बुलाते और न ही चुनाव कराते हैं और जब चुनाव कराने की नौबत आ ही जाती है तो लाठी के बल पर पुनः मैनेजर चुन लिए जाते हैं।

वैद्यजी नित्य ग्रामसेवा, शिक्षा की उन्नति, आदर्श चरित्र और नैतिकता की बातें करते हैं, किन्तु उनका आचरण इन सबके विपरीत है। उनका चरित्र वास्तव में गुटबंदी, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद आदि का गणतंत्र हैं। वे गाँव के सभी बदमाशों के मुखिया हैं। लुटेरों का सरदार जोगनाथ भी उनकी राय के बिना कोई काम नहीं करता था। उनकी कथनी के विषय गीता, गांधीवाद, धर्मयुद्ध, प्रेम, अहिंसा, प्रजातंत्र आदि हैं। स्वार्थों की पूर्ति के लिए उनकी करनी में भ्रष्टाचार, अनैतिकता, गुटबन्दी, घूस, गबन, तिकड़म आदि का समावेश हैं। इस तरह वैद्यजी का चरित्र आज के भ्रष्ट व्यक्ति का प्रतीक है।

(२) बद्री पहलवान-

यह वैद्यजी का बड़ा लड़का है। वह पहलवान है। उसके आसपास के गाँवों में अनेक शिष्य हैं। वह अपने भाई के साथ शाम डंटकर भंगभवानी का सेवन करता था और कमर पर बड़िया लंगोट कसकर ऊपर से एक कुरता पहनता था। बद्री गाँव के पहलवानों और गुंडे का सरदार था। किसी गुंडे पर कोई विपत्ति आती है, तो उसकी मदद करना वह अपना कर्तव्य समझता था। शिवपालगंज की कूटनीति और गुटबंदी में उसके दोष भी गुण बन जाते थे, क्योंकि यहाँ लाठी को अंतिम अस्त्र माना जाता था। पिता की कूटनीति जहाँ काम नहीं करती, वहाँ बद्री पहलवान और उसके गुंडे की गुंडागिरी काम आती थी। उससे दमन शक्ति के कारण शायद बेला प्रेम करने लगती है।

इस तरह दमन शक्ति के प्रतीक रूप में बद्री पहलवान का चरित्र प्रस्तुत किया है।

(३) रूपन बाबू-

रूपन वैद्यजी का छोटा लड़का है। उसका चरित्र उपन्यास में पहले से ही गतिशीलता से उभरता है। वह दसवीं कक्षा से आगे बढ़ने का नाम नहीं लेता, पर इस समय वह कालेज के छात्रों का नेता बन गया था। उसकी नेतागिरी का प्रारंभिक और अंतिम क्षेत्र शिवपालगंज का छंगामल इंटर कालेज था, जहाँ उनका इशारा पाकर सैकड़ों विद्यार्थी तिल का ताड़ बना सकते थे और जरूरत पड़े तो उस पर चढ़ भी सकते थे।

इन सब गुणों के कारण स्थानीय दारोगा से लेकर प्रिंसिपल तक सर्वत्र उसका दबदबा था। राजनीतिक समझदारी और गुटबंदी सम्बन्धी ज्ञान का अभाव होने के कारण वह पिता के विरोधियों से प्रभावित हुआ और पिता का विरोध करने लगा। परिणामस्वरूप पिता वैद्यजी उससे नाराज हुए और उन्होंने सर्वसम्पत्ति से अपना उत्तराधिकारी बड़े लड़के बद्री पहलवान को चुना। रूपन बाबू यह देखकर अन्यत्र चला जाता है।

(४) सनीचर-

मंगलदास, सनीचर का असली नाम है। वह वैद्यजी का चेला था। वह पृथ्वी पर वैद्यजी को एकमात्र आदमी और स्वर्ग में हनुमान को एकमात्र देवता मानता था और दोनों से अलग-अलग प्रभावित था। हनुमान की तरह सनीचर भी सिर्फ अंडरवीयर से काम चलाता था। वह बनियन सिर्फ बाहर जाने के लिए पहनता था। वह वैद्यजी के कुत्ते की तरह लोगों पर भौंकता था। इसी कारण वैद्यजी उसे गाँव सभा के चुनाव में रामधीन के भाई के खिलाफ खड़ा करके शिवपालगंज का मुख्या बना देते हैं।

(५) लंगड़-

लंगड़ उपन्यास में एक साधारण पात्र के रूप में प्रस्तुत है। वह बिना रिश्वत दिए तहसील से नकल लेना चाहता था। वह धर्म, सिद्धान्त और सत्य की लड़ाई लड़ता है। लेकिन ऐसे व्यक्ति को शिवपालगंज में सहायता नहीं मिलती, वह थक्कर हार जाता है। उसे अन्त तक नकल नहीं मिल पाती।

(६) गयादीन-

गयादीन अवसरवादी, समझौतावादी स्वार्थ साधक परंतु समझदार आम आदमियों का प्रतीक है। यह एक अनुभव सम्पन्न व्यक्ति है। उसकी एक कपड़े की दुकान है तथा सुद पर वह रुपये देता था। उसकी एक जवान लड़की बेला तथा एक विधवा बुआ थी। उसे बेला के लिए एक सुन्दर और सुयोग्य वर की तलाश थी। वैद्यजी और गयादीन के अच्छे सम्बन्ध थे। उसे राजनीति में रूची नहीं थी।

(७) छोटू पहलवान-

छोटू पहलवान बट्टी पहलवान का शिष्य है। वह भी खानदानी परम्परा के माध्यम से अपने पिता कुसहरप्रसाद को पीटता है। यह मुँहफट तथा जड़ है। उपन्यास में बट्टी पहलवान के इशारे चलता है।

(८) खन्ना मास्टर-

खन्ना मास्टर इतिहास के मास्टर थे। यह वाइस प्रिंसिपल पद के लिए संघर्ष करते हैं पर असफल रहते हैं। वे हमेशा प्रिंसिपल और वैद्यजी के विरोधी रहने के कारण तथा अपनी जिद पर अड़े रहने के कारण और वैद्यजी की व्यथा समझने में असमर्थ होने के कारण उन्हें इस्तीफा देना पड़ा था।

(९) राधेलाल-

राधेलाल शिवपालगंज में झूठी गवाही देने के लिए प्रसिद्ध था। वह गवाही इतनी सटासट देता कि वकील भी टुकर-टुकर देखते रहते थे। उसके आगे बड़ो-बड़ो की बोलती बन्द हो जाती थी। उसके साथ भागकर आयी हुई प्रेमिका को लोग कुतिया कहते थे।

(१०) बेला-

बेला गयादीन की इकलौती कन्या थी। रूपन उससे प्रेम करता था। लेकिन वह बद्री पहलवान से प्रेम करने लगती है। बद्री पहलवान के पिताजी बेला के साथ आंतर्जातीय विवाह का प्रस्ताव गयादीन के सामने रखते हैं, पर वह विरोध करता है। वह अपने जाति में बेला के लिए वर ढूंढ़ रहा था। इधर बेला को देखकर रिसर्च करने और तंदुरस्ती बनाने आया रंगनाथ भी आकर्षित हो जाता है - मैत्रेयी-पुष्पा के अनुसार - “बेला वह स्त्री है, जो हजारों साल से गुलामी झेल रही है और मुक्ति के लिए छटपटा रही है। यह दीगर बात ठहरी कि आजादी के बाद पुरुष उसे कुछ इसतरह देख रहा है - एक बला, जिसका नाम बेला गृहकार्य में दक्ष, सुंदर स्वस्थ मगर भोली-भोली।”^{२६}

‘रागदरबारी’ उपन्यास में इन पात्रों के अलावा प्रिंसिपल, जोगनाथ, मास्टर मोतीराम, रामाधीन, मालवीय आदि हैं। इसको त्यागकर दारोगा, कालिकाप्रसाद, शहरी अग्रवाल आदि पात्र भ्रष्टाचार, मूर्खता, स्वार्थ, झूठ के रूप में प्रस्तुत हैं।

५.३.४ 'आदमी का जहर' उपन्यास के गौण पात्र

(१) हरिश्चन्द्र-

हरिश्चन्द्र रेफ्रिजरेटरों का कारोबार करता था। उसकी दुकान शहर की अत्याधुनिक दुकानों में से थी और अपने कारोबार के माध्यम से शहर के सभी जाने-माने आदमियों से उसकी जान-पहचान थी। उसके परिवार में सिर्फ पत्नी रूबी थी। शहर के छोर पर एक उनका बंगला था। उसके पास स्वास्थ्य था, सुन्दरता थी, काफी पैसा था और अच्छी सामाजिक हैसियत थी।

हरिश्चन्द्र अपनी पत्नी रूबी से पत्रकार अजीतसिंह के सम्बन्ध को लेकर ईर्ष्या करता था। एक बार उसने रूबी का पीछा किया और रूबी तथा अजीतसिंह को रंगेहाथ पकड़ा। उसने अजीतसिंह पर गोली चला दी लेकिन अजीतसिंह की मौत गोली से नहीं अस्पताल में जहर देने से हुई थी।

हत्या की यह घटना उपन्यास को नया मोड़ देती है। हरिश्चन्द्र को पुलिस एक दिन जेल में रखकर छोड़ देती है। वह मित्र उमाकांत को अपनी मुसीबत बताता है। वह कहता है “मेरे और रूबी के खिलाफ कोर्ट में जो भी फैसला हो, इसकी मुझे उतनी चिन्ता नहीं है। पर मुझे दिन-रात यही बात कचोटती रहती है कि मैंने रूबी के साथ बेइन्साफी की है। अजीतसिंह उसे दो साल से सता रहा था, पर मैंने उसकी मुसीबत को नहीं समझा। मदद करने के बजाय मैं उसके चरित्र पर सन्देह करता रहा।”^{३०} उसके बाद वह उमाकांत के साथ अजीतसिंह की हत्या की जाँच-पड़ताल के लिए मदद करता है।

इस तरह हरिश्चन्द्र का चरित्र उपन्यास में व्यापारी और ईर्ष्यालु पति के रूप में चित्रित हुआ है।

(२) शांतिप्रकाश-

शांतिप्रकाश राजनीतिक नेता था। इसकी उम्र चालीस साल से ऊपर थी। उसके साथ हमेशा कार्यकर्ता रहते थे। इसका चरित्र एक झूठे नेता के रूप में चित्रित है। जैसे “मैं तो हमेशा से अजीतसिंह की हिम्मत और ईमानदारी का कायल था। उसके साप्ताहिक पत्र ‘जनक्रांति’ को मैं हमेशा पढ़ता

था। समाज की गन्दगी और भ्रष्टाचार का इतनी निर्भीकता से मुकाबला करने वाले पत्रकार कितने हैं।”^{३१}

इसका सम्बन्ध पार्वती महिला आश्रम से था। इसके और आश्रम की अधिक्षक कुमारी वीणा गहलौत के अनैतिक सम्बन्ध थे। वह आश्रम की लड़कियों को व्यभिचार के लिए प्रवृत्त करती थी। जैसे मालती उर्फ मलिना नामक युवती को उसने शांतिप्रकाश के लिए फँसाया था, बाद में शांतिप्रकाश ने उसकी हत्या कर दी थी। इसी तरह अजीतसिंह को भी अपने मित्र जसवंत की सहायता से जहर देकर उसकी हत्या की थी, क्योंकि वह मालती के मामले में उसको ब्लैकमेल करता था। इसी मामले में उमाकांत के माध्यम से पुलिस ने उसे गिरफ्तार किया था।

(३) पुलिस इंस्पेक्टर-

यह अपने विभाग में मशहूर था। इसका रिटायरमेंट नजदीक था। इसका चरित्र-चित्रण अजीतसिंह की हत्या के बाद प्रकट हुआ है। वह अजीतसिंह की फाईल सी.आई.डी. को सौंप देता है। इसकी और शांतिप्रकाश की अच्छी जान-पहचान थी।

(४) सिद्दीकी-

जे.ए. सिद्दीकी सी.आई.डी. का मशहूर इंस्पेक्टर था। वह अजीतसिंह की हत्या की जाँच-पड़ताल करता है।

(५) जसवंत-

जसवंत, शांतिप्रकाश का मित्र तथा मालती और अजीतसिंह की हत्या में इसका भी सहयोग था। बाद में शांतिप्रकाश के साथ इसी अभियोग में गिरफ्तार हुआ था।

(६) विद्यानाथ सिन्हा-

यह सुपरिटेण्डेंट ऑफ पुलिस था। वह अजीतसिंह का मामला पत्रकार तथा जासूस उमाकांत को सौंप देता है।

(७) जरीना-

यह अजीतसिंह की पड़ोसी थी। उसने अजीतसिंह की सहायता से एम.ए.अर्थशास्त्र किया था। इसकी उम्र २२ साल की थी। वह अजीतसिंह की हत्या के दूसरे दिन नैनीताल चली गयी थी। सी.आई.डी. इंस्पेक्टर सिद्दीकी तथा उमाकांत वहाँ जाकर उससे पूछताछ करते हैं।

(८) मिस लायल-

यह अस्पताल में परिचारिका थी। यही जीतसिंह को जहर देनेवाली बुर्केवाली औरत का जिक्र करके उमाकांत तथा पुलिस की सहायता करती है।

(९) रत्ना-

यह अजीतसिंह की चचेरी बहन थी। रूबी का परिचय अजीतसिंह से करा देती है। यह मेरठ में एम.जी.गर्ल्स कोलेज में लेक्चरर थी। उसके पति मिलिट्री में काम करते थे। उसने रूबी का अवैध पुत्र 'संदीप' को दत्तक लेकर हमेशा सहायता की थी।

(१०) वीणा गहलौत-

यह पार्वती महिलाश्रम की अधीक्षक थी। वह अनेक राजनीतिक नेताओं की वासनाओं का शिकार हो जाती है।

५.३.५ 'सीमाएँ टूटती हैं' उपन्यास के गौण पात्र

(१) तारानाथ मलहोत्रा-

यह दुर्गादास का बड़ा पुत्र, पर उपन्यास में उसका चित्रण कम है। वह एक छोटे कस्बे के कोलेज का प्रिंसिपल था। उसकी उम्र ३२ वर्ष थी। वह भाग्यवादी चरित्र के रूप में उपन्यास में चित्रित है। पिताजी की सजा के सम्बन्ध में भगवान की यही इच्छा थी, ऐसा सोचकर शांत हो जाता है। वह जानता था कि, जो कुछ पिता के साथ हुआ है, वह दुनिया में हजारों लोगों के साथ हो चुका है। इन्हें लेकर भगवान से शिकायत नहीं की जा सकती। वह जीवन में धर्म और भक्ति की आवश्यकता प्रस्तुत करता है।

(२) राजनाथ मलहोत्रा-

यह तारानाथ मलहोत्रा का छोटा भाई था। उनके व्यवसाय का सहयोगी और अधिकारी भी था। उसकी उम्र उन्तीस साल की थी। पिता के व्यवसाय की जानकारी उसे विमल ने दी थी। उसकी पत्नी का नाम नीला था, वह निःसंतान होने का कारण देता है कि “पापा के जेल में रहते हुए मैं बाप नहीं बनना चाहता। मैं नहीं चाहता कि हमारा बच्चा जैसे ही हमारी बोली समझने लगे, वैसे ही उसके कान में पड़े कि उसके दादा ने खून किया है और वे जेल काट रहे हैं।”^{३२}

राजनाथ की दूसरी चिंता का विषय चाँद था। चाँद पर उसे तरस आता था। पापा की गिरफ्तारी से पहले उसकी शादी हो गयी होती तो विमल के साथ चाँद का जो झंझट बढ़ा है, वह न बढ़ता। दुर्गादास की गिरफ्तारी के बाद चाँद की शादी टूट गयी थी। विमल के साथ चाँद के जो सम्बन्ध थे, उसे लेकर वह चाँद को समझाने का प्रयत्न करता है। बाद में चाँद पर भी कड़े नियंत्रण लाद देता है।

(३) दुर्गादास मलहोत्रा-

यह पात्र उपन्यास में प्रत्यक्ष उपस्थित नहीं है किन्तु कथ्यवस्तु की रीढ़ की हड्डी जैसा इनका पात्र समस्त घटनाएँ, क्रिया-कलापों, संवादों में प्रस्तुत है।

(४) मुकर्जी-

यह कैमिस्ट्री का शोध-छात्र था। वह चाँद का सहपाठी था। उसकी उम्र तेईस वर्ष की थी। वह चाँद को देखकर उसके प्रति आकर्षित होता है, उससे प्रेम करना चाहता था, पर चाँद इन्कार कर देती है। चाँद की हर बात में वह दिलचस्पी लेता था।

उपन्यास में मुकर्जी का चरित्र विज्ञान का छात्र, असफल प्रेमी, संगीत में रुची रखनेवाला, प्रेम गीतों का कवि, धार्मिक, बंगाली युवक के रूप में उपस्थित है।

(५) शंकर-

यह तारानाथ के कॉलेज के मैनेजर और एक सम्पन्न किसान का पुत्र था। उसकी उम्र पैंतीस साल की थी। वह तारानाथ का मित्र था। वह मुकदमों की छानबीन के लिए तारानाथ के साथ लखनऊ तथा दिल्ली आता है। वह वकीलों से मिलता है। अपराध - विशेषज्ञ की राय लेता है। लेकिन उसे देश की कानूनी व्यवस्था के प्रति रोष था। भारतीय कानून को बेहूदा मानता था। “यह सच्चाई की शपथ लेकर झूठ बोलने वालों का देश हैं।”^{३३} अतः शंकर एक मित्र की सहायता हेतु उपन्यास में हैं।

(६) प्रोफेसर-

यह समाजशास्त्र के प्रोफेसर थे। उम्र तैंतीस वर्ष की थी। यह मसूरी में छुट्टियाँ मनाने के लिए आए थे। यही उनका परिचय चाँद से हो जाता है। इन्होंने हार्वर्ड में समाजशास्त्र का अध्ययन किया था।

(७) डॉ. फड़के-

यह जेल सुपरिंटेंडेंट थे। इनकी उम्र पैंतालीस साल की थी। यह अपराध शास्त्र के विशेषज्ञ थे। उन्होंने दुर्गादास के मामले का अच्छा अध्ययन किया था। उन्हें परमात्मा पर अधिक विश्वास था।

(८) नीला-

यह राजनाथ मलहोत्रा की पत्नी थी। उसकी उम्र सत्ताईस साल की थी। यह बोलने में चतुर थी। वह विमल और चाँद का सम्बन्ध देखकर अपने पति को आगाह करती है। वह निःसंतान थी। उसकी वेदना बाँझ स्त्री की व्यथा है।

(९) जूली-

जूली एक दफ्तर की टाइपिस्ट थी। उसकी उम्र तीस वर्ष की थी। वह विमल की शय्यासंगिनी थी। उसने आमदनी बढ़ाने के लिए खास-खास ग्राहकों से मिलकर देह विक्रय किया था। विमल उसी में एक ग्राहक था। उनमें धीरे-धीरे दोस्ती हुई। उसने विमल का सम्बन्ध नहीं तोड़ा।

इस प्रकार उपन्यास में जूली का एक कोल-गर्ल का ऐय्यास धूर्त चरित्र प्रस्तुत है।

५.३.६ 'मकान' उपन्यास के गौण पात्र

(१) सिटी एडमिनिस्ट्रेट-

यह नगर-निगम के दफ्तर के अफसर थे। यह देखने में सुन्दर उम्र पचपन के आसपास, पर चेहरे पर झुर्रिया नहीं थी। बाल एकदम सफेद और चमकदार थे और उनमें हलकी लहरें पड़ी थी। यह सत्तर-पितहतर के दौर के नौकरशाह थे। इनके पास बौद्धिक कौशल था। यह संस्कृत, साहित्य, संगीत और कला में रुची दिखाते थे। यह दोहरे व्यक्तित्व वाले व्यक्ति थे। कर्मचारी जब ओवर टाइम की मांग करते हैं, तब उनका विरोध करते हैं।

दफ्तर में वे कर्मचारियों के आंदोलन, नागरिकों की समस्याएँ, प्रशासन की गुथियाँ इन सबसे निर्लिप्त रहकर शासन कर रहे थे। इनकी स्वामी शांतानंद महाराज पर बड़ी श्रद्धा थी। स्वामीजी के कहने पर इन्होंने अपनी लड़की का नाम 'उत्तरा' रखा था। इनका लड़का डाक्टर था, उसे स्वामीजी के क्लिनिक में लगाने के लिए स्वामीजी की सिफारिश पर नारायण को मकान एलर्ट करते हैं। ऐसे चरित्र के प्रति राजेश जोशी जी कहते हैं - "सत्तर के बाद के भारतीय परिदृश्य पर नज़र डाले तो १९७४ के आसपास सारे देश में ऐसे अनेक संस्कृति-कर्मी अथवा संस्कृति और कला रुचि से सम्पन्न अधिकारी दृश्य पर नज़र आएँगे, जिन्होंने न केवल अपनी सांस्कृतिक छबि निर्मित करने की कोशिश की बल्कि शासन में बैठे लोगों को भी एक सांस्कृतिक छबि देने के लिए योजनाएँ बनायी और कार्यक्रम चलाये।"^{३४}

अतः इस चरित्र के माध्यम से लेखक ने आज के अधिकारियों के छल-कपट, आश्वासनों की प्रवृत्ति, भ्रष्टाचार, स्वार्थ आदि को प्रस्तुत करता है

(२) स्वामी शांतानंद महाराज-

यह आश्रम के स्वामी थे। इनका आश्रम एक हरी-भरी जगह है, पास ही नदी बहती है। नारायण को वे छोटा भाई मानते थे।

उपन्यास में इनका प्रवेश किसी धार्मिक समारोह के उपलक्ष्य में नारायण को सितारवादन के लिए आमंत्रित करने से हुआ है। स्वामीजी की सिफारिश पर ही सिटी एडमिनिस्ट्रेटर नारायण को मकान एलॉट करते हैं।

(३) बारीन हलदार-

यह पात्र साम्यवादी विचार का, नगर-निगम के मजदूर तथा कर्मचारियों के यूनियन का नेता के रूप में चित्रित है। उसका पूरा नाम बारीन हलदार है, लेकिन लोग उसे बारीन -दा ही कहते थे। उसे डायबिटीज और गुर्दे की बीमारी थी। उसके परिवार में पत्नी तथा एक बेटी थी। बारीन हलदार में दलित, गरीब उपेक्षित वर्ग के प्रति सहानुभूति थी।

(४) इरशाद-

इसका पूरा नाम इरशाद अहमद था। आकाशवाणी में संगीत का प्रोड्यूसर था। अतः वह नारायण की सितारवादन की रिकार्डिंग करता है। उसकी सहयोगी चित्रा थी। बाद में चित्रा से शादी करता है।

(५) पिन्टू-

यह नारायण का बड़ा लड़का था। वह बी.एस.सी. में पढ़ रहा था। वह नारायण की मौत के बाद नगर-निगम में हाऊसिंग-इंस्पेक्टर के पद पर नियुक्त होता है।

(६) सेठजी-

यह संगीत प्रिय व्यक्ति थे। इनका पूरा परिवार ही संगीतप्रिय था। इनके बम्बई के दामाद भी संगीत में अच्छी रुचि रखते थे। उन्होंने एक समारोह में नारायण को सितारवादन के लिए बुलाया था और सितारवादन से मुग्ध होकर नारायण को कुछ रुपये इनाम में दिए थे।

(७) श्यामा-

श्यामा के संगीत का गुरु नारायण था। वह नारायण की प्रिय शिष्या थी। उसका पति अमरिका निवासी इंजीनियर था। उसे एक पुत्र अतुल था। वह मेहनत से सितार बजाना सीख रही थी, क्योंकि उसके होने वाले पति की शर्त थी कि वह संगीत जानने वाली लड़की से ही शादी करेगा।

इसी कारण वह नारायण की शिष्या बन जाती है और नारायण उसका शोषण करता है। वह नारायण की प्रिय रमणी थी। श्यामा ही सिम्मी का परिचय नारायण से करा देती है। वह उसकी प्रिय सहेली थी। लेकिन बाद में गर्भावस्था में सीढ़ियों से गिर जाने के कारण उसकी मृत्यु हो जाती है।

(८) मिनाक्षी-

यह पात्र उपन्यास में प्रत्यक्ष उपस्थित नहीं है। वह नारायण की पत्नी थी। वह दिल्ली में हमेशा बीमार रहती थी। वह नगर निगम में नारायण की मौत के बाद अध्यापिका बन जाती है। कुछ दिन बाद पद त्याग देती है।

(९) मिसेज हलदार-

यह बारीन हलदार की पत्नी थी। वह पत्नी को औपचारिकता के लिए मिसेज हलदार पुकारता था। वह अस्पताल में पति की हिम्मत बढ़ाती है।

(१०) चित्रा-

चित्रा आकाशवाणी में इरशाद की सहयोगी थी। नारायण से उसका अच्छा परिचय था।

५.३.७ 'पहला पड़ाव' उपन्यास के गौण पात्र

(१) परमात्मा जी-

यह भूतपूर्व जमींदार, राजनेता, सफल वकील तथा ठेकेदार थे। अब शहर में रहकर वकालत करते थे। उन्होंने एक राजनीतिक नेता की पहचान भी बनायी थी। उनकी पहली पत्नी का ढाई साल पहले देहांत होने पर उन्होंने संतोष के गाँव की लड़की सावित्री से दूसरा अनमेल विवाह किया था। वे हर साल गाँव के कुछ खेत और बाग बेचकर शहर में मकान बनवाते थे। तीन मकान बन चुके थे, चौथा बन रहा था। उन्हें पान-तंबाकू खाने की आदत थी, खुद भी खाते और मजदूरों को भी खिलाते थे। “देखो भाई मुझे तो भाईचारे से काम कराना अच्छा लगता है। हम लोग पुराने जमींदार रहे हैं। अपने हलवाहे को भी काका कहते थे। अकेले न चाय पीएंगे न पान खाएंगे।”^{३५} वे किसी

इंझट में पड़ना नहीं चाहते थे। ऐसे व्यवहार से मजदूरों से काम भी लेते थे और अपनी शान भी बनाए रखते थे। वे बहुत धूर्त व्यक्ति थे। उनके सम्बन्ध में डॉ. शिवकुमार मिश्र ने कहा है कि 'राग दरबारी' के वैद्यजी का लघु संस्करण है, अपने स्वार्थ तथा लक्ष्य पर बराबर निगाह रखने वाले ! शक्ति, धन तथा सत्ता के तंत्र के हर पुरजे तक उनकी पहुँच है। अपने लाभ के लिए मीठी छुरी से किसी की भी गर्दन काट लेने में इन्हें कोई संकोच नहीं है।'^{३६}

इस तरह परमात्मा जी अभिजात्य वर्ग के प्रतिनिधि और जोड़-तोड़, हेरा-फेरी करके स्वार्थी राजनीति की जमीन पर चलने वाले ऊँची हैसियत के प्रतिक है। उपन्यास में यह ऐसे धूर्त चरित्र के रूप में उद्घाटित हुआ है।

(२) प्रेमवल्लभ-

यह संतोष का दोस्त था। उसने एम.ए. राजनीति शास्त्र में किया है और संतोष के साथ अब एल.एल.बी. कर रहा था। वह नियमित कॉलेज जाता था और कक्षा में कुछ देर बैठकर कचहरी चला जाता था। वहाँ एक वकील का ज्युनिपर बन जाता है।

(३) इंजीनियर-

यह पात्र परमात्मा का मित्र है। उसने आते ही परमात्मा जी के मकान के मजदूरों की छुट्टी कर दी। उसे मजदूरी कम देना, काम ज्यादा करवाना पसंद था। वह सार्वजनिक निर्माण में असिस्टेंट इंजीनियर था। उसने घूस लेने के कारण वह चार साल, पांच महिने, तेईस दिन से नौकरी से निलंबित था। उसे अब सिर्फ आधी सेलेरी मिलती है, काम नहीं है। अंततः वह राजनीति में सक्रिय हो जाता है, देश सेवक के रूप में जाना जाता है।

(४) मेंडूराम उर्फ नेता-

यह विलासपुरी मजदूर था। इसकी पत्नी का नाम भी जसोदा उर्फ मेमसाहब था। मेंडूराम को गांजा पीना, रोज शाम जुआ खेलना आदि आदतें थीं। उपन्यास का प्रारंभ इस दम्पति के संवादों से होता है। जो साल भर कमाने के बाद गाँव लौटते हैं। मेंडूराम उर्फ नेता भी अपनी पत्नी

जसोदा के साथ गाँव जाना चाहता है, पर रेल में कुछ गुंडे उसकी गाड़ी कमाई तेरह सौ रुपया लुट लेते हैं।

मेंडूराम को बीड़ी पीने और पान चबाने की आदत थी, इसी कारण उसे नेता नाम से पुकारते थे। एक दिन नदी पर हनुमान जी का मेला था, उसे देखने मेंडूराम, सुरेस तथा अन्य मजदूरों के साथ जाता है। वहाँ से लौटते हुए निर्जन रास्ते में ही शाम हो जाती है। यहाँ नयी कोलोनी के निर्माण के सिलसिले में मैदान में पार्कों के लिए चारों ओर लोहे की रेलिंग लगायी गयी थी। रेलिंग चुराने में एक खास अपराधी गिरोह सक्रिय था, जो अपनी मेटाडोर वैन ले आये थे और चोरी कर्म में जुटे थे। रघुनाथ इस गिरोह का प्रमुख था। मेंडूराम इस चोरी के प्रति आवाज उठाता है और नतीजा यह होता है कि उसकी हत्या हो जाती है। यह घटना, एक मजदूर की ईमानदारी, सच्चाई उसका अंत करवा देती है। स्पष्ट है इस दुनिया में अपराधियों को छूट है और सच्चे इन्सान को मौत मिलती है।

(५) सुरेस-

यह गुंगा था। उसे बाप ने घर से निकाल दिया था। वह बालमजदूर बनकर कठोर मेहनत करता है। उसे मेंडूराम की घटना की जानकारी होकर भी वह गुंगेपन के कारण कुछ बता नहीं सका। सुरेस का गुंगापन आज की स्थिति को देखकर भी अनदेखा करने वाले वर्ग का प्रतीक है।

(६) रघुनाथ-

यह पात्र उपन्यास में लूटमार के लिए प्रसिद्ध है। वह नयी कोलोनी की रेलिंग चुराने वाले गिरोह का प्रमुख था। अतः वह गुंडा है। उसे मिलने बड़े-बड़े लोग आते थे। वह मोटर दुर्घटना में घायल होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

(७) संतोष के बड़े भाई-

यह सूदखोर और लोभी होने के कारण भाई संतोष को जमीन खरीदने के लिए भाई होकर भी सूद पर रुपये देता है।

(८) कुँवर साहब-

यह पुराने जमींदार थे। उन्होंने फिलहाल दो फिल्में बनायी थी, प्रेमवल्लभ के कहने पर मजदूरों के शोषण को लेकर फिल्म बनाने की योजना बनायी थी। फिल्म बनाना उनका शौक था।

(९) मिस्त्री-

यह राजगीर था। वह बिलासपुरी मजदूरों के साथ इमारत का काम करता था।

(१०) दारोगा-

यह पात्र दारोगा होकर भी पैसेवालों के हिमायती होने के कारण मेंडूराम की हत्या के मामले में कोई सहानुभूति नहीं दिखाता है।

(११) संजीवन भाई-

उपन्यास में यह पात्र नेतागिरी और गुंडागर्दी के लिए मशहूर है।

(१२) सावित्री-

सावित्री ठेकेदार, वकील परमात्मा जी की दूसरी पत्नी थी। उसका परमात्मा जी के साथ अनमेल विवाह उनके धन और प्रतिष्ठा को महत्व देकर होता है। उच्च वर्ग की स्त्री संपत्ति के सामने गुलाम है। संपत्ति ही उसके जीवन की सार्थकता है।

५.३.८ 'बिसमपुर का संत' उपन्यास के गौण पात्र

(१) विवेक-

यह कुँवर जयंतीप्रसाद का एकमात्र पुत्र था। वह बौद्धिक वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है। उसने अर्थशास्त्र में एम.ए. किया था। उसने भारतीय अर्थव्यवस्था के कुछ पहलुओं पर लंबा निबंध लिखा था। फिर वह अपने गाँव में लेक्चरर हो गया था। उस समय भूदान आंदोलन काफी महत्व प्राप्त कर चुका था। विवेक का भूदान आंदोलन के प्रति मौलिक चिंतन था। उसका भूदान आंदोलन के प्रति यह दृष्टिकोण था- “पंद्रह-बीस साल में यह आंदोलन कुछ व्यक्तिगत ‘सक्सेस स्टोरीज’ का सफल उपलब्धियों का संकलन

मात्र होकर रह जाएगा। भावुकतापूर्ण आदर्श कल्पनाओं से इतिहास में कुछ पन्ने भर जुड़ते हैं, इतिहास बदलता नहीं है। इतिहास बदलता है सिर्फ सुस्पष्ट सुचिंतित वैज्ञानिक विचारधारा से।”^{३७} इस प्रकार विवेक अपनी समसामयिकता का गहराई से चिंतन-मनन करता था। वह बाद में दिल्ली विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र का प्रोफेसर हुआ था।

विवेक का चरित्र उपन्यास में विचारशील, जागरूक, स्वतंत्र मत रखनेवाला स्वाभिमानी प्रौढ़ व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत है। वह पिता के ओहदे का धन, प्रतिष्ठा का लाभ उठाने वाला अवसरवादी नहीं था। वह हमेशा शोषित, दलित, उपेक्षित वर्ग के प्रति सहानुभूति रखता था। उसी के साथ वह आज के बुद्धिवादी समाज का प्रतिनिधि भी है, जिसे खुद के बौद्धिक विकास के साथ हमेशा समाज, देश की चिंताएं करता है।

(२) निर्मल भाई-

यह पात्र भूदान तथा सर्वोदय आंदोलन का कार्यकर्ता था। वह आंदोलन का सैद्धांतिक प्रवक्ता भी था। वह पाँच-छह भाषाएँ जानता था। वह भूदान आंदोलन के प्रवक्ता के रूप में विदेश भ्रमण भी करता था। उसे विदेश भ्रमण का चस्का लग गया था। उसकी पोशाक भी पश्चिमी हो गयी थी। वह भोगवादी हो गया था। वह एक दिन सोने की तस्करी में पकड़ा जाता है और उसे दिल्ली तिहाड़ जेल में भेज दिया जाता है। यह पात्र भूदान आंदोलन का पतन का प्रतीक है।

(३) धीरज सिंह-

यह राजभवन में महामहिम राज्यपाल का स्थायी रूप में विश्वास पात्र सेवक था। वह भूतपूर्व राज्यपाल कुँवर साहब के साथ सेवा के लिए बिस्रामपुर जाता है।

(४) राजा साहब-

यह कुँवर जयंतिप्रसाद के बड़े भाई थे। वह पुराने भूस्वामी था। वह गाँधीवादी तथा आजादी का सिपाही भी था। सन् १९५२ में एक समाजवादी आंदोलन में जेल गया था।

(५) रेड्डी साहब-

यह कुँवर जयंतिप्रसाद का मित्र था। वह भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री था। कुछ समय वित्त आयोग के अध्यक्ष भी था। यह पात्र राजनीतिक सुविधाओं का लाभ उठाता है।

(६) राव साहेब-

यह कुँवर जयंतिप्रसाद के बड़े भाई के गुरु थे। वह सातवें दर्जे तक पढ़े थे। वह त्यागी अन्याय के खिलाफ और जेलों में सबसे ज्यादा यंत्रणा भोगने वाला नेता माना जाता था। उसे 'मध्यप्रांत-केसरी' कहाँ जाता था। अपने क्षेत्र में उसकी हैसियत एक युगपुरुष जैसी थी।

(७) दुबे महाराज-

यह पात्र जमींदार के साथ शोषक वर्ग का प्रतिनिधि है। इसने भूदान आंदोलन के समय फर्जी रेहन से किसानों की जमीन पर कब्जा किया था। वह कोओपरेटिव फार्म का मैनेजिंग डाइरेक्टर भी था। उस पर कुँवर जयंतिप्रसाद सिंह की हत्या का आरोप था।

(८) प्रभास भाई-

यह बिस्रामपुर के आश्रम में मंत्रीजी का सहायक था। वह अनपढ़ था। उसके माँ-बाप गरीब थे। वह बिस्रामपुर निवासी था।

(९) मंत्री जी-

यह बिस्रामपुर के आश्रम का मंत्री था। उसका महत्व इसलिए है कि यह भूदान आंदोलन की स्थिति, गति, दुर्गति की जानकारी का लेखा-जोखा कुँवर जयंतिप्रसाद के सामने उद्घाटित करता है।

(१०) रामलोटन-

यह पात्र किसान एवं मजदूर वर्ग का प्रतिनिधि है। वह आश्रम में काम करता था। उसकी जमीन फर्जी रेहन के कारण जमींदार दुबे महाराज के कब्जे में चली गयी थी। वह अनपढ़ होने के कारण कागज से डरता था। वह अपनी जमीन पाने के लिए किसानों को संगठित करके सामुहिक संघर्ष करता है।

रामलोटन के चरित्र के माध्यम से बाबू श्रीलाल शुक्ल ने भूदान आंदोलन का बत्तीस साल का यथार्थ उद्घाटित किया है।

(११) जयश्री-

यह एक उच्चवर्गीय, सुसंस्कृत घर की स्त्री थी। उसका पति एक बड़े जमींदार घराने की संतान था और विलायत की आई.सी.एस. परीक्षा पास था। जयश्री का पति हमेशा घर से बाहर रहता था। जयश्री विवाहित होने पर भी कुँवर जयंतीप्रसाद की ओर आकर्षित होती है। फिर उसके व्यभिचार का शिकार हो जाती है।

(१२) सुशीला-

यह एक बड़े घर की लड़की थी। वह भूदान आंदोलन से जुड़ी हुई थी। वह सुंदरी की तरह बुद्धिवादी वर्ग का प्रतिनिधि स्त्री पात्र है। वह बिस्रामपुर में सुंदरी के साथ एक साल तक रहकर बौद्धिक बहसों में भाग लेती थी। अहमदाबाद जाकर सर्वोदय आंदोलन के प्रवक्ता निर्मलभाई से उसका विवाह हो जाता है। वह माँ के साथ रहती थी।

यह पात्र उपन्यास में जयंतिप्रसाद, सुंदरी, विवेक और निर्मलभाई तथा भूदान आंदोलन की गतिविधि को और उद्घाटित करता है।

(१३) केतकी-

यह कुँवर जयंतिप्रसाद की भतीजी थी। उसने लंदन में आंतरिक साजसज्जा का प्रशिक्षण पाया था। इस वक्त वह अमरीकी बाजार में स्वच्छंद फ्रीलासिंग कर रही थी। वह सरकारी खर्चे पर राजभवन की आंतरिक साजसज्जा के लिए परामर्शदाता के रूप में भारत आयी थी।

● संदर्भ सूची ●

- (१) सं.अखिलेश : श्रीलाल शुक्ल की दुनिया, पृ. ६४
- (२) श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृ. ६५
- (३) वही, पृ. ११०
- (४) श्रीलाल शुक्ल : अज्ञातवास, पृ. १०८
- (५) तद्भव - पत्रिका, मार्च - १९६६, पृ. २४
- (६) श्रीलाल शुक्ल : अज्ञातवास, पृ. ६३
- (७) वही, पृ. ६
- (८) सं. अखिलेश : श्रीलाल शुक्ल की दुनिया, पृ. २०
- (९) श्रीलाल शुक्ल : आदमी का जहर, पृ. १०३
- (१०) श्रीलाल शुक्ल : सीमाएँ टूटती हैं, पृ. २८
- (११) वही, पृ. ३२
- (१२) श्रीलाल शुक्ल : मकान, पृ. १६
- (१३) तद्भव - पत्रिका, पृ. २१७
- (१४) सं. अखिलेश : श्रीलाल शुक्ल की दुनिया, पृ. २१२
- (१५) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. ३४
- (१६) वही, पृ. २१६
- (१७) सं. अखिलेश : श्रीलाल शुक्ल की दुनिया, पृ. २१४
- (१८) वही, पृ. २०१
- (१९) उत्तरप्रदेश - पत्रिका, जनवरी - १९६६, पृ. २०
- (२०) श्रीलाल शुक्ल : बिसमपुर का संत, पृ. ३८
- (२१) उत्तरप्रदेश - पत्रिका, जनवरी - १९६६, पृ. २०
- (२२) श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृ. ३४
- (२३) वही, पृ. ३१
- (२४) वही, पृ. ३६
- (२५) वही, पृ. ६२

- (२६) तद्भव - पत्रिका, पृ. २३
(२७) श्रीलाल शुक्ल : अज्ञातवास, पृ. ८०
(२८) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. ४५
(२९) तद्भव - पत्रिका, पृ. ४२
(३०) श्रीलाल शुक्ल : आदमी का जहर, पृ. ८१
(३१) वही, पृ. २६
(३२) श्रीलाल शुक्ल : सीमाएँ टूटती हैं, पृ. ३८
(३३) हास्य - व्यंग्य भारती - पत्रिका, पृ. २१
(३४) तद्भव - पत्रिका, पृ. २१६
(३५) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. १६
(३६) तद्भव - पत्रिका, पृ. १६
(३७) श्रीलाल शुक्ल : बिस्रामपुर का संत, पृ. ४५

षष्ठम् अध्याय

- ६.० श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों का शिल्पगत वैशिष्ट्य
६.१ प्रस्तावना
६.२ शुक्ल जी की भाषा
६.२.१ शुक्ल जी का शब्दभंडार
६.२.१.१ जनपदीय या स्थानीय शब्द
६.२.१.२ संकर शब्द
६.२.१.३ तत्सम शब्द
६.२.१.४ विदेशी शब्द
६.२.२ शब्द संरचना
६.२.३ वाक्य प्रयोग
६.२.४ शिल्प का वाक्य-प्रयोग
६.२.५ भाषा की आलंकारिता
६.२.६ भाषा की लाक्षणिकता
६.३ शुक्ल जी की शैली
६.३.१ व्यंग्य शैली
६.३.२ विश्लेषणात्मक शैली
६.३.३ यथार्थ शैली
६.३.४ भावात्मक शैली
६.३.५ नाट्य शैली
६.३.६ पूर्वदीप्ति शैली
६.३.७ चेतनाप्रवाह शैली
६.३.८ डायरी शैली
६.३.९ पत्रात्मक शैली
६.३.१० किस्सागोई शैली
६.३.११ निवेदनात्मक शैली
६.३.१२ तर्क शैली
६.३.१३ चित्रात्मक शैली
६.३.१४ प्रतीकात्मक शैली
६.४ श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों का शिल्पगत वैशिष्ट्य

६.० श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों का शिल्पगत वैशिष्ट्य

६.१ प्रस्तावना

साहित्य में वस्तु तत्व की भांति कला और शिल्प का भी अपना विशिष्ट महत्व होता है। कोई साहित्यिक कृति वस्तु तथा विचार तत्व की वाहिका होते हुए भी एक कलात्मक इकाई भी होती है। मूलतः वह एक कलात्मक सृष्टि ही है, जो कलाकार की अपनी संवेदनाओं, अनुभवों तथा चिंतन को इस रूप में पाठकों तक संप्रेषित करती है कि पाठक सहज ही उससे एक तादात्म्य का अनुभव करता हुआ इच्छित आनंद तथा संतोष प्राप्त करता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि कला के आवरण में प्रस्तुत की गई संवेदनाएँ तथा विचार कला ही साहित्य को साहित्य बनाते हैं और उसे स्थायी महत्व भी प्रदान करते हैं। साहित्य के अंतर्गत कला और शिल्प दोनों की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

भाषा अभिव्यक्ति का मूल साधन है। भावों को प्रकट करने की स्थिति भाषा से मिलती है। मनुष्य के सफल उद्घाटन एवं अभिव्यक्ति के लिए साहित्य की रचना करते समय साहित्यकार को शिल्प का सहारा लेना पड़ता है। साहित्य के शिल्प के अंतर्गत उन सभी विधाओं, नियमों, ढंग का समावेश हो जाता है जिनकी सहायता से सर्जक किसी घटना, पात्र - कथोपकथन अथवा दृश्य और परिवेश का सजीव वर्णन प्रस्तुत करता हुआ मानवजीवन के किसी विशिष्ट पहलू पर प्रकाश डालता है। साहित्य जगत में शिल्प का तात्पर्य कलापक्ष है। इसके अंतर्गत भाषा, शैली, छंद - अलंकार, प्रतीक, बिम्ब आदि का अध्ययन किया जाता है। उदात्त भावों की अभिव्यक्ति के लिए उदात्त भाषा - शैली, शिल्प सौष्ठव की आवश्यकता होती है।

कला और शिल्प के बल पर श्रेष्ठ साहित्य की रचना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार कोरा अनुभव तथा चिंतन भी लिपिबद्ध होकर श्रेष्ठ साहित्य की संज्ञा प्राप्त नहीं कर सकता। साहित्य में वस्तु और शिल्प का एक महत्वपूर्ण स्थान है। प्रतिभा के साथ-साथ कुशल शिल्प का होना बहुत आवश्यक है। शिल्प विहीन प्रतिभा उत्कृष्ट रचना का सृजन करने में असमर्थ

हैं। ऐसी प्रतिभा उस कुशल कारीगर के समान है जो औजार न होने के कारण अपनी कारीगरी दिखाने में असमर्थ है। साहित्य में कला और शिल्प का गहरा सम्बन्ध है।

शिल्पगत वैशिष्ट्य की बात करें तो इसमें शैली का महत्वपूर्ण स्थान है। साहित्य में शैली की महत्ता की एक अखंड प्राचीन परम्परा है। संस्कृत विद्वानों ने शैली को 'रीति' कहा है। आचार्य वामन ने 'काव्यालंकार सूत्र' में 'रीति' का विश्लेषण करते हुए उसे 'विशिष्ट पद-रचना' कहा है। आधुनिक काल में इसे शैली-अंग्रेजी 'स्टाइल' का यथार्थ मान लिया गया है। विशिष्ट प्रयोगों की भिन्नता के कारण प्रत्येक कृति दूसरी से अलग दृष्टिगत होती है और साहित्य में इसी पद्धति को भाषा-शैली मान लिया गया है। लक्षणा एवं व्यंजना के प्रयोगों द्वारा औचित्य का निर्वाह करने के कारण शैली को गरिमा प्राप्त होती है। प्रत्येक साहित्यकार प्रयत्नशील रहता है कि उसकी लेखन शैली में नवीनता और मौलिकता के साथ-साथ उसकी अपनी खास विशेषता भी हो। अतः वह अपनी शैली के प्रति अत्यधिक सजग रहता है।

उपन्यास मानव जीवन की व्यापक अनुभूतियाँ उसमें न यथार्थ द्वारा मुखर करता है। इसलिए साधारणतया उसमें न तो काव्य की धनीभूतता होती है और न कहानी की गतिशीलता; न नाटक का रसमय नाट्य होता है और न निबन्धों की-सी शिथिलता। परन्तु इन सबका सम्यक् आदिष्कार उसमें अवश्य उपस्थित रहता है। इन सबके बावजूद उसमें सरसता, रोचकता एवं भावुकता को प्रकट करने का काम शैली करती है। वस्तुतः शैली पर ही उपन्यास की अत्यधिक सफलता निर्भर करती है।

सामान्य रूप से उपन्यास के वर्णन के अंतर्गत परिगणित की जानेवाली सभी पद्धतियाँ शैलियाँ ही हो सकती हैं अर्थात् वर्णनात्मकता के जो विविध रूप हैं उतनी ही उपन्यास की शैलियाँ हो सकती हैं। उपन्यासों की विशिष्ट गरिमा, रोचकता तथा भावुकता को बनाए रखने के लिए उनमें एक ही प्रकार की शैली का प्रयोग नहीं किया जा सकता। एक-सी शैली-प्रयोग के

कारण पाठकों के मन में ऊब तथा अरुचि पैदा होने का खतरा बना रहता है। बहुधा इसी को ध्यान में रखते हुए शुरु से आज तक युगीन आवश्यकताओं के अनुसार उपन्यास की शैली में विविध प्रकार के नए-नए प्रयोग किए गए हैं।

हिन्दी उपन्यास के लेखन में अनेक शैलियों का बड़ी खूबी से उपयोग किया गया है और अनेक नवीन शैलियों का प्रस्फूटन भी हो रहा है। शैली के विविध प्रकारों में भावात्मक, मनोविश्लेषणात्मक, हास्य-व्यंग्यात्मक, पत्रात्मक डायरी, लोक-कथात्मक, चेतनात्मक आदि का उल्लेख किया जाता है किन्तु प्रधान रूप से शैलियों के प्रकार हैं- वर्णनात्मक, आत्मनिवेदनात्मक, फ्लैश बैक, विश्लेषणात्मक तथा आंचलिक इन सबके बावजूद भी ऐसी अनेक शैलियों में उपन्यास लिखे जा रहे हैं जिनका नामाभिधान फिलहाल असम्भव-सा प्रतीत होता है। साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों की शैली में नवीनता और विविधता के साथ-साथ बिम्ब, प्रतीक, जटिल भावबोध आदि के प्रचुर प्रयोग से उपन्यासों की कलात्मकता में अभिवृद्धि ही हुई है।

शिल्पगत वैशिष्ट्य में भाषा शिखर पर रही है। उपन्यास की रचनाशीलता में भाषा का स्थान केन्द्रीय होने के कारण उसकी महत्ता अपरम्पार है। भाषा की सर्जनात्मक शक्ति कभी-कभी इतनी जबरदस्त होती है कि केवल उसके ही बल पर उपन्यास की शैली का एक स्वतंत्र रूप दृष्टिगोचर होता है। सही अर्थों में उपन्यास को गतिशीलता, अर्थवत्ता तथा मूल्यवत्ता प्रदान करने के कार्य में भाषा अहम भूमिका अदा करती है। शब्द भाषा के मूलाधार है और भाषा मनुष्य की मनोभावनाओं का अभिव्यंजन करनेवाले उन साधनों में प्रमुख है, जिनका आधार मानसिक है। भाषा मनुष्य के आन्तरिक भावों को वहन करती हुई उनका संप्रेषण भी करती है, इसलिए तो भाषा को 'भाववाहिनी' कहा गया है। उपन्यासकार अपनी वर्णन-शैली तथा पात्र अपने संवादों में भाषा का प्रयोग करते हैं। सभी उपन्यासों में भाषा का रूप एक-सा न होकर भिन्न-भिन्न प्रकार का रहता है।

आधुनिक उपन्यासकारों का मुख्य मंतव्य भाषा को किसी शाश्वत शास्त्रीय नियम के अनुसार प्रांजल परिमार्जित रखना नहीं है किन्तु

भाषा को वह एक जीवन्त, मांसल एवं लचीले माध्यम की भाँति मानता है, जिसे आवश्यकतानुसार अथवा स्थितियों के अनुरूप प्रयुक्त किया जा सके।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि किसी उपन्यास की श्रेष्ठता उसके वस्तु, कला और शिल्प के संतुलित समन्वय पर निर्भर करती है।

६.२ शुक्ल जी की भाषा

बाबू श्रीलाल शुक्ल का अनेक भाषाओं पर अधिकार है, अवधी, हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी आदि। मगर उनका गद्य हिन्दी का विशुद्ध गद्य है। वे हिन्दी गद्य की ठेठ जातीय परम्परा के प्रति उत्तरदायी और आत्मसजग हैं। डॉ. परमानंद श्रीवास्तव के अनुसार श्रीलाल शुक्ल “एक सार्थक जटिल और अंधेरी दुनिया को चित्रित करने के लिए भी वे सीधी स्पष्ट भाषा के विन्यास पर निर्भर है। जानबूझकर जटिल बनायी गयी भाषा पर श्रीलाल शुक्ल का कठोर एतराज जाना पहचाना है, यद्यपि विन्यास या लहजें में वक्रता विदग्धता उनका अपना कौशल है। क्षुद्र साधारण, गहन और उदात्त जहाँ मिलते हैं, वहीं हैं श्रीलाल शुक्ल की औपन्यासिकता का बीज भाव।”^१ इस तरह अपनी भाषा के माध्यम से लेखक जब ईमानदार होगा तो सच्चा यथार्थ, संवेदनशीलता के साथ अपनी भाषा में दर्ज करेगा।

उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल का अस्तित्व आयाम विशाल है, अनेक भौगोलिक क्षेत्रों, प्रदेशों से संबंधित है। इसीलिए उनकी भाषा में वैविध्य है। वे जिस जमीन का यथार्थ व्यक्त करना चाहते हैं तो उसे उस प्रदेश की भाषा में ही अभिव्यक्त करते हैं। उनके उपन्यासों में भाषा के अनेक सर्जनात्मक प्रयोग प्रस्तुत हैं। उर्मिल कुमार के अनुसार “उनमें भाषा का शालीन संस्कार है। सूक्तियुक्त टिप्पणियों या टकसाली मुहावरों से श्रीलाल शुक्ल सतर्क रहे हैं।”^२ स्पष्ट है कि श्रीलाल शुक्ल का सबसे बड़ा बल है भाषा। भाषा में शब्दों का चयन और जातीय गुण से उनके शब्द अपने अर्थ से ज्यादा अपना आंतरिक मर्म उपस्थित करते हैं। वे दैनिक जीवन को व्यंग्य के माध्यम से शब्दों और वाक्यों में प्रस्तुत करते हैं। उनकी रचनाओं में व्यंग्य एक तकनीक तथा एक शैली के रूप में सामने आता है। उनके पास वर्णन चित्रों की अद्भूत

क्षमता है और विलक्षण भाषा संवेदना है। वे हिन्दी में शब्दों की विलक्षण शक्ति का पूरा इस्तेमाल करते हैं। यह कौशल प्रायः भिन्न रूपों को अनपेक्षित ढंग से एक साथ रखना उनके उपन्यासों की सफलता का एक महत्वपूर्ण तत्व है। इस सम्बन्ध में दूधनाथ सिंह कहते हैं कि- “श्रीलाल शुक्ल एक व्यंग्यकार की भाषा का इस्तेमाल करते हैं क्योंकि कथा के भीतर वैसी परिस्थितियाँ हैं। भाषा ही हमारे देखने के ढंग यानी दृष्टिकोण को निर्धारित करती है।”^३

उपन्यासों के चरित्रों से उनके धर्म, जाति, वर्ग, लिंग क्षेत्र आदि के चरित्रों करानेवाली भाषाएँ और बोलियों का प्रयोग उपन्यासकार करते हैं, याने चरित्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया जाता है। श्रीराम त्रिपाठी के अनुसार- “वातानुकूल भाषा का मतलब है, ऐसी भाषा जो पात्र को मानसिक, बौद्धिक, सांस्कृतिक एवं रुचि-अरुचियों के एक समुच्चय के रूप में अभिव्यक्त कर दे। ऐसा पात्र, जो वास्तविक रूप से इस संसार में न होते हुए भी अपने होने को साबित कर दे।”^४

बाबू श्रीलाल शुक्ल जी ने पात्रों के चरित्र, मानसिकता, सामाजिक स्तर, सामाजिक संबंध आदि के अनुसार पात्रों की भाषा प्रयुक्त की है। उन्होंने परिवेश को महत्व देकर उसे यथार्थानुकूल भाषा द्वारा प्रस्तुत किया है। जिससे पात्रों के शिक्षा-स्तर, संस्कृति, पदाधिकार आदि का परिचय मिलता है।

शुक्लजी के उपन्यासों में सुशिक्षित व्यक्ति की भाषा अंग्रेजी मिश्रित है। अशिक्षितों की भाषा प्रायः बोलचाल की या विशिष्ट आंचल या क्षेत्र की है। भाषा पात्रों के अनुरूप होने के कारण पात्रों का चरित्र अपेक्षातया अधिक स्वाभाविक बन पड़ा है। ‘सूनी घाटी का सूरज’ उपन्यास में अमवदअली रामदास को भूत-प्रेत के बारे में बताता है, जिससे उसके भीतर गहरा बैठा अंधविश्वास व्यक्त होता है “बरमराक्षस लग जाए पर खवीस से किसी का पाला न पड़े।”^५

‘अज्ञातवास’ उपन्यास में गंगाधर एंड कम्पनी को ग्रामीण गानेवाले लोगों से गीत सुनते हुए आनंद आता है, पर उनके मुँह से बदबू आती

है, तब गाने वालों ने कहा “ठीक बात है सरकार, हम लोग गँवार आदमी, कायदा-बेकायदा क्या समझे ? मगर सरकार मर्द बच्चा की आवाज चार कोस तक चली गई तो कौन सा हर्ज हो गया?”^६

‘राग दरबारी’ उपन्यास में श्रमिक वर्ग का रिक्शा वाला प्रस्तुत है। उसकी भाषा है- “ये गोंडा - बहराइच और इधर-उधर के रिक्शा वाले आकर यहाँ का चलन बिगाड़ते हैं। दायें-बायें की तमीज नहीं। इनसे ज्यादा समझदार तो भूसा-गाड़ियों के बैल होते हैं। बिल्कुल हूश हैं। अंग्रेजी बाजारों में बिरहा गाते निकलते हैं। मोची तक को रिक्शे पर बैठाकर उसे हुजुर, सरकार कहते हैं।”^७ इस तरह रिक्शा वाले के माध्यम से रिक्शा व्यवसाय करने वाले की मानसिकता एवं सामाजिक स्थिति उनकी भाषा द्वारा स्पष्ट की है। स्थानीय रिक्शा वाला बाहर से आने वाले रिक्शा वालों को हिकारत भरी नजर से देखता है। दोनों समव्यवसायी हैं, किन्तु स्थानीय रिक्शा वाला बाहरी प्रदेशों से पेट भरने के लिए आने वाले रिक्शा वालों को अपनी बराबरी का नहीं मानता, बल्कि उसे निम्न बताकर अपने ऊँचे होने का अंह दिखाता है।

‘आदमी का जहर’ उपन्यास में पुलिस विद्यानाथ की भाषा है- “यह ठीक है। इस सिलसिले में हर छोटी-सी-छोटी घटना का और टाइम का ब्यौरा आप तैयार करा लें। वैसे हमारे इंस्पेक्टर आपके जूनियर डॉक्टरों से मिलकर कुछ बातें नोट कर लाये हैं।”^८ इससे पुलिस के अंदाज का पता चलना।

‘सीमाएँ टूटपी हैं’ उपन्यास में वकील की भाषा उसकी व्यावसायिकता को स्पष्ट करती है। “मुल्जिम के निर्दोष साबित होने पर उसे छोड़ा जा सकता है, चाहे वह सबूत नाटकीय स्थिति में ही क्यों न मिला हो। अपील तक में अदालत कोई भी नया सबूत ले सकती है।”^९ इस तरह वकील कानूनी बातों को स्पष्ट करता है।

‘मकान’ उपन्यास में निर्माण-निगम के आवास योजना के अफसर की भाषा है “दफ्तर के वक्त जुलूस निकालते हैं, काम ओवरटाइम

लेकर करना चाहते हैं।”^{१०} इस प्रकार अफसर का कर्मचारियों के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट है।

‘पहला पड़ाव’ उपन्यास में मकान पर काम करनेवाली मजदूरन जसोदा की भाषा- “मिस्त्री, बोल दिया है। पीछे न पड़ो, नहीं तो उठकर तुम्हारी वसूली तुम्हारे मूँह में ठूस दूँगी।”^{११} इससे जसोदा की हिम्मत और मजबूरी, गरीबी में भी शीलाचार को बनाए रखने की नैतिक दृढ़ता मिस्त्री को दी गयी धमकी से प्रस्तुत हुई है।

‘बिस्रामपुर का संत’ उपन्यास में मुख्यमंत्री की राजनीतिक भाषा स्पष्ट है- “बजट अधिवेशन में कुछ ही दिन रह गये हैं। संयुक्त विद्यामंडल को संबोधित करते समय महामहिम को बिलकुल स्वस्थ होना चाहिए। सड़े टमाटर और अंडो का डर नहीं है पर विपक्ष के पास कागजों का पुलिंदा भी वजनी होगा।”^{१२} यहाँ मुख्यमंत्री का विपक्ष के प्रति डर प्रकट है।

इस तरह सभी पात्रों की भाषा पात्रानुकूल है। यह भाषा पात्रों की मानसिकता को व्यक्त करती है, उनके व्यवसायों का, व्यावसायिक प्रवृत्तियों का परिचय देती है। इस प्रकार पात्रानुकूल भाषा द्वारा एक ओर पात्र का व्यक्तित्व निर्माण होता है, तो दूसरी ओर विषयवस्तु और कथ्य के अनुकूल परिवेश तथा स्थितियों का निर्माण भी होता है।

६.२.१ शुक्ल जी का शब्दभंडार

श्रीलाल शुक्ल जी ने राजनीति के दुष्प्रभाव से प्रभावित स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण समाज एवं ग्राम्य जीवन का यथार्थ प्रस्तुत करने के लिए देशज शब्द तथा जनपदीय बोली के शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया है। विभिन्न जातियों, प्रदेशों तथा देशों के लोगों के मिलने के कारण भाषाएँ आपस में मिल जाती हैं। विविध भाषा-भाषी लोग परस्पर शब्दों का आदान-प्रदान करते हैं। इसमें कुछ जनपदीय तथा कुछ विदेशी शब्दों का आगमन भाषा में होता है।

श्रीलाल शुक्ल की औपन्यासिक भाषा में प्रस्तुत शब्दों का वर्गीकरण इस प्रकार है-

६.२.१.१ जनपदीय या स्थानीय शब्द -

जनपदीय या स्थानीय शब्द को देशज ही कहा जाता है। जैसे - गुलदावादी, लौंडिया, मोहतरमा, अलमारी, रपट, मार्चुअरी, परमेसुर, गंजेड़ी, तुक, पच्छिम, चालान, वमूजिव, सिकहर, जस, वमचख, कौडिल्ला, जानकेंपाऊ, मर्सीनरी, परचून, अफीम, बजरिये, आढ़त, दविश, माफिक, मिसरे, पन्साखा, कमरा, भसाकू, कुतिया, अस्पताल, तीममारखाँ, दरशिकमी, फिस्स, शिरीमानजी, अरदली, जोरू-जाँता, फंटूश, मेटाफर, निस्पिटूर, हाराकिरी, मुचेहटा, आयशा, दलिछर, कंटाप, इदरीस आदि।

६.२.१.२ संकर शब्द -

श्रीलाल शुक्ल जी के उपन्यासों में कुछ संकर-शब्दों का प्रयोग हुआ है। औद्योगिकता और आधुनिकता से बदले परिवेश में भाषा में भी सम्मिश्रण हुआ है। वह एक और परंपरागत लहजा और लफ्ज से बंधी है, तो दूसरी और आधुनिक सभ्यता, शिक्षा, परिवेश आदि से उत्पन्न नये शब्दों से सजी है। ऐसे दोनों शब्द एकत्रित प्रयुक्त करना आज के मनुष्य की बोलचाल की खास शैली है। संकर का अभिप्राय है मिश्रित। जब दो भाषाओं के शब्द मिलकर एक तीसरे शब्द का निर्माण कर लेते हैं, तब उन्हें संकर शब्द कहा जाता है।

शुक्ल जी के उपन्यासों में ऐसे ही शब्दों का प्रयोग है, जो दो भाषाओं के योग से बना हैं। जैसे जोत-जवार, 'जोत' हिन्दी और 'जवार' अरबी शब्द है। पाकेटमार- 'पोकेट' अंग्रेजी और 'मार' हिन्दी का शब्द है। रेलगाड़ी- 'रेल' अंग्रेजी का शब्द और 'गाड़ी' हिन्दी का शब्द है। दलबन्दी- 'दल' हिन्दी का और 'बन्दी' फारसी का शब्द है। जोरू-जाँता, 'जोरू' अरबी और 'जाँता' हिन्दी का शब्द है। तमिल और अंग्रेजी से 'कांजीहाउस' संकर शब्द भी बना है।

६.२.१.३ तत्सम शब्द -

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में प्रयुक्त तत्सम शब्द संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया तथा अव्यय के रूप में मिलते हैं। जैसे- प्रियशिष्या,

सखीमिथः, इति रघुवंश, पवनसुत, सविग्रह दर्प, अवधूत, नैराशं परम, जलवायु, वारि, कुसुम, वधु, जन्तु, शिव, हरि, दंड, मुनि, फल, पुष्प, पुस्तक, जगत, नूतन, पुरातन, सुन्दर, वायुयान, रेखाचित्र, निर्देशक, विलम्ब, काल, पिताजी, राष्ट्रपति, प्रधान, दूध, धाम, अग्नि, रक्त, विद्या, महान, समान, अनुचर, सुखम, प्रकाश-वर्तिका, शयनकक्ष, प्रतीक्षा, महामहीम, कुश-कास, वाटिका, प्रवचन, परामर्श, अमृत, शब्द, अकालवर्षण, आचमन, स्वस्ति, उपचार, सरीसृप, मूषकी, दशमलव, तरुण, लालिमा, पौरुष, साहस, नारी, प्रीत्य, विजयदेवाय, धर्म, केशव, समर्पण, वत्स, आविष्कार, विक्षोभ, हरिस्तथा, हर, विहंग, वयस्क, बुद्धि, शंकर, वसंत, अपराहन, शालभंजिका, शावक, शैल, आश्रम, कला, कामिनी-कदम्ब, हेमवर्णा, रमणी, अनुष्ठुप आदि ।

६.२.१.४ विदेशी शब्द -

श्रीलाल शुक्ल जी अंग्रेजी साहित्यकारों से प्रभावित हुए हैं । अतः उनकी भाषा में कुछ अंग्रेजी शब्दों का आ जाना स्वाभाविक ही है । उन्होंने अनेक वाक्यों की रचना अंग्रेजी शैली के अनुकरण पर की है । कुछ जगह उन्होंने अनेक शब्दों का निर्माण अंग्रेजी शब्दों के आधार पर भी किया है ।

इंजीनियरिंग, ट्रेनिंग, सोसायटी, मनापली, नाइट, मार्निंग, कैबिनेट, सरल, कलेक्टर, मैनुअल, कालंटन, फ्रेंडशिप, डॉक्टर, कंपनी, लाइटर, पेंटिंग, डिजाइन, टेनिस, युनिवर्सिटी, लोकल, मोटर, स्टाफ, कोटेशन, कल्चर, नर्स, टाइम, बेसिक, वाइफ, थियेटर, सरप्लस, इंडोलोजी, कॉपीराइट, बेडरूम, गैलरी, रिसीवर, रिसर्च, माइग्रेशन, टाइपिस्ट सेक्टर, फोटोग्राफर, डायामीटीज, पिक्चर, कैप्टन, ऑनर, चीफ, सीनियर, मिनिस्टर, लॉजिक, आउटफिट, रिपोर्टर, सोशल, एडवोकेट आदि ।

अरबी के शब्दों में- मुआयना, हिकारत, किफायती, तरजीह, शरीफ, आम, जज, इजलास, अदालत, तरजीह, खालिस, इत्ती, जलालत, इस्तगासा, मुस्तगीस, तखलिया, तकाबि, तसदीक, इफरात, हाजत, ताईद, मुखबिर, मसनद, मुगालना, जहीन, हलफ, वालिद, महरावदार,

फुरसत, लिहाफ, ताबड़तोब, तफसील, नसीहत, खलल, अखबार, मुबारक, जहन्नुम, इफरात, हकिम, मुसाफिर, जानिब, उजरत, जालिम, तीसमारखाँ, इजलास, मजलूस, तस्दीक, लावारिस, जिस्म, यकीनन, इलाफा, गुलाम, सलतन, काबिल, इजाजत, करमायशी, तासीर, जवार, अमीन, मुलक, जाहिल, जुर्माना, खुलासा, खौफनाक, आफत, इम्तहान, तरकीब आदि।

फारसी भाषा के शब्दों को देखे तो- सरपरस्त, बजाहिर, फिजा, हरकारा, अफसर, सबाब, रंजिश, खुदगर्ज, जुबान, तनखाह, तहमत, आस्तीन, खमीर, चश्मा, पैकरमा, दफा, तहमद, जहारूम, सोहबत, मानिंद, जुबान, दोयम, फरेब, रसीद, आफताब, दस्तखत, पोशीदा, बेफिक्र, हर्गिज, सैलाब, खुदकाशत, गिरिफत, नासाजी, पुखागी, बदमिजाजी, जहाँपनाह, शहजादा, माफमानी आदि।

६.२.२ शब्द संरचना -

शब्द संरचना का आधार विभिन्न ध्वनियों तथा ध्वनि प्रतीकों का अनुकूल, सुसंगत, रचनात्मक शिल्प है। भाषा की अपनी व्यवस्था होती है तथा उसी व्यवस्था में बंधकर भाषा कार्य करती है। रचना के द्वारा किये गये विचलन, विपथन समांतरित एवं विरल प्रयोग कथ्य को साभिप्राय रूप से खोलते हैं।

जब रचनाकार शब्द स्तर भाषा की मानस व्यवस्था को तोड़ता है, वहाँ शब्दस्तरीय विचलन साभिप्राय हो उठता है और उसके द्वारा किया गया शब्दस्तरीय विशिष्ट प्रयोग अग्रप्रस्तुत होकर कथ्योन्मेष में सहायक सिद्ध होता है। “पूरे गाँव में चोरी की चर्चा है। जागते हुए सोना चाहिए।”^{१३} यह शब्द स्तरीय विचलित प्रयोग है। इसमें जगाने के लिए या सावधानी बरतने के लिए जागते हुए सोने का विचलन किया गया है।

शब्दस्तरीय विपथन वहाँ होता है, जहाँ लेखक अपने सहज स्वीकृत प्रयोग का अतिक्रमित प्रयोग करता है। उदाहरण के लिए- “उनके कॉलेज या दफ्तर पहुँचने का और वहाँ से घर के लिए चल देने का वक्त प्रिंसिपल या दफ्तर के हाकिम नहीं तय करते थे, इसका फैसला रेलवे टाइम

टेबल करता था।”^{१४} लेखक ने लोगों के घर दफ्तर पहुँचने का समय रेलवे टाइम टेबल के माध्यम से स्पष्ट किया है।

६.२.३ वाक्य प्रयोग -

उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल ने वाक्य रचना में विविध शैली प्रस्तुत है। उपन्यासों की अधिकांश वाक्यावलियाँ संगठित, प्रवाहमयी तथा प्रभावशाली हैं, जिनमें वाक्य- सृष्टि- में लेखक की सशक्तता का बोध होता है। उपन्यासों में लेखक ने यह प्रयास किया है कि जो कुछ कहा जाए, छोटे-बड़े वाक्यों में कहा जाए। इन छोटे-बड़े वाक्यों का सौन्दर्य उपन्यासों में बरकरार है।

(१) लघु कथन - “बता दो।”^{१५} यह कथन एक महत्वपूर्ण बात बताने का संकेत देता है। प्रेमवल्लभ, संतोष को एक महत्वपूर्ण बात की जानकारी देना चाहता था।

(२) बड़ा कथन - श्रीलाल शुक्ल जी ने छोटे-छोटे वाक्यों के साथ बड़े वाक्यों का प्रयोग भी किया है। यथा- “इस परिप्रेक्ष्य में दुरबीनसिंह ने अपने इलाके में चोरी करते समय घर में जग जानेवालों को पीटने का चलन चलाया और यह तरीका उनके समसामयिक चोरों में बड़ा ही लोकप्रिय हो गया, इस तरह दुरबीनसिंह ने चोरों और डकैतों के बीच के फासले को कम करने का एक बुनियादी काम किया और उनकी पद्धतियों में क्रांतिकारी परिवर्तन किये।”^{१६} इस प्रकार परिच्छेदात्मक बड़े वाक्यों का प्रयोग बहुत कुशलता के साथ किया गया है।

(३) मिश्रित कथन - इसमें एक प्रधान उपवाक्य होता है। तथा शेष उपवाक्य उसके आश्रित होते हैं। दोनों प्रकार के वाक्य एक दूसरे के पूरक या सहायक होते हैं। इनका प्रयोग शुक्ल जी ने अधिकांश किया है- नारायण “मेरी मनोदशा को प्रतीक रूप से व्यक्त करने की यह निकृष्ट पद्धति होती, पर तथ्य के रूप में यह बिल्कुल सही होता, क्योंकि रेडियों स्टेशन से जुड़ी विचार-संगति के कारण मैं अब सचमुच ही सितार की एक गत सुनने लगा था।”^{१७} इसमें नारायण की मनस्थिति स्पष्ट होती है।

(४) निषेधात्मक कथन - इस कथन से क्रिया का निषेध व्यक्त होता है। शुक्ल जी के उपन्यासों में स्थान-स्थान पर निषेधात्मक वाक्यों का प्रयोग हुआ है। “क्या करेगा मुंसी मेरा बच्चा पढ़कर ? कुदाल भी नहीं चला पाएगा। तुम्ही इतना पढ़-लिख गए तो उससे क्या हुआ ? मजूरी लायक भी नहीं रहे।”^{१८} इस वाक्य से स्पष्ट है कि शिक्षित बेकार युवक मजदूरी के लायक भी नहीं रहता।

(५) प्रश्नवाचक कथन - इसमें प्रश्न किये जाने का बोध होता है। जैसे- “नेता ने लंगड़ की और मुँह करके पूछा, “तुम्हारा असली नाम क्या है ?”^{१९}

श्रीलाल शुक्ल की वाक्य रचना में विशेषण देने की प्रवृत्ति है। इसका कारण यह है कि वे वर्णित वस्तु को अधिक स्पष्ट धनीभूत एवं प्रभावशाली बनाना चाहते हैं। जैसे- “सिर्फ चेहरा और ओंठ असली सुंदरी के है।”^{२०} इसमें सपने में जयश्री को देखा है, पर उसका सौन्दर्य सुंदरी के माध्यम से प्रभावशाली बनाया है।

६.२.४ शिल्प का वाक्य-प्रयोग

लेखक जब वाक्य संरचना के मानक को तोड़ता है, तो वाक्य का रचनागत विशिष्ट प्रयोग बन जाता है। डॉ. नरेन्द्र सैनी के अनुसार साहित्यकार- जब वाक्य संरचना के मानक को तोड़ता है, वह संरचना वाक्यस्तरीय विचलन के अंतर्गत कथ्य को खोलती है। इसके अतिरिक्त विपथित, समांतरित एवं विरल वाक्य रचनागत विशिष्ट प्रयोग गहन संरचना को खोलने की दृष्टि से साभिप्राय बन जाते हैं।

(१) वाक्यस्तरीय विचलन - यह वाक्यस्तरीय विचलन विघटित वाक्यांश तथा क्रमभंग के अंतर्गत विश्लेषित किया जाता है। जैसे- “आप बाँभन है और मैं भी बाँभन हूँ। नमक से नमक नहीं खाया जाता।”^{२१} यहाँ शब्द को विघटित किया है।

(२) वाक्यस्तरीय विपथन - अपनी रचना की आधार भाषा को अतिक्रमित कर जब रचनाकार किसी अन्य भाषा का प्रयोग करने लगे, वहाँ वाक्यस्तरीय विपथन होता है। जैसे- “तुम बंगाली लोग भौत जल्दी फ्रस्टेटेड हो जाता।”^{२२}

इस वाक्य से उपन्यास में स्वनिर्मित वाक्य संरचना को तोड़ा है, अतः यहाँ लेखक द्वारा वाक्य स्तर पर विपथन का प्रयोग हुआ है।

६.२.५ भाषा की अलंकारिता

भाषा के प्रयोग में अलंकार सौन्दर्य का पर्याय है। साहित्य में मूल विषय की अतिशयोक्ति भी अलंकार है। अलंकार- शास्त्रियों ने अनेक शब्दालंकारों और अर्थालंकारों का विशद विवेचन किया है। अलंकृत भाषा साहित्य के कलापक्ष की एक विशेषता है। लेखक बोलचाल की सामान्य भाषा के माध्यम से विशिष्ट और नूतन रूप प्रदान करता है। अलंकृत भाषा से साहित्य में आल्हादकता उत्पन्न होती है, अतः अलंकार रस के पोषक माने गए हैं।

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों की भाषा अलंकारिक सौन्दर्य से सम्पन्न है। उसमें ‘उपमा’, ‘उत्पेक्षा’, ‘रूपक’, ‘मानवी करण’ आदि अलंकारों के अनेक उदाहरण विद्यमान हैं। ‘उपमा’ और ‘उत्पेक्षा’ का बार-बार प्रयोग लेखक करते हैं। उन्होंने प्रकृति और सामाजिक जीवन दोनों से ही उपमाओं का चयन किया है।

श्रीलाल शुक्ल का ‘सूनी घाटी का सूरज’ उपन्यास का रामदास, मुंशी, नवरतनलाल के यहाँ अभावग्रस्त स्थिति में पढ़ाई कर रहा है, उसके सामने संकट बढ़ते ही जाते हैं। इन संकटों के लिए जहरीले और अशुभ प्राणियों की उपमा देते हुए रामदास अपनी असुरक्षितता, भय अनुभूत करता है- “मैं कुँ की जगत पर खड़ा रहा। न जाने कितने साँप, बिच्छु, विषखोर, खनखजूरे, चमगादड़, लोमड़ी, और सारस इस कुहासापूर्ण ठंडी रात में अपने अस्तित्व का परिचय दे रहे हैं। मुझे आसपास कुछ अवनवौ-सा लगा।”^{२३}

शुक्लजी का ‘अज्ञातवास’ उपन्यास में रजनीकांत, राजेश्वर द्वारा बनाया गया चित्र देखकर अतीत में खो जाता है और वर्तमान को लेकर पछताता है। उसकी मनः स्थिति का वर्णन अंधेरे, डोले के माध्यम से प्रस्तुत है- “कभी-कभी जान पड़ता है, चारों ओर से फंसा गया हूँ। सामने उजाला था। उसे छोड़कर जहाँ आ गया हूँ, वहाँ अंधेरा है, चारों ओर पेड़ों के धने झुरमुट हैं जो राह रोकते हैं, और अब सोचने की जगह भी नहीं। वहाँ भी काले

जंगल हैं। सोचने की जो जगह पहले घेर चुका था, वे जंगल उस पर भी हमलावर हो रहे हैं। कुछ झाड़ियाँ- सी उग आई हैं। कंटीली घास पनप रही हैं।”^{२४}

‘राग दरबारी’ उपन्यास में अराजकता, अव्यवस्था से परिपूर्ण शासन-व्यवस्था को दर्शाने के लिए ट्रक के गियर की उपमा दी है- “घरघराकर ट्रक चला। शहर की टेढ़ी-मेढ़ी लपेट सु फुरसत पाकर कुछ दूर आगे साफ और वीरान सड़क आ गयी। यहाँ ड्राइवर ने पहली बार टॉप गियर का प्रयोग किया, पर वह फिसल-फिसलकर न्यूट्रल में गिरने लगा। हर सौ गज के बाद गियर फिसल जाता और एक्सिलेटर दबे होने से ट्रक की घरघराहट बढ़ जाती, रफतार धीमी हो जाती। रंगनाथ ने कहा, ड्राइवर साहब, तुम्हारा गियर तो बिल्कुल अपने देश की हुकुमत-जैसा है।”^{२५} इससे देश की शासन व्यवस्था की विसंगति स्पष्ट होती है। यहाँ जो उपक्रम, योजनाएँ, जनता के हित में बनी, वह फिसलकर शोषण को बढ़ावा देने में सहायक हुई हैं।

‘आदमी का जहर’ उपन्यास में रूबी को जब इंस्पेक्टर सिद्दीकी कहता है कि संदीप आपका ही लड़का है। उस समय की रूबी की मनःस्थिति स्पष्ट है- “वह किसी पत्थर के टुकड़े को किसी स्विमिंग-पूल में डूबता हुआ देख रहा हो और उसके तह में जाकर बैठ जाने का इन्तजार कर रहा हो। रूबी की आँखें फटी-सी रह गयी।”^{२६} इससे स्पष्ट है कि पत्थर का टुकड़ा इंस्पेक्टर की कठोर, धूर्त आँखें हैं, जो रूबी के मन का भेद जानने के लिए उतावला है।

श्रीलाल शुक्ल का ‘पहला पड़ाव’ उपन्यास की जसोदा विधवा है। विधवा स्त्री को समाज में अनेक समस्याओं, बंधनों का सामना करना पड़ता है। जो समाज बंधन निर्माण करता है, वही समाज निराधार विधवा को अपनी उपभोग्या बनाने के लिए लालायित होता है। इस जुल्म को धिक्कारते हुए बूढ़े मजदूर ने समाज की कुप्रवृत्ति पर क्रोध करते हुए कहा है कि वह “ठीक ही कर रही है। देवर के साथ घर-बैठा कर ले तो उसका पाप कटे। यहाँ रहेगी तो निठल्ले उसे चैन से बैठने थोड़े ही देंगे। कातिक के कूकुरों की

तरह उसे हर जगह पिछुआए रहते हैं।”^{२७} इससे एक विधवा की असहायता, विवशता और निर्दयता स्पष्ट होती है।

‘बिस्रामपुर का संत’ उपन्यास में कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह राजनीतिक दाँवपेंच लड़ते हुए जनता के सामने हर समय अपनी प्रतिभा उज्ज्वल बनाए रखना चाहते हैं। उनके ढोंग पर प्रतिक्रिया प्रकट करते हुए लेखक ने विज्ञापन की उपमा प्रयुक्त की है- “कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह को मालूम था कि इधर कुछ दिनों से अपनी छवि चमकाने के लिए वे कुछ नयी-नयी तरकीबें दिखा रहे हैं और दूरदर्शन तथा आकाशवाणी उन्हें नये डिटर्जेटों की तरह प्रचारित कर रही हैं।”^{२८}

‘बिस्रामपुर का संत’ उपन्यास में कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह जयश्री को पत्र लिखकर उसके सौन्दर्य के प्रति अपनी भावना प्रकट करते हैं- “तुम्हारी यह मादक चितवन, तुम्हारी यह सलज्ज मुस्कान।”^{२९}

६.२.६ भाषा की लाक्षणिकता

लक्षणा शक्ति के द्वारा लक्ष्यार्थ की जानकारी प्राप्त होती है और लक्ष्यार्थ को प्रकट करने वाले शब्द ‘लक्षक’ या ‘लाक्षणिक’ शब्द कहलाते हैं। जहाँ मुख्यार्थ में बाधा उपस्थित होने पर किसी रूढ़ि के कारण लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाता है, वहाँ रूढ़िमूला लक्षणा होती है। जहाँ मुख्यार्थ में बाधा होने पर लक्ष्यार्थ को ग्रहण करने में कोई प्रयोजन निहित होता है, वहाँ प्रयोजनवती लक्षण होती है। साहित्य की प्रधान भाषा व्यंजनात्मक होती है, उसमें आवश्यकता के अनुसार लाक्षणिकता का प्रयोग किया जाता है। उपन्यासकार लक्षणा का प्रयोग पात्रों के कथोपकथन से मुहावरे और युक्तियों के रूप में करता है।

(१) मुहावरा- मुहावरों के प्रयोग से भाषा की सुन्दरता बढ़ जाती है। उसमें लावण्य आ जाता है। डॉ. रामप्रकाश के अनुसार - “किसी विशेष प्रकार की भाषिक प्रतिक्रिया को कुछ लाक्षणिक, प्रतीकात्मक या आलंकारिक प्रयोग गढ़ लेता है, जो धीरे-धीरे लोगों की वाणी में रूढ़ होकर मुहावरे बन जाते हैं। इस प्रकार, मुहावरे में प्रायः भाषा का लाक्षणिक चमत्कार रूढ़ होकर समाया रहता

है जो लोकजीवन में परम्परा प्राप्त अनुभवों का सार सत्व कहा जा सकता है।”^{३०}

उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल जी ने अपने उपन्यासों की भाषा की सुन्दरता बढ़ाने के लिए तथा उसमें अर्थ को गहराई देने के लिए मुहावरों का अधिकाधिक प्रयोग किया, जिनमें महत्वपूर्ण मुहावरे प्रस्तुत हैं :-

- दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति करना। (सूनी घाटी का सुरज)
- अंधों में काना राजा। (अज्ञातवास)
- बात के बताशे फोड़ना। (रागदरबारी)
- हजार घाटों का पानी पीना। (आदमी का जहर)
- आसमान में बाँस ठोकना। (सीमाएँ टूटती हैं)
- बिना नारी दुखारे। (पहला पड़ाव)
- मैं अपनी नावें जला आया हूँ। (बिस्मामपुर का संत)

श्रीलाल शुक्ल जी ने अपने उपन्यासों में चोटदार मुहावरों का प्रयोग करते हुए, अपनी शिल्पता का परिचय दिया है।

(२) उक्ति-प्रयोग-मुहावरों के समान उक्ति भी भाषा की शक्ति और सौन्दर्य को बढ़ाती है। लेखक उक्ति का प्रयोग करने के लिए एक से अधिक वाक्यों की सृष्टि करते हैं। डॉ.रामप्रकाश के मतानुसार - “ऐसे लोक-कथन जो व्यवहार परंपरा में रूढ़ हो जाने के कारण भाषिक अभिव्यंजना का स्थायी उपकरण बन जाते हैं, लौकोक्ति कहलाते हैं।”^{३१} उसमें ऐसा - काल - सत्य निहीत रहता है, जिसे हर देश युग का समाज स्वीकार करता है।

उपन्यासकार शुक्ल जी ने औपन्यासिक कथ्य की अभिव्यक्ति को कम शब्दों में सारगर्भित एवं प्रभावपूर्ण ढंग से कहने के प्रयोजन से उपन्यासों की भाषा में उक्ति का प्रयोग किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त उक्ति देशज एवं विदेशी भाषा की भी है।

यथा -

- जो खाय चना, सो रहे बना। (सूनी घाटी का सुरज)
- तने में नहीं लत्ता, पान खाय अलबत्तो (अज्ञातवास)

- मुँह में राम बगल में छुरी (रागदरबारी)
- नमक से नमक नहीं खाया जाता है। (रागदरबारी)
- अन्धेर नगरी चौपट राजा। (रागदरबारी)
- गगरी दाना सूद उताना। (मकान)
- सबहिं नचावत राम गोसाईं। (पहला पड़ाव)

६.३ शुक्ल जी की शैली

उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल ने अपने उपन्यासों में कथ्य, आशय तथा मूल संवेदना के अनुरूप ही एक विशिष्ट भाषा का आविष्कार किया है। उनके उपन्यासों में शैलिगत प्रयोग का वैविध्य दिखाई देता है। उनके उपन्यासों में यथार्थपरक या यथार्थवादी शैलियों के प्रयोग की अधिकता है। कुछ जगह भावपक्ष या भावात्मक शैलियों का भी प्रयोग हुआ है। उपन्यासों में प्राकृतिक तथा मानवीय वातावरण के अनेक छोटे-बड़े, हल्के-गहरे रंगों के चित्र और बिम्ब उपस्थित हो जाते हैं।

श्रीलाल शुक्ल उपन्यासों में कहीं हास्य और व्यंग्य शैलियों के द्वारा स्थितियों और पात्रों के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं और कहीं भावातिरेक में आकर प्राकृतिक और मानवीय छबियों में अंकन के लिए भावात्मक शैली का प्रयोग करते हैं। उपन्यासकार ने जिस प्रकार एक नयी यथार्थवादी भाषिक संरचना का निर्माण किया, उसी प्रकार कुछ नयी शैलियों का भी प्रयोग किया है।

उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में हम निम्नलिखित शैलियों का प्रयोग देखते हैं। वह निम्नानुसार है - व्यंग्य शैली, चेतना-प्रवाह शैली, विश्लेषणात्मक शैली, पूर्वदीप्ति शैली, यथार्थ शैली, नाट्य शैली, भावात्मक शैली, डायरी शैली, पत्र शैली, किस्सागोई शैली, निवेदनात्मक शैली, तर्क शैली, बिम्ब या चित्र - चित्रणात्मक शैली, प्रतीकात्मक शैली आदि।

६.३.१ व्यंग्य शैली

व्यंग्य शब्द का अर्थ उसकी व्यंजना वृत्ति द्वारा प्रकट होता है। यह प्रभाव की दृष्टि से अधिक शक्तिशाली होता है। भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार व्यंग्य के उद्भव के मूल में वह शब्द-शक्ति है, जिसे व्यंजना कहा गया है। इसकी व्युत्पत्ति व्यंग्य+यत् = व्यंग्य। व्यंग्य का शाब्दिक अर्थ है - “व्यंजना शक्ति के कारण प्रकट होनेवाला साधारण से कुछ विशिष्ट अर्थ। गूढ़ और छिपा हुआ अर्थ।”^{३२} व्यंग्य का अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द ‘सटायर’ है।

उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल के अनुसार - “भारतीय साहित्य की परम्परा में व्यंग्य अभिव्यक्ति की एक भंगिमा है। अभिधा, लक्षणा, व्यंजना में व्यंजना का प्रयोग करते समय आपका जो आधार होता है वह व्यंग्य है। इस रूप में भारतीय साहित्य में व्यंग्य को कभी वैसी विद्या नहीं माना गया जिस रूप में नाटक या कविता आदि थे। पाश्चात्य साहित्य में जरूर यह एक विधा के रूप में समाप्त हो गया।”^{३३} इस तरह व्यंग्य एक शैली के रूप में है, एक स्वतंत्र विधा के रूप में नहीं।

हिन्दी में व्यंग्य की परम्परा के बारे में कु. आभा भट्ट कहती है - “हिन्दी के विभिन्न युगों के समाज, सामाजिक मूल्यों, प्रतिष्ठा के स्वरूप और मानवीय पीड़ा को समझना होता, जिन साहित्यकारों का उल्लेख किया जा रहा है जो कि व्यंग्य के माध्यम से अपना लक्ष्य प्राप्त करते हैं, तो वे हैं कबीर, भारतेन्दु बाबू, बाल मुकुन्द गुप्त, निराला तथा हरिशंकर परसाई।”^{३४} स्पष्ट है कि साहित्यकार व्यंग्य के माध्यम से साहित्य के एक सामाजिक आशय की पूर्ति करते हैं। श्रीलाल शुक्ल के अनुसार - “व्यंग्य लेखक के मन में एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था का निजी अवधारणा होती है, जिसे अपना आधार बनाकर वह अपने दूषित और दुर्बल समाज के प्रति आक्रोश व्यक्त करता है। यह अवधारणा, यूटोपिया का यह आग्रह ही उसके लेखन के सकारात्मक पक्ष को लोक-स्वीकृति देता है और उसकी भर्त्सनापूर्ण आक्रामकता को न्यायोचित बनाता है।”^{३५} साहित्यकार समाज की विकृतियों और विसंगतियों को पहचान

कर उसे अपना लक्ष्य बनाता है। वह पूर्ण होता है व्यंग्य के माध्यम से। अतः व्यंग्य एक विधा नहीं, शैली है।

आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग अधिक दिखाय देता है। उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल ने स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक विषमताओं, कुप्रथाओं, कुरीतियों, असंगतियों, राजनीतिक पतन पर प्रबल प्रहार किया है। उन्होंने उपन्यासों में व्यंग्य शैली का प्रयोग करके हिन्दी साहित्य के एक सामाजिक आशय की पूर्ति की है। डॉ. परमा श्रीवास्तव के अनुसार - “जिन्दादिली के साथ यथार्थ के जटिल रूपों की आलोचनात्मक समझ ने श्रीलाल शुक्ल को व्यंग्य से बड़ा सर्जनात्मक काम लेने का नया साहस दिया। व्यंग्य कथाएँ भी मिलकर एक जटिल औपन्यासिक संसार बना सकती है पर यह किस तरह सम्भव होता है, इसके लिए श्रीलाल शुक्ल जैसे लेखक का समग्र पाठ जरूरी है।”^{३६}

इस तरह गद्य साहित्य के साथ शुक्ल जी को व्यंग्य लेखन की प्रतिभा ने उपन्यास रचना की और प्रेरित किया है। उनकी भाषा में व्यंग्यात्मकता आ जाना सर्वथा स्वाभाविक है। उन्होंने सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि परिस्थितियों पर व्यंग्य किया है। ‘सूनी धाटी का सूरज’ उपन्यास में राजनीतिक स्थिति को सुरेन्द्र प्रताप बहादुरसिंह के माध्यम से कोलेज की राजनीति का वर्णन व्यंग्य शैली में स्पष्ट है - मेनेजर की पार्टी हेडमास्टर से नाराज है। यह “मेनेजर साला बड़ा खसूट है। कोलेज को अपनी जीविका का साधन बनाए हुए है। हेडमास्टर साहब को अब तक परेशान करता है। फिर भी सच्चाई से वे अपना काम करते चले आ रहे हैं।”^{३७} इस तरह कोलेज की व्यवस्था में राजनीतिक हस्तक्षेप को व्यंग्य शैली में प्रस्तुत किया है।

‘सीमाएँ टूटती हैं’ उपन्यास में चाँद के माध्यम से राजनीतिक लोगों पर व्यंग्य स्पष्ट है - “हर जनतंत्र का फैशन है कि राजनीतिज्ञों को, जो जनतंत्र को स्वरूप देते हैं, झूठा, फरेबी और पाखंडी समझा जाता है। इसे इसी तरह सहजता से लिया है, जैसे हम जहाँ अध्यापकों को शोषित और सन्माननीय समझते हैं। इसीलिए चाँद ने राजनीतिक व्यक्तियों

के लिए जो दो चार भद्दी बातें कहीं, वे अपने-आप में नई न थी, हर तीसरा आदमी ऐसी बातें करता है।”^{३८} यहाँ चाँद के माध्यम से राजनीति पर दार्शनिक विचार स्पष्ट है।

‘अज्ञातवास’ उपन्यास में सामाजिक विषमता को दिखाने के लिए वसंत का लड़का, प्रभा से कहता है, “आप ये गीत क्यों सुनना चाहती है ? हमारा कुछ भी तो आपको अच्छा नहीं लता। तब हमारे ये गीत ही आपको क्यों अच्छे लगते हैं?”^{३९} वसंत के लड़के के माध्यम से शोषक वर्ग पर व्यंग्य दिखाय देता है।

‘रागदरबारी’ उपन्यास में वर्तमान शिक्षा-पद्धति को व्यंग्य शैली में इस प्रकार प्रस्तुत किया है - “वर्तमान शिक्षा-पद्धति रास्ते में पड़ी हुई कुतिया है, जिसे कोई भी लात मार सकता है।”^{४०} स्पष्ट हैं कि हमारी शिक्षा-पद्धति में बदलाव लाना चाहिए।

‘पहला पड़ाव’ उपन्यास में सार्वजनिक निर्माण विभाग के असिस्टेंट इंजीनियर भ्रष्टाचार के कारण ईंट के भट्टों पर मजदूरों का आर्थिक शोषण इस प्रकार करता है - “सरकार उन्हें तनखाह दे रही है, काम नहीं देती, तभी वे अपने आदमियों को सिर्फ काम देते हैं, तनखाह नहीं देते - या कम से कम कोशिश ऐसी ही करते हैं।”^{४१} यहाँ लेखक ने इंजीनियर करारा व्यंग्य किया है।

‘मकान’ उपन्यास में नारायण का सेक्शन ओफिसर दफ्तर आते-आते वह जीवन की जटिलता का बड़े वेग से अनुभव करने लगता है और फिर उस अनुभव के सहारे जीवन को कुछ रोककर, कुछ गाकर झेलने की फिलॉसफी पर मुझे व्याख्यान देता है।”^{४२} यहाँ लेखक ने बड़े अफसरों पर व्यंग्य किया है।

‘रागदरबारी’ उपन्यास में प्रशासनिक व्यवस्था को व्यंग्य शैली में प्रस्तुत किया है - “तनखाह तो दारू-कलियाँ पर रक्व कर रहे हैं और लड़कियों ब्याहने के लिए घूस लेते हैं। एक रिश्वत लेता है तो दूसरा कहता है कि क्या करें बेचारा! बड़ा खानदान है, लड़कियाँ ब्याहनी हैं। सारी बदमाशी

का तोड़ लड़कियों के ब्याह पर होता है।”^{४३} यहाँ लाल फीताशाही पर करारा व्यंग्य किया है।

इसी प्रकार ‘रागदरबारी’ उपन्यास में बुद्धिजीवी लोगों पर व्यंग्य शैली में विवेचन स्पष्ट है - “बुद्धिजीवी होने के कारण अपने को बीमार और बीमार होने के कारण अपने को बुद्धिजीवी साबित करता है और अन्त में इस बीमारी का अन्त फाँफी-हाउस की बहसों में, शराब की बोतलों में, आवारा औरतों की बाहों में, सरकारी नौकरी में और कभी-कभी आत्महत्या में होता है।”^{४४}

६.३.२ विश्लेषणात्मक शैली

उपन्यास में विचारों के विश्लेषण के लिए एक विशेष प्रकार से विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया जाता है। इस शैली को विवेचनात्मक शैली भी कहा जाता है। उपन्यासकार उपन्यास में पात्रों के चरित्र की मानसिकता का, यथार्थ का, शोषण एवं परिस्थितियों का तथा विचारों का विश्लेषण वैज्ञानिक पद्धति से करता है। विश्लेषण मूलतः वैज्ञानिक पद्धति है।

श्रीलाल शुक्ल के ‘रागदरबारी’ उपन्यास में रंगनाथ की मानसिकता दिखाने के लिए इस शैली का प्रयोग प्रस्तुत है - “पिछले महीनों वह जिस जिन्दगी के आसपास मंडराता रहा था, जिसके भीतर घुसकर भी वह बाहरी का बाहरी ही बना रहा था, वह एक लानत की तरह उसके सामने आकर खड़ी हो गयी। उसकी आत्मा के तारों पर बशर्ते कि आत्मा की शक्ल सारंगी-जैसी होती हो - पलायन-संगीत गूँजने लगा।”^{४५} यहाँ पात्र की मानसिकता के साथ परिस्थिति का यथार्थ भी स्पष्ट हुआ।

श्रीलाल शुक्ल के ‘सीमाएँ टूटती हैं’ उपन्यास में दुर्गादास की केस के बारे में शंकर और तारानाथ जब वकील के पास जाते हैं, तो वकील के विचारों का विश्लेषण स्पष्ट है - “जैसे कोई सर्जन ओपरेशन के कमरे से अपना वीरान चेहरा लेकर बाहर आए और कहे मुझे अफसोस है, पर हम मरीज को बचा नहीं सके, कुछ वैसी ही निर्विकारता वकील की आवाज में थी।”^{४६} इससे वकील की केस के बारे में गंभीरता प्रकट है।

इस तरह विश्लेषणात्मक शैली के माध्यम से परिस्थिति, विचार, मानसिकता को चित्रित किया है।

६.३.३ यथार्थ शैली

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार - “साहित्य की एक विशिष्ट चिन्तन-पद्धति जिसके अनुसार कलाकार को अपनी कृति में जीवन के यथार्थ रूप का अंकन करना चाहिए।”^{४७}

श्रीलाल शुक्ल ने भी बदले हुए समय और यथार्थ की समझ से हर उपन्यास में सूक्ष्म से सूक्ष्म और जटिल से जटिल समस्याओं को उद्घाटित किया है। उनका यथार्थ इतना विद्रूप और भयानक है कि उसे देखना एक हास्यास्पद और त्रासद अनुभव है। उनका यह यथार्थ इतना तीखा, प्रत्यक्ष कि पाठकों को अपना पास-पड़ोस जान पड़ता है।

‘सूनी घाटी का सूरज’ उपन्यास में रामदास लखनऊ विश्वविद्यालय से उपाधि ले चुका था। लेकिन आज की शिक्षा नवयुवकों को भविष्य में निराश करती है। इसे रामदास पहले से जानता था। वह कहता है - “धोखा तो वह है जहाँ कुछ पाने की आशा दिलाकर उसे न दिया जाए, या कुछ छिन लिया जाए। मुझे युनिवर्सिटी ने कभी भी कोई आशा नहीं दिलायी।”^{४८} इससे शिक्षा पाकर युवक कैसे बेकार होते हैं, को यथार्थ शैली में स्पष्ट किया है।

‘अज्ञातवास’ उपन्यास में रजनीकांत अपने ओवरसियर को इसलिए डाँट रहा है कि एक निम्न जाति का एक नवयुवक गाने से इन्कार करके साथियों को वापस ले जाता है। रजनीकांत कहता है कि - “एक गँवार लड़का इस तरीके से यहाँ ऊधम मचाकर चला जाए और तुम कुछ न कर सको। और बाद में तुम आते हो मेरे मेहमानों के सामने इस तरह की बात सुनाने के लिए?”^{४९} इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि ऊँच-नीच का भेदभाव आज का भी यथार्थ है।

श्रीलाल शुक्ल के ‘रागदरबारी’ उपन्यास में ग्रामीण शिक्षा का यथार्थ शिक्षा अधिकारी के माध्यम से चित्रित किया है- “गाड़ी छंगामल

विद्यालय इण्टर कॉलेज के सामने से निकली अंडरवियर पर बुशशर्ट और धारीदार पैजामें पर बिना बनियान का कुरता पहने हुए कई लड़के पुलिया पर बैठे थे। दोनों और से तीतर की बोलियाँ बोली जा रही थीं। सेकन्ड के एक खंड में उन लड़कों को देखते ही उनके बेटुकेपन से उन्होंने भाँप लिया कि ये विद्यार्थी हैं।^{५०} इसमें ग्रामीण शिक्षा का यथार्थ प्रस्तुत है।

श्रीलाल शुक्ल के 'पहला पड़ाव' उपन्यास में संतोषकुमार एम.ए. करके वह परमात्मा जी की आवास योजना पर काम कर रहा था। वह काम करते हुए अनेक दिवास्वप्न पाले हुए था। जब मजदूरों के लिए बनायी गयी यूनियन टूट जाती है। तब करता है- “दिवास्वप्न पीछे छूट रहे थे। ठोस जमीन पर पाँव टिकाकर जो भी चाहू वह करने के लिए मैं अब मजबूर नहीं, आजाद हूँ।”^{५१} यहाँ संतोष युनियन से मजदूरों को न्याय देना चाहता था, पर युनियन टूट जाती है। वह वैयक्तिक जीवन जीने के लिए आजाद हो जाता है। उपन्यास में युनियन टूटने का यथार्थ चित्रित है।

‘बिस्रामपुर का संत’ उपन्यास में भूदान आंदोलन का यथार्थ प्रस्तुत है- “सन् १९५२ की गर्मिया। जमींदारी प्रथा समाप्त होने के कुछ महीने आचार्य विनोबा भावे अपने दलबल सहित उस क्षेत्र में भूदान यज्ञ का मंत्र फूँकने आये।”^{५२} इस तरह उपन्यास में भूदान आंदोलन का वर्णन यथार्थ शैली में हुआ है।

६.३.४ भावात्मक शैली

आधुनिक काल में भावात्मक शैली का प्रयोग काव्य के साथ गद्य में भी होने लगा है। यह उपन्यास में भावगत प्रवाह का सृजन करती है। इससे वर्ण्य विषय में एक प्रकार की भावात्मकता आ जाती है।

‘सूनी घाटी का सूरज’ उपन्यास में रामदास संध्या समय देखकर कहता है कि “इन अमराइयों के पीछे पश्चिमी क्षितिज कितना रंगीन हो गया है। मैं चित्रकार होता हो इन रंगों को हमेशा के लिए उतार लेता।”^{५३} यहाँ रामदास शाम को अमराइयों का सौन्दर्य देखते हुए उसके मन में चित्रकार बनने की भावना निर्माण होती है।

श्रीलाल शुक्ल जी के ‘अज्ञातवास’ उपन्यास में रजनीकांत अपनी लड़की प्रभा से ग्राम गीतों के बारे में कहता है- “हाँ प्रभा, मुझे ग्राम-गीत बहुत अच्छे लगते हैं, क्योंकि मेरी जीभ पर अब भी आषाढ़ के जामुनों का रस है और दाँत के नीचे मक्के के भुट्टे का कच्चापन है और मेरे मन में सुनहरे धान लहलहाते रहे हैं।”^{५४} इसमें रजनीकांत के अतीत के जीवन-अनुभव की स्मृतियाँ स्पष्ट हैं।

‘पहला पड़ाव’ उपन्यास में नेता की हत्या की जानकारी उसकी पत्नी जसोदा को नहीं थी। वह संतोष से दुःखी भाव से पुछती है- “पर मुंसी, तुम्हारे नेता को क्या हो गया था ? तुमने कभी बताया नहीं ? वह ऐसा-वैसा नहीं था। बड़ा बहादुर था। दो-दो मन का बोझ पीठ पर लाद कर कोसों चल सकता था। उसे क्या हो गया ? किसने मार दिया ? उसे किसी ने क्यों मार ?”^{५५} इससे जसोदा का पति के प्रति भाव स्पष्ट होता है। उसकी भाव व्याकुलता भी सामने आती है।

६.३.५ नाट्य शैली

उपन्यासकार संवादों में नाटकीयता लाने के लिए नाट्यशैली का प्रयोग करते हैं। श्रीलाल शुक्ल ने अपने उपन्यासों में अनेक स्थानों पर संवादों में सुन्दरता, नाटकीयता निर्माण करने के लिए नाट्यशैली का प्रयोग किया है।

श्रीलाल शुक्ल जी ने ‘सूनी घाटी का सूरज’ उपन्यास में सत्या के विवाह का समाचार सुनकर राजघर उससे कहता है- “इसे कहते हैं जनरल नॉलेज उर्फ साधारण ज्ञान। यह मैं बिना बताए जानता हूँ कि आप-जैसी सूर्योग्य कन्याओं को उनके माता-पिता, समाज और युनिवर्सिटी के छात्र बहुत दिन तक अविवाहित नहीं रहने देते।”^{५६} इससे विवाह करने का महत्व स्पष्ट है।

‘अज्ञातवास’ उपन्यास में विनायक खाने के पदार्थ के बारे में कहता है- “हमारे शहर के पड़ोस के एक अमेरिकन मिशन का लेप्रसी असीलम है। उनके पास दस-दस पाउंड के चीज के बड़े-बड़े डिब्बे सेकड़ों की

तादाद में मौजूद हैं। कोढ़ी लोग उसे खा नहीं सकते। वहाँ की पनीर मारी-मारी फिरती है। उसे कोई पूछता तक नहीं। और यहाँ आधा पाउंड पनीर के लिए हम लोग हैरान हो रहे हैं।”^{५७} यहाँ खाने की चीजों का अभाव स्पष्ट करने के लिए संवादों में नाट्यात्मकता है।

श्रीलाल शुक्ल के ‘राग दरबारी’ उपन्यासों में जोगनाथ की पूछताछ के समय संवादों में नाट्यात्मकता प्रस्तुत है- “पब्लिक प्रोसिक््यूटर की निगाह मत्थे पर चढ़ गयी। उसने ज़ोर देकर पूछा- मैं पूछ रहा हूँ, तलाशी में क्या निकला ? निकलेगा क्या ? घंटा ? जोगनाथ और उसके वकील दोनों साथ-साथ मुस्कराए। पीछे से सनीचर ने कहा, शाबाश ! अड़े रहो बेटा।”^{५८} यहाँ असलियत छुपाने के लिए संवादों में जोगनाथ नाट्यात्मकता का प्रयोग करता है।

श्रीलाल शुक्ल के ‘मकान’ उपन्यास में नारायण से बारीन हलदार सितार बजाने का अनुरोध करता है, तब “उसमें मुझे कहाँ फँसा रहे हो, दादा ? वहाँ ज्यादातर सफाई या जल-कल विभाग वाले होंगे, या चुंगी के सिपाही। उनके लिए तो कीर्तन-बीर्तन, लोकगीत यही सब चलेगा।

बारीन- यह तो सब होगा ही।

सितार वे क्या समझेंगे ?

इतना तो समझेंगे के बजानेवाला उन्हीं का आदमी है।”^{५९} यहाँ युनियन के कर्मचारियों के बीच कुछ संगीत कार्यक्रम का संकेत प्रकट हैं।

‘पहला पड़ाव’ उपन्यास में मिस्त्री जब परमात्मा जी से मजदूरी बढ़ाने के लिए कहता है, तब परमात्मा जी कहता है- “तुम मुझे पोंगा समझते हो ? ऐसी बात न कहें सरकार। मैं सरकार की तीन पीढ़ी को जानता हूँ। बाप रे बाप। इतना जालिम खानदान रहा है। पेशाब में चिराग जलता था।”^{६०} यहाँ शोषक और शोषित वर्ग को स्पष्ट करने के लिए नाट्यशैली का प्रयोग है।

श्रीलाल शुक्ल जी के ‘बिस्रामपुर का संत’ उपन्यास में रहने की व्यवस्था के बारे में संवाद- “पर यहाँ तो इन मच्छरो की भरमार है। इसका

क्या किया जाए ? कुछ नहीं कुँवर साहब हम लोग मच्छरों के साथ बड़े मजे में रह लेते हैं।”^{६१} यहाँ ग्रामीण जीवन की गंदगी दिखाने के लिए नाट्यशैली का प्रयोग हुआ है।

६.३.६ पूर्व दीप्ति शैली

पूर्व दीप्ति शैली को अंग्रेजी में फ्लैश बेक भी कहा जाता है। डॉ. लक्ष्मीसागर वाष्णेय जी ने पूर्व दीप्ति शैली के बारे में कहा है कि- “लेखक कभी-कभी वर्तमान से अतीत में पदार्पण करता हुआ चित्रित किया जाता है जिसे पूर्व दीप्ति या फ्लैशबैक पद्धति कहते हैं जिसके अन्तर्गत पात्रों की स्मृति से अतीत की घटनाएँ प्रदिप्त होती हैं।”^{६२} इसमें लेखक घटनाओं की सूक्ष्मता, मनोवैज्ञानिकता, पात्र के मानसिक संघर्ष और तनाव की अभिव्यक्ति आदि को प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वर्तमान में चलती हुई कहानी को झट से अतीत की ओर मोड़कर तथा विशिष्ट संदर्भों में क्रमबद्ध कर, उपन्यास शिल्प में पाठकों के लिए आकर्षण पैदा किया जाता है। इसे पूर्व दीप्ति शैली कहा जाता है। इस शैली का प्रयोग श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में अनेक स्थानों पर हुआ है।

श्रीलाल शुक्ल जी के ‘अज्ञातवास’ उपन्यास में रजनीकांत को उसकी लड़की प्रभा जब माँ के बारे में पूछती तब “काल का विहंग अपनी क्षिप गति से बीस वर्षों की उड़ान भरता है।

दिन के दस बजे से एक स्टेशन पर रेल से उतरे। वे और गंगाधर। तब वे असिस्टेंट इंजीनियर थे। गंगाधर ने डॉक्टरी शुरू की थी। वैशाख के अंतिम दिन पर हवा ठंडी थी। प्लेटफार्म पर उतरते ही उनकी निगाह सेमल के दो दानवाकार वृक्षों पर पड़ी। आज भी न जाने क्यों, वे दो पेड़ रजनीकांत के मन में, चमकदार नीले आसमान की पृष्ठभूमि में अपनी अंसख्य बाँहे हिला-हिलाकर उस दिन की घटना को स्मृति की राह पर खींचते हैं।”^{६३} यहाँ अतीत घटना, पात्र की मानसिकता रजनीकांत की स्मृति द्वारा प्रस्तुत हुई है।

६.३.७ चेतनाप्रवाह शैली

चेतनाप्रवाह शैली को फ्रान्स में 'मनोर्लांग आंतेरियर' कहा जाता है। डॉ. लक्ष्मीसागर बाणर्जेय जी के अनुसार- “मानस पटल पर अतीत को पुनर्जीवित करते हुए अपने से सम्बद्ध घटनाओं को समेटना, चेतना के कई स्तरों पर एक साथ सोचना और बिम्ब तथा प्रभावों की सृष्टि करते चलना, और मानव की आन्तरिक गहराइयों में प्रवेश करना।”^{६४} चेतनाप्रवाह शैली है। इसमें स्वप्न-सा देखते हुए जीवन के लघु किन्तु महत्वपूर्ण क्षण पकड़े जाते हैं। उससे व्यक्ति के रहस्यमय क्षेत्रों को खोलकर विचारों को उनकी प्रवाहात्मक में प्रकट लेने का प्रयास किया जाता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यक्ति की चेतना वर्तमान में जीते हुए उसकी स्मृतियों में कामनाओं का पुट देकर भविष्य में अग्रसर होता है। स्मृति और कामना का यह योग ही चेतना-प्रवाह है। इसमें चरित्र का मन निरंतर अस्थिर रहता है। उसकी चेतना पल-पल में वर्तमान, अतीत और भविष्य में भटकती है। चेतना प्रवाह में अनेकानेक विचार विश्रृंखला, तर्कशून्य सम्बन्ध प्रासंगिक तथा अप्रासंगिक ढंग से उठते और लुप्त होते हैं।

श्रीलाल शुक्ल जी ने इस शैली का प्रयोग अनेक जगह किया है। 'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास में कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह जब सुन्दरी को देखते हैं, तो उन्हें अपनी पुरानी कॉलेज जीवन की विवाहित जयश्री की याद आती है, जिससे उनके काम सम्बन्ध थे। वे सोचते हैं- “बरसो का एक सुपरिचित चेहरा जिसकी साँसो का वे आज भी अपने चेहरे पर अनुभव कर रहे हैं। जिसकी उष्मा उनके कंधे और छाती को आज भी नहीं छोड़ना चाहती। और जिसके लिए पिछले वर्षों में न जाने कितनी रातें उन्होंने खुली आँखों सपना देखते हुए बितायी हैं। वही आज अचानक उनके सामने था।”^{६५} इस प्रकार कुँवर जयंतीप्रसाद, जयश्री को सुंदरी में बहुत कुछ वैसा ही अनुभव कर रहे थे। स्पष्ट है कि उनकी चेतना सुंदरी के माध्यम से वर्तमान, अतीत और भविष्य में भटकती है।

६.३.८ डायरी शैली

जीवन की कुछ महत्वपूर्ण घटनाएँ जो रोजनामचा में चित्रित रहती हैं, परिस्थिति विशेष में, मानस लोक पर अपना प्रभाव जमा लेती हैं।

लेखक का कथ्य और औपन्यासिक विषयवस्तु जब प्रमुख पात्र के द्वारा उसकी आपबीती के रूप में प्रकट होती तो उसके रोजनामचा जीवका का विवरण, उससे संबंधित उसकी निजी संवेदनाएँ, उसकी क्रिया-प्रतिक्रियाएँ, चिंतन समग्रतः और एक साथ क्रमशः प्रस्तुत करने के लिए उपन्यासकार 'डायरीशैली' का प्रयोग करते हैं।

उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल जी ने 'मकान' उपन्यास का सृजन डायरी शैली में किया है। इसमें नारायण एक मध्यवर्गीय नगर-निगम का एक असिस्टेंट एकाउंटेंट है। लेकिन तबादला होकर जब वह अपने पुराने शहर आता है, तो उसके सामने मकान की समस्या उपस्थित होती है। उस समस्या को लेखक ने डायरी के माध्यम ३ अक्टूबर, १९७१ से नारायण के जीवन के तीन साल, दो महीने, उन्नीस दिन किस प्रकार बीतते हैं, इसे उपस्थित किया है। उपन्यास का आरम्भ 'प्रशासन की साँप-सीढ़ी' शीर्षक से करके समापन २२ दिसम्बर, १९७४ इतवार 'घूमते हुए पहिये' शीर्षक से किया है।

६.३.९ पत्रात्मक शैली

जहाँ लेखक दो पात्रों के आपसी रिश्ता और कथोपकथन के माध्यम से यथार्थ को उनके पहलुओं में पाठक के सामने रखना चाहता है। उस समय 'पत्र शैली' का प्रयोग करके विषयवस्तु विकसित की जाती है। पात्र के द्वारा लेखक पात्र, अपना चिंतन, दृष्टिकोण, प्रतिक्रियाएँ, समझ, संस्कार, मर्यादाएँ, प्रतिभा आदि को व्यक्त करता है। लेखक उस पात्र के माध्यम से पाठकों के सामने पत्र द्वारा अपने कथ्य को बेझिझक, सरलता से और विषयवस्तु का अनिवार्य भाग के रूप में सहजता से प्रस्तुत करता है। इस प्रकार 'पत्रशैली' औपन्यासिक विषयवस्तु की अनिवार्यता के साथ ही औपन्यासिक सर्जना का उपकरण होती है।

उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल ने अपने उपन्यासों में पत्र शैली का अनेक स्थानों पर प्रयोग किया है। ‘सूनी घाटी का सूरज’ उपन्यास में सत्या रामदास की आत्मकथा पढ़ कर उसे पत्र लिखती है,

“प्रिय रामदास,

तुम्हारी अनिता को मैं जानती हूँ। जिस प्रकार तुमने उसे मुझसे परिचित कराया, उसका अर्थ भी तुमने अपने बाद के पत्र में स्पष्ट कर दिया।”^{६६} इससे स्पष्ट है कि सत्या, रामदास की दोस्त है।

श्रीलाल शुक्ल जी के ‘सीमाएँ टूटती हैं’ उपन्यास में विमल, चाँद को पत्र लिखता है कि “मेरा वहाँ न आ सकना शायद तुम्हें बुरा लगे, पर यह बुरा मानने की बात नहीं है। मजबूरी ही कुछ ऐसी थी।”^{६७} यहाँ विमल मसूरी में पिकनिक के लिए नहीं जा सका। वह अपनी मजबूरी पत्र के माध्यम प्रकट करता है।

‘मकान’ उपन्यास में नारायण को उसकी पत्नी तथा स्वामी शांतानंद महाराज पत्र लिखते हैं। वह पत्नी मीनाक्षी का पत्र चार-पाँच बार पढ़ चुका था। “इस पत्र में कोई बड़ा स्फूर्तिदायी संदेश हो, ऐसी बात नहीं, पर पत्र के नीचे आपकी दासी-मी. पढ़कर मैं बार-बार अपने विवाहित जीवन के बसन्त काल में पहुँचता रहा।”^{६८} स्पष्ट है पत्र जीवन के सुखी दिनों की याद करा देते हैं।

उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल ने ‘बिस्रामपुर का संत’ उपन्यास में तार का प्रयोग संदेश देने के लिए किया गया है। “‘तार में बुरी खबर थी। एक मौत का समाचार था।’”^{६९} स्पष्ट है कि विशेष संदेश के लिए कभी-कभी तार का भी प्रयोग किया जाता है।

६.३.१० किस्सागोई शैली

‘किस्सागोई’ शब्द का अर्थ है- कहानी कहने-सुनने का काम या कुशलता। किस्सागो अथवा लोक कथात्मक शैली वस्तुतः उस शैली रूप को कहते हैं जिसमें मौखिक रूप से प्रचलित अनेक कथाओं का अन्तः संबंध स्थापित करके प्रस्तुत किया जाता है।

उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल ने उपन्यासों में इसी शैली का अधिकांश प्रयोग किया है। ‘राग दरबारी’ उपन्यास में डकैती की जानकारी देते समय “अभी पाँच-छः साल हुए होंगे, मैं कार्तिक के नहान के लिए गंगा घाट गया था। लौटते-लौटते रात हो गयी। यही भोलूपुर के पास रात हुई। बढ़िया चटक चाँदनी। बाग के भीतर हम मौज में आ गये तो एक चौबोला गाने लगे। तभी किसी ने पीछे से पीठ पर दायें से लाठी मारी। न राम-राम न दुआ-सलाम, एक दम से लाठी मार दी।”^{७०} इस प्रकार सनीचर डकैती में लूटने का किस्सा रंगनाथ को सुनाता है।

‘पहला पड़ाव’ उपन्यास में संतोष लूटमार का किस्सा सुनाने के पहले प्रस्ताव में यह जानकारी देता है- “लूटमार का किस्सा सुनने की मुझे जरूरत न थी। उसका मैं सोते हुए भी आँखों देखा हाल बयान कर सकता हूँ। परसों रात नेता-दंपति और दूसरे मुसाफिरों को लूटनेवाली जो युवाशक्ति थी, वह मेरे ही पुराने साथियों की होगी। इस पर मैं दस का नोट लगाने को तैयार हूँ।”^{७१} इस उपन्यास में भी लेखक ने लूट का किस्सा प्रस्तुत किया है।

६.३.११ निवेदनात्मक शैली

उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल ने निवेदनात्मक शैली का भी प्रयोग अपने उपन्यासों में किया है। ‘मकान’ उपन्यास में बस्तियों के नामों के बारे में निवेदन है कि “जैसे ये बस्तियाँ- जैसी कि यह रवीन्द्रनगर एक्सटेंशन है- नाम से बड़ी भोली-भाली लगती है। नाम सुनते ही मन पवित्र हो जाता है। किसी का नाम गौतमपल्ली है, लगता है कि गौतमबुद्ध का त्याग और तपस्या यहाँ के जर्रे-जर्रे में झलक रही होगी। एक जगह किसी ने सर्वोदय नगर बसाया है, जैसे वहाँ घर घर में विनोबा भावे रहते हों। किसी बस्ती का नाम है रामकृष्णपुरम् किसी का नाम है तात्या टोपे नगर जो शायद ईट - गारे से नहीं, खून और शहादत से बनायी गयी होगी।”^{७२} यहाँ नगर के नामों की होड़ का निवेदन उपस्थित है।

लेखक श्रीलाल शुक्ल जी ने 'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास में भूदान आंदोलन और उसके कार्यकर्ता के बारे में सुशीला के माध्यम से लेखक ने यह निवेदन प्रस्तुत किया है- “कुछ सालों बाद यहा देखा कि भूदान आंदोलन के लिए विदेशों में, खासतौर से अमरीका और योरोप के लोगों में उत्सुकता पैदा हुई है और वहाँ के कई संगठन उसके प्रवक्ताओं को सुनना चाहते हैं। तब निर्मल को आंदोलन की उपलब्धियों और सिद्धान्तों पर व्याख्यान देने के लिए बाहर भेजा जाने लगा। वे अपना यह काम बखूबी निभा रहे थे, यह इसी से ज़ाहीर है कि अब उन्हें बाहर से बराबर निमंत्रण मिल रहे थे। भूदान आंदोलन के प्रवक्ता के रूप में अपने को स्थापित करने के लिए अब उन्हें भूदान संगठन की ज़रूरत नहीं रह गयी थी।”^{७६} यह निवेदन भूदान आंदोलन तथा निर्मलभाई के व्यक्तित्व को लेकर है।

६.३.१२ तर्क शैली

उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल ने किसी विषय का महत्व, सही जानकारी देने के लिए तर्क शैली का भी प्रयोग किया है। “सूनी घाटी का सूरज” उपन्यास में रामदास सत्या को गाँवों के बारे में समझाते हुए यह तर्क प्रस्तुत करता है- “तुमने गाव की लड़कियों को देखा भले ही हो और अपने कुछ सिद्धान्तों की समीक्षा के लिए उन्हें प्रयोग-जैसा मानकर उनसे भले ही कुछ बातचीत कर ली हो, पर देखने में तुम में और उनमें बड़ा अंतर है। तुम काला चश्मा लगाती हो। तुम्हारे बालों की दो चोटीयाँ हैं। तुम्हारी साड़ी का पहनावा दूसरी तरह का है। तुम सिर खोलकर चलती हो। अपरिचित आदमी से बातचीत करती हो यहाँ का रहने वाला यदि तुम्हें देखकर रुक जाता है या मीलभर तक तुम्हारा पीछा करता है तो इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं। इससे वह यही साबित करता है कि वह सचमुच यही का रहने वाला है।”^{७४} उपरोक्त तर्क से रामदास ग्रामीण व्यक्ति की उत्सुकता को लेकर सत्या को समझाता है।

श्रीलाल शुक्ल ने ‘राग दरबारी’ उपन्यास में एक पुराने मंदिर को लेकर तर्क लगाया है। “रंगनाथ को यही बताया गया था कि मंदिर

सतजुग का बना हुआ है। वह शुरु से ही किसी शिलाखंड पर ब्राह्मी अक्षर पढ़ने की कल्पना कर रहा था। पर मंदिर को दूर से देखते ही विश्वास हो गया कि अपने देशवासी समय के बारे में सिर्फ दो सही शब्द जानते हैं और वे हैं अनादि और अनन्त। इसके सिवाय वे लगभग पचहतर वर्ष पुराने मंदिर को आसानी से गुप्तकाल या मौर्यकाल में धकेल सकते हैं। मंदिर के ऊपर बने हुए बेलबूटों के बीच लिखा था बनवाया मंडप महिषासुरमर्दिनी का मुसम्मे इक्रबाल बहादुरसिंह वल्द नरेन्द्र बहादुरसिंह तखत भीखापुर ने मिती कार्तिक वदी दसमी संवत १९५० विक्रमी को। इसे पढ़ते ही रंगनाथ का सारा पुरातत्त्व हवा में उड़ गया।^{७५} स्पष्ट है ग्रामीण लोग किस प्रकार पीढ़ी दर-पीढ़ी किसी मंदिर को पौराणिक काल में धकेल देते हैं।

६.३.१३ चित्रात्मक शैली

चित्रों के द्वारा ही साहित्यकार वस्तु, घटना व्यापार, गुण-विशेषता, विचार, साकार तथा निराकार पदार्थों और मानस क्रियाओं को प्रत्यक्ष एवं इंद्रियग्राह्य बनाता है। चित्र किसी अप्रस्तुत वस्तु का मानसिक या काल्पनिक रूप है।

श्रीलाल शुक्ल जी ने उपन्यासों में चित्र का प्रयोग अधिकतर किया है। ‘अज्ञातवास’ उपन्यास में रजनीकांत ग्रामीण परिवेश छोड़ रहा था, उसका वर्णन द्रष्टव्य है- “वर्षा के प्रथम आसार से धुली हुई, लहर लेती हुई हरियाली। यह वन कितनी दूर तक फैला चला गया है। इसके उस पार फिर धनी बागे मिलेंगी, खेल होंगे, पर रजनीकांत के घर की छत से यही लगता था कि उसके पार भी एक और वन होगा, कुछ और घना, कुछ और रहस्यमय। फैलती हुई छायाएँ, मिटती हुई हरियाली-इन सबका निस्सीम सघन विस्तार वे देखते रहे। बोले रानी तुम देख रही हो न ? मैं कल जा रहा हूँ। मेरा यह हरा-भरा संसार कुछ दिनों के लिए पीछे छूट जाएगा।”^{७६} इससे रजनीकांत की मानसिकता को प्रस्तुत किया है।

‘पहला पड़ाव’ उपन्यास में संतोष कुमार की आजादी को इस प्रकार प्रस्तुत किया है। “कमरे में अन्धेरा था, बिजली गायब थी। कभी

बाहर सड़क पर मोटरों और स्कूटरों की जो रोशनी दीखती थी, उसमें चमकने वाली चीजें, लगता था, धरती की होकर भी धरती की नहीं हैं। पर आज खुद अपने को लेकर मेरे मन में वैसा कोई वहम न था।”^{७७} स्पष्ट है संतोष का एक नये जीवन में प्रवेश है।

‘आदमी का जहर’ उपन्यास में भीड़ का वर्णन है- “आज वहाँ कल की अपेक्षा ज्यादा भीड़ थी। स्थानीय यूनिवर्सिटी के होस्टेल से लड़कियों का एक जत्था चित्र-प्रदर्शनी देखने आया था। उन्हीं के साथ लड़कों के एक जत्थे ने भी प्रदर्शनी के हॉल पर हमला बोल दिया था। भीड़ थी और उससे भी ज्यादा शोर था।”^{७८} यहाँ लड़कियों के पीछे लड़कों का आना स्वाभाविक है तथा उससे भीड़ बढ़ने का चित्र प्रस्तुत है।

‘राग दरबारी’ उपन्यास में जब वैद्यजी शहर जाते हैं, तब शिवलिंग देख प्रार्थना करते हैं- “शिवलिंग देखते ही वैद्यजी भक्ति से आतुर हो गये। यह गोराशाही बाजार है जिसमें भगवान का नाम छिपाकर लेना चाहिए- विवेक की यह बात भूलकर वे पीपल के पेड़ के नीचे पहुँच गये और भरे गले से शकर की स्तुति बाँचने लगे।”^{७९} यहाँ वैद्यजी अपनी मुक्ति के लिए भक्तिभाव से शिवलिंग की प्रार्थना करते हैं। यह शिवलिंग देखकर भक्तिभाव जागृत होने का चित्र है।

‘सीमाएँ टूटती हैं’ उपन्यास में चाँद विमल से प्रेम की जानकारी जब भाई तारानाथ को देती है, “तब उसके चुप हो जाने पर हवा की सरसराहट बढ़ी हुई जान पड़ी। ड्राइंगरूम में मोमबती की ज्वाला कुछ और हिलने लगी थी और बरामदे में झीने प्रकाश छायाओं की संधि का दायरा तेजी से घट-बढ़ रहा था। चाँद निरुद्धेग बैठी हुई जैसे उनके जवाब की राह देख रही हो।”^{८०} यहाँ चित्र शैली में पात्रों का भाव स्पष्ट है।

‘मकान’ उपन्यास में नगर निगम का दफ्तर का वर्णन इस प्रकार है- “लता-कुंज उनके पास या बीच से निकलने वाली टेढ़ी- मेढ़ी वीथियाँ, फूलों की विस्तीर्ण क्यारियाँ, नकली झीलें, आलंकारिक वृक्षों की कतारें, उनके बीच से निकली हुई सीधी-साफ सड़के, मखमली दूब के मैदान

आदि मिलकर आपस में इस जमीन का बंटवारा कर चुके हैं।”^{८१} यहा चित्र शैली का वर्णन प्रकृति के माध्यम से किया है।

६.३.१४ प्रतीकात्मक शैली

बृहत् हिन्दीकोश के अनुसार- “वह जिसपर किसीका आरोप किया गया हो, प्रतिरूप; प्रतिमा; वह दृश्य वस्तु या तथ्य जो किसी अदृश्य वस्तु या तथ्यके प्रायः अनुरूप होनेके कारण उसके प्रतिनिधि या प्रतिरूप के रूपमें मान ली जाय।”^{८२}

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार- “प्रतीक रूप तथा अर्थ का योग है- इन्हें ही क्रमशः ‘अभिव्यक्ति’ तथा ‘कथ्य’ या ‘ध्वनि’ और अर्थ भी कहा जाता है। प्रतीक शब्द भी होता है, वाक्य भी, तथा पूरी कृति या उसका कोई स्वतंत्र भाग भी।”^{८३} यह अभिव्यक्ति को तीव्रता और व्यापकता प्रदान करने में समर्थ हो जाता है। डॉ. उमेशप्रसाद सिंह के अनुसार- “साहित्य में प्रतीकवाद अभिव्यक्ति का एक रूप है, जिसके द्वारा चेतना के धरातल पर अप्रत्यक्ष को अधिकाधिक रूप में प्रस्तुत किया जाता है। प्रतीक अनन्त अथवा उसके कतिपय अंशी का प्रतिनिधित्व उसकी पुनर्सृष्टि किये बिना करता है। इसके द्वारा अनन्त का प्रकटीकरण होता है, जो उसी में सन्निहित अथवा अपरिमित परिसीमित किया जाता है।”^{८४} इस प्रकार प्रतीकात्मक शैली किसी पात्र, चीज या कथन सुनकर या देखकर प्रकट रूप में जो अर्थ निकाला जाता है। उसका अभिधा, लक्षणा शब्दशक्ति से अर्थ न निकलकर व्यंजना शक्ति से अर्थ निकाला जाता है। प्रतीक शैली में बहुत बड़े व्यापक आशय को संक्षेप में मार्मिक ढंग से स्पष्ट किया जाता है। भावों के अनुरूप भाषा को प्रतीकों के माध्यम से कहने की प्रक्रिया प्राचीन काल से चली आ रही है। प्रतीक आधुनिक साहित्य की उत्तमता की कसौटी बनती जा रही है। उसकी लोकप्रियता अविरत प्रगति कर रही है।

श्रीलाल शुक्ल ने प्रतीकात्मक शैली का अत्यधिक प्रयोग किया है। ‘सूनी घाटी का सूरज’ उपन्यास में अंधविश्वास रामदास के जीवन में प्रतीक बनकर आता है। उसे ठाकुर छोटूसिंह कहता है कि इन सालों पर हजारों

रूपये गँवा दिए, इसे अमजदअली की खवीस की बातों से जोड़ते हुए कहता है-
 “अमजदअली ने खवीस को कैसे चकमा दिया, यह मैं एक कान से सुनता रहा।
 दूसरे कान में एक आदमी की कठोर आवाज गूँजती रही, जो पिछली रात मेरे
 मुँह पर कही गई थी। नहीं, अमजद, मैं मरूँगा नहीं। मैंने सचमुच का भूत देखा
 है, पर मैं मरा नहीं।”^{८५} स्पष्ट है कि ठाकुर का उत्पीड़न भूत के माध्यम से
 प्रतीकात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है।

श्रीलाल शुक्ल जी के ‘अज्ञातवास’ उपन्यास में ओवरसियर
 गंगाधर एंड कंपनी के बारे में कहता है कि “बड़े आदमियों की बड़ी बातें
 सरकार ! जैसे जायका बदलने के लिए बड़े-बड़े लोग बाजरे की रोटी खा लेते
 हैं। हमारे मारिसन साहब ने तो एक बार बीड़ी भी पी थी, सिर्फ देखने के लिए
 कि कैसी लगती है। पीकर बहुत हँसे। वैसे ही हुजूर लोगों को देहाती गीतों का
 शौक है, सरकार ! बढ़िया-बढ़िया, दादरा, कव्वाली, टप्पा सुनते-सुनते
 तबीयत में आ गया कि कहारों, चमारों के गीतों का भी जायका लिया
 जाए।”^{८६} इससे कुलीन वर्ग की मानसिकता प्रतीक शैली में स्पष्ट होती है।

‘सीमाएँ टूटती हैं’ उपन्यास में चाँद की मानसिकता को
 स्पष्ट करते हुए “भविष्य को कुरेदने की कोशिश में वह बराबर बोलती गई,
 अपने चारो ओर लगे हुए जंगल में अपनी ही आवाज से आगे चलने का साहस
 खोजती रही।”^{८७} इससे सामाजिक बंधन प्रतीकात्मक रूप में स्पष्ट होते हैं।

श्रीलाल शुक्ल जी के ‘पहला पड़ाव’ उपन्यास में
 संतोषकुमार कानून की पढ़ाई के माध्यम से कहता है कि “कानून की पढ़ाई मेरे
 लिए अब पेट पालने की मजबूरी नहीं, एक लौहजाल तोड़ने की तैयारी
 होगी।”^{८८} इससे भविष्य में संतोष के दूसरे पड़ाव की प्रतीकात्मकता प्रस्तुत है।

६.४ श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों का शिल्पगत वैशिष्ट्य

बृहत् हिन्दी कोश के अनुसार “शिल्प का अर्थ है- कला
 आदि कर्म-वात्स्यायन ने चौंसठ कलाएँ गिनायी हैं। हुनर, कारीगरी, सुवा;
 दक्षता; टेकनीक, शैलीसे ज्यादा व्यापक वह उपादान जिसके द्वारा रचनाकार
 अपनी भावनाओं को किसी विशेष ढंग से ही व्यक्त कर पाता है।”^{८९} स्पष्ट है

कि साहित्यकार के मनोजगत् के भावों का विकास, प्रतिभा की अभिव्यक्ति शिल्प द्वारा साहित्यकृति में होती है। साहित्य का आविष्कार ही साहित्य की शिल्पता है। प्रतिभा का भाषा के माध्यम से साहित्य रूप में आविष्कार शिल्प है।

शिल्प के संबंध में इटली के वेनेदेतो क्रोचे का विचार है कि “अनुभूति और भावना जन्म तो लेती है आत्मा के क्षेत्र में, किन्तु वह तब तक जानी नहीं जाती जब तक कि वह बुद्धि के स्तर नहीं पहुँचती है और आत्मा से बुद्धि तक की यात्रा वह शब्दों के ही द्वारा करती है। यही यात्रा सहजानुभूति की प्रक्रिया है जो कलाओं के मूल में हैं। इस तरह सहजानुभूति भाषा में ही अपना रूपाकार ग्रहण करती है।”^{६०} इस प्रकार साहित्य कला में भाषा को महत्वपूर्ण स्थान है। साहित्य में भाषा रूपाकार ग्रहण करती है।

उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल जी के उपन्यासों में यथार्थ का गहरा बोध है। आम आदमी का जीवन राजनीतिक एवं सामाजिक शोषण के छुपे हथियार, इनमें विवश होता हुआ संवेदनशील मन, उसके भीतर की झुंझलाहट आदि को ठोस सशक्त भाषा के द्वारा उन्होंने अभिव्यंजित किया है, जो एक विशेष प्रकार की सामाजिक व्यवस्था का सहज परिणाम है। उपन्यासों में भावुकता के माध्यम से अभिव्यक्ति होती है।

उपरोक्त विशेषताओं को निम्नलिखित प्रस्तुत की है-

(१) प्रत्येक उपन्यास का प्रारम्भ करते समय विविधता दिखायी देती है। विषय वस्तु यह तय करती है कि उपन्यास का आरंभ किससे और कैसे हो। जैसे ‘सूनी घाटी का सूरज’ और ‘अज्ञातवास’ उपन्यासों का प्रारम्भ प्रकृतिचित्रण से किया है। ‘आदमी का जहर’ उपन्यास का आरम्भ शहर के नजदीक एक कस्बा, जिसे जोड़ने वाला एक रास्ते से किया है। ‘आदमी का जहर’, ‘सीमाएँ टूटती हैं’ और ‘पहला पड़ाव’ उपन्यासों का प्रारम्भ, पात्रों के वार्तालाप से किया है। ‘मकान’ उपन्यास का आरम्भ एक बड़े नगर से हुआ है।

(२) श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में शैलीगत वैविध्य हैं। उन्होंने विषयवस्तु को विविध शैलियों द्वारा प्रस्तुत किया है। 'सूनी घाटी का सूरज' उपन्यास 'आत्मकथात्मक' शैली में लिखा गया है। 'अज्ञातवास' विश्लेषणात्मक, भावात्मक एवं पूर्वदीप्ति शैली में लिखा है। 'राग दरबारी' उपन्यास व्यंग्य तथा किस्सागोई शैली में प्रस्तुत है। 'आदमी का जहर' और 'सीमाएँ टूटती हैं' उपन्यास विवेचनात्मक, व्याख्यात्मक, नाटकीय व्याख्यात्मक और किस्सा गोई शैलियों में प्रस्तुत हैं। 'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास पूर्वदीप्ति, व्याख्यात्मक शैलियों में लिखा गया है। इस प्रकार श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में शैली वैविध्य दिखाई देता है।

(३) लेखक ने पात्रों के अंतर्द्वन्द्व की अपेक्षा सामाजिक घटनाओं को महत्व दिया है। उपन्यासों में घटनाओं के प्रति कौतूहल अधिक है। कहीं-कहीं घटनाओं पर परिवेश हावी हुआ है। कुछ उपन्यासों में घटनाओं का कार्यकारण सम्बन्ध है, तो कुछ उपन्यासों में पूर्वदीप्ति के माध्यम से आधुनिक सामाजिक जीवन के विविध पक्षों को उजागर किया है। सामाजिक - राजनीतिक स्थिति का यथार्थ एवं मानव-जीवन की सूक्ष्म संवेदनाओं को घटनाओं के ताने-बाने से चित्रित किया है।

(४) श्रीलाल शुक्ल जी के उपन्यासों में प्रधान पात्रों के साथ सहायक पात्र भी उपस्थित हैं। पात्रों के जाति, आयु, संख्या, वर्ग, कर्म, वातावरण, वेश, चरित्र के आधार पर तथा व्यंग्यात्मक एवं प्रतीकात्मक नामकरण किये हैं। पात्रों का चरित्र उद्घाटन अनेक प्रकार से किया है। कभी दो पात्रों के संघर्ष, संवादों, घटनाओं, लेखकीय टिप्पणियों, परिवेश आदि कतिपय रूपों द्वारा चरित्र उद्घाटन हुआ है। सद्पात्र और असद्पात्र का उनकी जीवन स्थिति के माध्यम से उद्घाटन है। उसमें पात्र व परिवेश अथवा व्यवस्था का संघर्ष दिखाया है। सद् पात्र व्यवस्था से पलायन या व्यवस्था से सामना करने के लिए एक दीर्घ संघर्ष का संकेत देते हैं। लेखक ने इसके साथ ही पात्रों के अनुभवों एवं चारित्रिक विशेषताओं का भी वर्णन किया है। जिससे पात्र स्थिति के वैविध्य का ज्ञान हुआ है।

श्रीलाल शुक्ल जी के उपन्यासों में ग्रामीण तथा शहरी परिवेश का वैविध्य है। ग्रामीण परिवेश के प्रति लेखक की दो प्रकार की दृष्टि है- एक ग्रामीण जीवन के सौन्दर्य वर्णन से सम्बन्धित, और दूसरी ग्रामीण जीवन की दयनीय दशा और विसंगतियों से सम्बन्धित, जिसमें उत्पीड़ित और उत्पीड़क वर्ग दर्ज है। इसी प्रकार शहरी परिवेश भी कतिपय विसंगतियों के द्वारा प्रस्तुत है।

(६) श्रीलाल शुक्ल जी के उपन्यासों से स्पष्ट है कि वर्तमान जीवन में व्यवस्था ताकतवर है, यही आज का यथार्थ है। परिवेश एवं पात्रों के संघर्ष में यथार्थ का निर्वाह किया है। लोकतंत्र की हमारी व्यवस्था में आजादी के बाद जिस तेजी के साथ पूँजीपतियों का वर्चस्व, सत्ता और समाज में बढ़ा है, उससे भ्रष्टाचार एवं सिद्धान्तहीनता भी बढ़ी है। इसी के साथ लेखक ने आम आदमी की संकटपात्र सामाजिकता का उद्घाटन उपन्यासों में किया है। लेखक की चेतना में सामाजिक प्रयोजन की पक्षधरता के साधन यथार्थ में नये हैं।

(७) श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों की विषयवस्तु में विविधता है, साथ-साथ उपन्यासों का रूप और भाषा भी रोचक है। लेखक ने यथार्थ के जटिल रूपों की आलोचनात्मक समझ के लिए व्यंग्य की सर्जना की है।

इस प्रकार श्रीलाल शुक्लजी अपने उपन्यास साहित्य के माध्यम से आम आदमी का पक्षधर बनकर नव जागरण लाना चाहते हैं। वे टूटे मूल्यों की स्थापना के आग्रही हैं। ग्रामीण ठेठ जातीय कभी गँवार कभी व्यंग्य यथार्थ, विवेचनात्मक तथा मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों और अलंकारों के सटीक प्रयोग की प्रवृत्ति उनकी भाषा की बहुत बड़ी विशेषता है। पात्र की जाति, धर्म, वर्ण, शिक्षास्तर, परिवेश आदि के अनुरूप उनकी भाषा का निर्माण कर हिन्दी भाषा को नया मुहावरा शुक्लजी ने प्रदान किया है। वे यथार्थ के रचनाकार, यथार्थबोध के ज्ञाता, मानवता के आग्रही साहित्यकार हैं। शुक्लजी की इन विशेषताओं ने उनके औपन्यासिक - कला को विशिष्ट रूप प्रदान किया है।

● संदर्भ सूची ●

- (१) तद्भव - पत्रिका, पृ. ०२
- (२) वहीं पृ. ०६
- (३) वहीं पृ. ०६
- (४) सम्बोधन - पत्रिका, जून, २००० - पृ. १६६
- (५) श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृ. ३४
- (६) श्रीलाल शुक्ल : अज्ञातवास, पृ. ४८
- (७) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. ३६
- (८) श्रीलाल शुक्ल : आदमी का जहर, पृ. ३१
- (९) श्रीलाल शुक्ल : सीमाएँ टूटती हैं, पृ. १०७
- (१०) श्रीलाल शुक्ल : मकान, पृ. ५२
- (११) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. ४१
- (१२) श्रीलाल शुक्ल : बिस्रामपुर का संत, पृ. १२
- (१३) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. ७२
- (१४) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. ११
- (१५) वहीं, पृ. १४६
- (१६) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. ५२
- (१७) श्रीलाल शुक्ल : मकान, पृ. १०१
- (१८) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. २४२
- (१९) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. २५७
- (२०) श्रीलाल शुक्ल : बिस्रामपुर का संत, पृ. ०८
- (२१) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. ०८
- (२२) श्रीलाल शुक्ल : सीमाएँ टूटती हैं, पृ. ६७
- (२३) श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृ. ४२
- (२४) श्रीलाल शुक्ल : अज्ञातवास, पृ. १२
- (२५) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. ०६

- (२६) श्रीलाल शुक्ल : आदमी का जहर, पृ. ५४
- (२७) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. १७२
- (२८) श्रीलाल शुक्ल : बिसमपुर का संत, पृ. १६१
- (२९) वहीं, पृ. ५५
- (३०) डॉ. रामप्रकाश : मानक हिन्दी : संरचना एवं प्रयोग, पृ. ११०
- (३१) वहीं, पृ. ११२
- (३२) सं. श्यामसुन्दरदास : हिन्दी शब्द सागर, पृ. ४६३३
- (३३) तद्भव - पत्रिका, पृ. १३२
- (३४) आभा भट्ट : हरिशंकर परसाई के व्यंग्यों में वर्ग-चेतना, पृ. ६१
- (३५) श्रीलाल शुक्ल : अज्ञेय कुछ रंग, कुछ राग, पृ. ७३
- (३६) तद्भव - पत्रिका, पृ. ०२
- (३७) श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृ. ८५
- (३८) श्रीलाल शुक्ल : सीमाएँ टूटती हैं, पृ. १६६
- (३९) सं. अखिलेश : श्रीलाल शुक्ल की दुनिया, पृ. ३६
- (४०) डॉ. बापूराव देसाई : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी सा. का इतिहास, पृ. २७
- (४१) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. ३६
- (४२) श्रीलाल शुक्ल : मकान, पृ. १०
- (४३) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. ३५
- (४४) वहीं, पृ. १४४
- (४५) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. ३३२
- (४६) श्रीलाल शुक्ल : सीमाएँ टूटती हैं, पृ. १०६
- (४७) सं. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, पृ. ६६०
- (४८) श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृ. १२६
- (४९) श्रीलाल शुक्ल : अज्ञातवास, पृ. ५७
- (५०) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. १५६
- (५१) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. २४४
- (५२) श्रीलाल शुक्ल : बिसमपुर का संत, पृ. २१

- (५३) श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृ. ०६
- (५४) श्रीलाल शुक्ल : अज्ञातवास, पृ. १७
- (५५) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. ११५
- (५६) श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृ. १७
- (५७) श्रीलाल शुक्ल : अज्ञातवास, पृ. ३१
- (५८) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. २२४
- (५९) श्रीलाल शुक्ल : मकान, पृ. ४६
- (६०) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. १६
- (६१) श्रीलाल शुक्ल : बिसमपुर का संत, पृ. २८
- (६२) डॉ. लक्ष्मीसागर वाष्णीय : द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी -
साहित्य का इतिहास, पृ. ३८
- (६३) श्रीलाल शुक्ल : अज्ञातवास, पृ. ७२
- (६४) डॉ. लक्ष्मीसागर वाष्णीय : द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी -
साहित्य का इतिहास वाष्णीय, पृ. ३६
- (६५) श्रीलाल शुक्ल : बिसमपुर का संत, पृ. २५
- (६६) श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृ. ११७
- (६७) श्रीलाल शुक्ल : सीमाएँ टूटती हैं, पृ. १६४
- (६८) श्रीलाल शुक्ल : मकान, पृ. ६६
- (६९) श्रीलाल शुक्ल : बिसमपुर का संत, पृ. १७
- (७०) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. ५६-५७
- (७१) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. ०६
- (७२) श्रीलाल शुक्ल : मकान, पृ. १११
- (७३) श्रीलाल शुक्ल : बिसमपुर का संत, पृ. १५६
- (७४) श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृ. ०८
- (७५) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. ११८
- (७६) श्रीलाल शुक्ल : अज्ञातवास, पृ. १६
- (७७) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. २४४

- (७८) श्रीलाल शुक्ल : आदमी का जहर, पृ. १५
- (७९) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. २५१
- (८०) श्रीलाल शुक्ल : सीमाएँ टूटती हैं, पृ. २०८
- (८१) श्रीलाल शुक्ल : मकान, पृ. ०६
- (८२) सं. कालिकाप्रसाद : बृहत हिन्दी कोश, पृ. ७३२
- (८३) डॉ. भोलानाथ तिवारी : व्यावहारिक शैली विज्ञान, पृ. १०८
- (८४) डॉ. उमेशप्रसाद सिंह : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, पृ. १८२
- (८५) श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृ. ३४
- (८६) श्रीलाल शुक्ल : अज्ञातवास, पृ. ३०
- (८७) श्रीलाल शुक्ल : सीमाएँ टूटती हैं, पृ. १०१
- (८८) सं. अखिलेश : श्रीलाल शुक्ल की दुनिया, पृ. २२०
- (८९) सं. कालिका प्रसाद : बृहत हिन्दी कोश, पृ. ११३०
- (९०) सं. डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त : हिन्दी भाषा एवं विश्व कोश, पृ. १६

सप्तम् अध्याय

- ७.० श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में देशकाल एवं परिवेश
७.१ प्रस्तावना
७.२ देशकाल एवं परिवेश
७.२.१ सामाजिक परिवेश
७.२.२ आर्थिक परिवेश
७.२.२.१ आर्थिक शोषण एवं महँगाई
७.२.२.२ निवास, मजदूरों का आर्थिक शोषण
७.२.२.३ परिवार में स्त्री एवं व्यवहार में सतर्कता
७.२.३ राजनीतिक परिवेश
७.२.३.१ राजनीति के क्षेत्र में पूँजीपतियों का वर्चस्व एवं धोखाधड़ी
७.२.३.२ अवसरवाद, भोगवाद, जातिवाद, वंश एवं शिक्षा संस्थाओं में राजनीति
७.२.३.३ सिद्धान्तों का माजक, लालची पत्रकार, गरीबी एवं भूदान आंदोलन की विफलता
७.२.४ प्राकृतिक परिवेश
७.२.४.१ सहायक प्रकृति -चित्रण
७.२.४.२ संकेतात्मक एवं सजीव प्रकृति - चित्रण
७.२.४.३ मानवीकरण, प्रतीकात्मक एवं व्यंग्य रूप में प्रकृति-चित्रण
७.२.५ ग्रामीण परिवेश
७.२.५.१ शोषक सामंत वर्ग एवं गाँवों का पिछड़ापन
७.२.५.२ गाँवों में अशिक्षा एवं शिक्षा की दिशाहीनता
७.२.५.३ गाँवों में स्त्री जीवन की दासता, अंधविश्वास, दहेज एवं उँच-नीच का भेद
७.२.५.४ किसानों की दुर्दशा एवं दारिद्र्य
७.२.६ शहरी परिवेश
७.२.६.१ सामंत वर्ग एवं सामाजिक असमानता
७.२.६.२ अपराध, कलाकारों का शोषण एवं भीड़
७.२.७ परिवेश चित्रण की महत्ता

७.० श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में देशकाल एवं परिवेश

७.१ प्रस्तावना

उपन्यास की समीक्षा प्रस्तुत करते हुए देशकाल और परिवेश अथवा परिस्थिति का उल्लेख परम्परागत तत्त्व के रूप में उसे कम-अधिक महत्वपूर्ण मानकर, अवश्य किया जाता रहा है। इसमें बाह्य भौगोलिक अथवा सामाजिक स्थितियों का ऊहापोह कथा-वस्तु या चरित्रों के विकास अथवा हास की स्थितियों को उजागर करने के लिए किया जाता है। उपन्यास में संजीदगी, जीवंतता और विश्वसनीयता का निर्माण करने हेतु भी इसे एक औजार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। किन्तु द्वितीय महायुद्ध जनित विभीषिकाओं ने सर्वथा बदले हुए मूल्यों एवं जीवनमानों के सर्वग्रासी आधुनिक परिवेश को जन्म दिया और यही परिवेश साहित्य की विविध विधाओं में केन्द्रवर्ती स्थान ग्रहण करने लगा। यहाँ एक बात द्रष्टव्य है कि साहित्य में देशकाल अथवा परिवेश आदि के विपक्षी के रूप में परिवेश नहीं उभरा है प्रत्युत वह एक स्वतन्त्र सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है।

पश्चिमी औद्योगिक क्रान्ति, द्वितीय महायुद्ध तथा अपरिमित वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों की प्रखरता ने समस्त मनुष्य जाति की बौद्धिक, मानसिक तथा सामाजिक चेतना को कुंठित एवं प्रताड़ित कर दिया है। भौतिक उपकरणों तथा परमाणु अस्त्रों की भयावहता और अमानवीय व्यवस्था की विभीषिका ने मनुष्य प्राणी को भयाक्रन्त, फालतू निरीह और असहाय कर दिया है। भीषण यथार्थ को लेकर विकसित होनेवाली ये स्थितियाँ अपनी भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विशिष्टताओं के बावजूद व्यापक मानवीय परिप्रेक्ष्य में अविराम जीवन-संघर्ष के रूप में समस्त मानवता की आकांक्षाओं एवं संभावनाओं के क्षितिजों को नष्ट-भ्रष्ट कर रही है। इस आधुनिक परिवेश के सामने आज का व्यक्ति अपनी जिजीविषा तथा बहादुरी के होते हुए भी असहाय और घुटने टकने को मजबूर है। परिवेश के भीमकाय और महाकाय बोझ से सिवा टूटते हुए बिखर जाने के और अन्दर ही अन्दर गलते, घुलते तथा सड़ते जाने के अन्य कोई विकल्प उसके सामने नहीं रह गया है।

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता तथा विसंगतियों की बाढ़ से धिरा हुआ है। अव्यवस्था और अवसरवादिता के तांडव में पली नई युवा पीढ़ी सर्वाधिक प्रतिक्रियात्मक और आक्रमक है और उदासीनता, मूल्यहीनता, आक्रोश और घुटन आदि से त्रस्त होने के साथ अपने अनिश्चित और असुरक्षित भविष्य से भयग्रस्त भी है। भौतिक दृष्टि से यह युवा पीढ़ी अनेक प्रकार के अभावों से संतुष्ट और ग्रस्त तथा मानसिक दृष्टि से पूरी तरह आस्थाहीन हो गई है। यह अनास्था और अस्वीकार इस पीढ़ी में आरोपित ढंग से नहीं आई है, अपितु वह उस सजग चेतना में आने का सहज स्वाभाविक परिणाम है जो वर्तमान परिवेश की घातक स्थितियों, आदर्शच्युत क्रिया-कलापों और मनुष्य विरोधी प्रणालियों की प्रखर प्रतिक्रिया में परिणत हो गई है। फलतः इस परिवेश को रूपायित करने वाले साहित्य में यह प्रतिक्रिया उग्रता से मुखरित हुई है। आधुनिक युग के इस परिवेश में आर्थिक भीषणताओं की चपेट से परिवार टूटकर विघटित हो रहे हैं और सामाजिक व्यवस्था भीतर से अतिशय खोखली एवं जर्जर हो गई है। परन्तु व्यावहारिक रूढ़ियों और तथाकथित मर्यादाओं के पालन की आवश्यकता पर विशेष जोर दिया जा रहा है। आदर्शों और व्यवहारिकता के धरातल के बीच का यह अन्तर्विरोध आर्थिक विपन्नता, दुराचरण तथा मनुष्य विरोधी शक्तियों के षड्यंत्रों से युक्त घातक समाज व्यवस्था के भीतर धिरा होने के कारण एक संश्लेषित मानवीय चेतना और संवेदना का निर्धारण करता है।

श्रीलाल शुक्ल की उत्कृष्ट कलाकृति 'राग दरबारी' अनेक विशेषताओं को समेटने के कारण एक विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण उपलब्धि कही जा सकती है। भारतीय जीवन और आधुनिक मानसिकता को परिवेश के विशाल आयामों में समेटने वाला यह एक जीवन्त दस्तावेज है। कथा के मोह, रंजकता के हल्के नुस्खों तथा सपाटबयानी से युक्त जीवन-चित्रण को प्रयत्नपूर्वक टालकर इस उपन्यास में आधुनिक भारतीय परिवेश और उसमें जीवन-यापन करनेवाले मनुष्य नामक प्राणियों के अन्तरंग एवं अन्तर्मन की झाँकियाँ प्रस्तुत करके शिवपालगंज की सामूहिक मानसिकता, कुंठित व्यक्तियों के बौनेपन को

नीखे व्यंग्यों के घात-प्रतिघात से उजागर किया गया है। उपन्यास में चित्रित समाज एवं परिवेश के दस्तावेज को पूरे व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किए जाने के कारण 'राग-दरबारी' में आधुनिक भावबोध एक सर्वथा भिन्न धरातल तथा नए अन्दाज में उपस्थित हुआ है।

आधुनिक उपन्यासकारों की नई पीढ़ी स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश के भीषण यथार्थ में पली हुई है और उसकी सम्भावनाएँ उन स्थितियों के भीतर से निर्मित हुई हैं जो एक और स्वतंत्रता, दायित्व, समानता, आदर्शवादिता आदि सिद्धान्तों के भीतर से एक सुनियोजित चिन्तन एवं व्यवहार की अपेक्षा व्यक्त करती है और दूसरी ओर परिवेशगत भीषण यथार्थ के रूप में अवसरवादिता, राजनीतिक षड्यंत्र, परस्पर शोषण और मनुष्य विरोधी शक्तियों का संघटनात्मक क्रम बन जाती है। यह अभिषप्त पीढ़ी क्रूर जीवन यथार्थ और अमानवीय व्यवस्था की सड़ाँध से सीधे विद्रोह करना चाहती है। परिवेश की भयावहता के सर्वसाक्षी ये उपन्यासकार मनोविश्लेषण मार्क्सवाद, आंचलिकता, अस्तित्ववाद अथवा अन्य किसी भी प्रणाली या वादों से संबद्ध रहे हों तो भी वे स्वयं को तथा अपनी कृतियों को परिवेश से सर्वथा विमुक्त नहीं कर सके हैं।

परिवेश का विशाल रूप साढोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में और भी अधिक फैला हुआ दृष्टिगत होता है। इन प्रयोगधर्मी उपन्यासों में जिस परिवेश की धुटन, संत्रास और पीड़ा का धरातल पाया जाता है वह मूलतः आधुनिक भारतीय परिवेश से बँधा होते हुए सर्वाधिक अस्वीकारात्मक तथा अत्यधिक प्रतिक्रियात्मक है। यह सारा परिवेश शहरों, कस्बों एवं महानगरीय जीवन तथा तद्जनित यांत्रिकता, अकेलेपन, ऊब, तथा निरीहता से सम्बन्धित है। इस परिवेश ने समस्त साढोत्तरी उपन्यासों की दिशा और उसका धरातल ही बदल डाला है। इन उपन्यासों में आधुनिक समस्याओं प्रति सैद्धांतिक दृष्टि छूट गई है, और आदर्शों के द्वारा निर्मित दिशाएँ अपने खोखलेपन के कारण निरर्थक हो गई है। इन सबके साथ ही इन साढोत्तरी उपन्यासों में नगर जीवन में

सर्वाधिक उपेक्षित और अछूते जनसमूदाय तथा उनकी सामूहिक मानसिकता को भी परिवेश के भयावह यथार्थ में रूपायित और चित्रित किया गया है।

उपन्यास में परिवेश तत्त्व के रूपायन का विवेचन प्रस्तुत करते समय उसे प्राकृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि टुकड़ों में बाँटकर उसकी दुर्दशा नहीं की जानी चाहिए बल्कि उसके सम्यक् और समस्त प्रभाव को ग्रहण करके चर्चा की जानी चाहिए। उपन्यासों में परिवेश की चर्चा करते समय इस बात का भी ध्यान रखा जाना आवश्यक है कि परिवेश के निर्माण में उपन्यासकार का उद्देश्य क्या है, अथवा वह परिवेश-चित्रण द्वारा औपन्यासिक स्थितियों को किस लक्ष्य की ओर मोड़ना चाहता है और अपने इस उद्देश्य या लक्ष्य की अभिव्यक्ति में वह कहाँ तक सफल-असफल हुआ है। परिवेश को प्रमुखता दिए जाने के कारण ऐसे उपन्यास की शैली में वर्णनात्मकता प्रचुर मात्रा में आ जाती है। परिवेश का निर्माण तथा रूपायन अत्यधिक वस्तुन्मुखी होने के लिए उपन्यासकार को सर्वथा तटस्थ रहना बहुत ही आवश्यक होता है। पात्रों के चरित्र को पूर्णता और स्वाभाविकता देने के लिए देश-काल या परिवेश का ध्यान रखना आवश्यक है।

७.२ देशकाल एवं परिवेश

स्वातंत्र्योत्तर काल में उपन्यास के तत्त्वों में देशकाल एवं परिवेश को अधिक महत्त्व दिया जाता है। डॉ. लक्ष्मीसागर वाष्णेय के अनुसार - “उपन्यास में अब उपलब्धियों के स्थान पर संभावनाएँ अधिक रहती हैं। उसमें अनुभूति की प्रमाणिकता और परिवेश की प्रधानता खोजी जाती है, न कि कथ्य और चरित्र-चित्रण की प्रधानता। कृतिकार अपने उपन्यास में एक संवेदनात्मक सत्य व्यक्त करता है, जो व्यक्तिमूलक होते हुए समष्टि पद प्राप्त कर अपनी सार्थकता सिद्ध करता है।”^१ स्पष्ट है कि आधुनिक काल में परिवेश के माध्यम से उपन्यासकार जीवन यथार्थ को उपस्थित करता है।

‘बृहत् हिन्दी कोश’ में परिवेश का अर्थ है - धेरना, आवेष्टित करनेवाली वस्तु। देशकाल याने समय, स्थान, एक शासन पद्धति के अंतर्गत रहनेवाला भूखंड, जो प्राकृतिक सीमा, जाति भाषा आदि के आधार पर

अन्य भागों से पृथक् हो। इसी कारण परिवेश को शब्दों में बाँधकर परिभाषित करना कठिन कार्य है। मनुष्य के जीवन और उसकी जीवन स्थितियों को प्रभावित करने वाले सारे तत्त्व मिलकर परिवेश का उद्भव होता है।

आज परिवेश शब्द स्थूल संसार का ही पर्याय नहीं, सूक्ष्म जगत के चिन्तन से भी सम्बन्धित माना जाता है। आज परिवेश में केवल बाह्य वातावरण ही नहीं आता, बल्कि उसके साथ वह मानसिकता भी उभरती है जो उस वातावरण की ही उपज है। उस मानसिकता के संदर्भ में डॉ. आदित्य प्रसाद त्रिपाठी के विचार सटीक हैं- “उस मानसिकता के साथ जुड़े होते हैं, ज्ञान, अनुभव, संवेदना, विचार, चिन्तन आदि सारे बोधात्मक स्तर। साहित्य का चैतन्य इसी स्तर पर परिवेश के बाह्य स्वरूप को आत्मसात् कर उसे बोधात्मक बनाकर पेश करता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका उद्घाटन बोध के आधुनिक तकनीक के संदर्भ में हुआ है।”^२ स्पष्ट है कि यह आज के नये चिन्तन की उपलब्धि है। आज साहित्य जीवन में जीवन को वातावरण या परिवेश विशेष में ही प्रस्तुत किया जाता है। इस सम्बन्ध में डॉ. संसारचन्द्र कहते हैं कि “साहित्य की मूल चेतना परिवेशों में पलती है। यही चेतना साहित्यकार के व्यक्तित्व में प्रतिफलित होकर अन्ततोगत्वा उसके साहित्य माध्यम से अभिव्यक्ति पाती है। साहित्यकार का व्यक्तित्व परिवेशों की व्यंजना होता है और उसका साहित्य इस व्यंजना की पुनरभिव्यंजना। अतः परिवेशों एवं परिस्थितियों का अध्ययन मूल रूप में सृजन-प्रक्रियाओं का अध्ययन होता है।”^३ इस तरह साहित्यकार परिवेश से प्रेरणा पाता है। वह परिवेश प्राकृतिक, सामाजिक और रीती-रिवाजों तथा सोच-विचार आदि का समन्वित रूप होता है।

साहित्य में देशकाल या वातावरण परिवेश का अंग है। इसलिए परिवेश विवेचन में उनका विवेचन सम्मिलित होता है। वर्तमान साहित्य में नगर और गाँव के अछूते अंचलों के परिवेश के माध्यम से साकार किया जाता है। साहित्य में परिवेश में कहाँ तक अंतर्भूत किया जाये, इसकी कोई सीमा नहीं है। विषयवस्तु के अनुसार गाँव-कस्बे से लेकर पूरा देश, क्षेत्र

या युग का परिवेश वस्तु का अंग बनता है। कुछ साहित्यकार विश्व के सम्पूर्ण परिवेश से प्रभावित होकर उसे अपनी रचनात्मकता के द्वारा चित्रित कर रहे हैं।

श्रीलाल शुक्लजी ने अपने समसामयिक परिवेश के उपन्यासों के माध्यम से वास्तविकता का चित्रण किया है। शुक्ल जी का पन्द्रह - सोलह साल तक का समय गाँव में ही व्यतीत हुआ है। उन्होंने बचपन में ही गाँव की गरीबी, दैन्य, विवशताएँ देखी हैं। उसे अपनी नज़र से देखा है, अनुभव किया है। वे आज शहरी जीवन व्यतीत कर रहे हैं, पर उनका एक पाँव उसी गाँव की ओर है। उनके उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश के साथ शहरी परिवेश का यथार्थ भी प्रस्तुत हुआ है। उसमें सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक, औद्योगिक, शहरी एवं ग्रामीण दृष्टि से वातावरण की विविधता दिखाई देती है।

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकार के साथ-साथ श्रीलाल शुक्ल प्रगतिशील चेतना के उपन्यासकार हैं। उनका विशेष आग्रह सामाजिक प्रतिष्ठा एवं मूल्यों के आधार पर मानव जीवन का महत्त्व और उसके द्वारा सामाजिक सही विकास को दर्शाना है। वे रूढ़ियों, संस्कारों में बंधे हुए मनुष्य की विवशता को प्रस्तुत करते हैं। उनका उद्देश्य ग्रामीण तथा शहरी जीवन की स्वार्थी वृत्ति और हीन भावनाओं से गुंथे हुए ग्रामीण किसान, मजदूर, शहरी मजदूर, मध्यवर्ग, गरीब, दरिद्र मनुष्य, सुशिक्षित बेकारों का अभावग्रस्त, शोषित, स्वाभिमानहीन, मजबूर जीवन एवं राजनीतिक पतन के यथार्थ को रूपायित करने का है। वे युग-जीवन के संदर्भों में बनते-बिगड़ते जीवन-सत्यों को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं।

उन्होंने व्यक्ति और समाज तथा उसके आपसी सम्बन्धों का नयी जीवन-दृष्टि के आलोक में अन्वेषण-विश्लेषण किया है। उन्होंने मानव-चरित्र के भीतर छिपी वास्तविकता के परिवेश के माध्यम से उजागर किया है। उनके उपन्यासों में चित्रित परिवेश स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन का यथार्थ है। उसके उपन्यासों का परिवेश चित्रण चार प्रकार का है - प्राकृतिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक आदि।

७.२.१ सामाजिक परिवेश

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय सामाजिक परिवेश में बहुआयामी परिवर्तन परिलक्षित हो रहे हैं। शिक्षा और नये विचारों के प्रचार ने युवा पीढ़ी को प्राचीन रूढ़ियों के प्रति विद्रोह के लिए प्रेरित किया है। पाश्चात्य संस्कृति, सभ्यता, साहित्य का बहुत प्रभाव भारतीय जीवन पर पड़ा था। उसे कुछ लाभ हुए तो कुछ हानियाँ भी झेलनी पड़ी। एक ओर उसने हमारे समाज की कुरीतियों, अन्धविश्वासों और रूढ़ परम्पराओं का विरोध किया तो दूसरी ओर भारतीय जीवन के अनुकूल न होने वाले विश्वास मान्यताएँ भी बढ़ती गयी हैं।

आधुनिक युग में बदलते सामाजिक परिवेश में खान-पान, शादी-विवाह, जीविकोपार्जन के साधन, यौन सम्बन्धी नैतिकता, रूढ़ियों-परम्पराओं का त्याग, वर्ण व्यवस्था, प्रेम तथा विवाह के जातिगत बंधन टूटने लगे। औद्योगिक विकास के साथ जीवन जटिल बनता गया। जीवन की व्यस्तता बढ़ती गयी। शायद उसी कारण संयुक्त परिवार नष्ट हुए। इस काल में शहरी समाज महंगाई, बेकारी, अव्यवस्था, भाई-भतीजावाद, सामाजिक कुप्रथाओं से त्रस्त है। देश में युवा आक्रोश, व्यक्ति स्वातंत्र्य की जिद, पारिवारिक-सामाजिक अत्याचार, दहेजप्रथा, वेश्या समस्या आदि समस्याओं से समाज व्यथित है।

साहित्यकारों ने इस सामाजिक जीवन को साहित्य में विधाओं द्वारा प्रस्तुत किया है। उपन्यास भी समाज के विभिन्न क्षेत्रों स्त्री-पुरुष सम्बन्धों, परिवार, जाति सम्प्रदाय, वर्ग, राष्ट्र, अर्थदशा, धर्म, सभ्यता, संस्कृति आदि का चित्रण करते हुए विकासशील है। उसमें स्वाधीनता के बाद भारत के नवनिर्माण के लिए जो शासन द्वारा नीतियाँ और कार्यक्रम निर्धारित और कार्यान्वित किये गये वे बहुत हद तक जनता की प्रगति की दृष्टि से असफल सिद्ध हुए हैं। इन विसंगतियों को लेकर इस काल में कतिपय उपन्यास लिखे गये हैं। अनेक उपन्यासकारों ने यथार्थ को प्रधानता देकर समाज-चित्रण किया है। उपन्यास में यथार्थ का अंकन करने के लिए कुछ उपन्यासकारों ने समाजवादी, विचारधारा का आधार लिया है तथा उस विचारधारा में मौलिक चिंतन जोड़कर

उसे विकसित भी किया है। इस सभी उपन्यासकारों के बारे में डॉ.रामदरश मिश्र कहते हैं कि “समाजवादी उपन्यास में सदैव सामान्य पिंसी हुई जनता और जीवन की नवीन शक्तियों के प्रति सहानुभूति तथा उन्हें स्थापित करने का भाव तथा परोपजीवी, असंगतियों से ग्रस्त, झूठी शान से गर्वीले लोग और सड़ी-गली प्राचीन जिन्दगी के ठेकेदारों के प्रति कठोर आक्रोश दिखाई पड़ता है।”^४ इन उपन्यासकारों पर परिवर्तित सामाजिक परिस्थितियों एवं आर्थिक दबावों का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। उनके उपन्यासों का यथार्थ उनके जीवन का भुक्तभोगी यथार्थ है। इन्होंने भारतीय सामाजिक समस्याओं के द्वारा अपने उपन्यासों में आदर्शवादी, गाँधीवादी, यथार्थवादी तथा मार्क्सवादी जीवन-दर्शन प्रस्तुत किया है।

लेखक श्रीलाल शुक्लजी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से कतिपय सामाजिक समस्याओं को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने ग्रामीण तथा शहरी परिवेश को चित्रित किया है। शुक्ल जी ने समकालीन समस्याओं को उपन्यासों की विषयवस्तु में समन्वित करके उन पर गहरा चिंतन-मनन किया है। उनके द्वारा प्रस्तुत ग्रामीण तथा शहरी वातावरण का अभ्यास युक्ति संगत है।

७.२.२ आर्थिक परिवेश

आधुनिक काल में सबसे महत्वपूर्ण वस्तु पैसा है जो मनुष्य जीवन को आर्थिक क्षेत्र में सामर्थ्यवान बनाता है और उसके अभाव से जीवन अर्थहीन बन जाता है। पैसे से समाज में प्रतिष्ठा बढ़ती है। सुनिश्चित आय मनुष्य को सुरक्षा प्रदान करती है। इसीलिए महात्मा गांधी आर्थिक संदर्भ में आर्थिक समानता को अहिंसापूर्ण स्वराज्य की प्रमुख चाबी मानते थे।

स्वातंत्र्योत्तर काल से लेकर आज तक ग्रामीण जीवन में विभिन्न समस्याएँ निर्माण हुई हैं। उसमें किसानों के दुःख-दारिद्र्य का कारण जमींदारी, शोषण एवं महाजनी ऋण के अतिरिक्त अशिक्षा, अज्ञान, अंधविश्वास, आपसी लड़ाई-झगड़े, दलबन्दी, मुकदमेबाजी आदि हैं। इन गरीब किसानों को परिवार को पेट भरने और कर्ज उतारने के चक्कर में कभी-

कभी अपने रेहन रखी हुई जमीन पर बंटाई का काम करने अथवा मजदूरी करने की नौबत आ जाती है।

गाँवों से मजदूरी की खोज के लिए निकला व्यक्ति शहरों में दफ्तर-फैक्टरियों के चक्कर काटता है। इसमें रोजी-रोटी की तलाश में भटकते शिक्षित युवक-युवतियाँ शहर के परिवेश का स्थायी अंग बन गये हैं। इससे जहाँ गाँवों की हालत बिगड़ी है, वही शहरी जीवन भी दिनोंदिन जटिलताओं में जकड़ने लगा है। इससे छोटे-छोटे शहर समस्याओं का अड्डा बन गये हैं। शहरों में आर्थिक स्थितियों के आधार पर बस्तियाँ बसी हुई हैं। समाज-जीवन रहन-सहन, आर्थिक आय पर निर्भर है।

श्रीलाल शुक्ल प्रगतिवादी उपन्यासकार हैं। प्रगतिवादी उपन्यासकारों ने मनुष्य के सामाजिक परिवेश में आर्थिक पहलू को अधिक महत्व दिया है। समाज का मूल आधार अर्थ ही है। आज अर्थ ही समाज में पुरुषार्थ माना गया है।

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में आर्थिक परिवेश निम्नांकित रूपों में हैं।

७.२.२.१ आर्थिक शोषण एवं महगाई

आर्थिक अभाव में जीवन के प्रति उदासीन दृष्टिकोण बन जाता है। जीवन में मनुष्य अपनी इच्छाओं को भी ठीक ढंग से पूरा नहीं कर पाता है। 'सूनी घाटी का सूरज' उपन्यास का रामदास सत्या से कहता है - "यह भी विचित्र बात है। प्रेम पर भी तुम भरपेट वालों की ही 'मर्नापली' रहेगी।"^५ स्पष्ट है कि मनुष्य आर्थिक अभाव में प्रेम भी नहीं कर सकता। प्रेम पाने के लिए भी आर्थिक समपन्नता आवश्यक है। लेकिन देश में आर्थिकता की खाई बढ़ती जा रही है। शुक्ल जी का 'राग दरबारी' उपन्यास का उदाहरण दृष्टव्य है - "आजादी मिलने के बाद इस देश में साइकिल-रिक्शा चालकों का वर्ग जिस तेजी से पनपा है, उससे यही साबित होता है कि हमारी आर्थिक नीतियाँ बहुत बढ़िया हैं और यहाँ के घोड़े बहुत धटिया हैं।"^६ स्पष्ट है कि रोजी-रोटी की तलाश में लोग शहर की ओर भाग रहे हैं।

गरीब लोगों के सामने सबसे कठिन समस्या होती है। अपनी रोजी-रोटी जुटाना। आज महंगाई के कारण रोटी जुटाना भी कठिन हो जाता है। ‘पहला पड़ाव’ उपन्यास का उदाहरण दृष्टव्य है - “पर जसोदा दस रुपिया मिलेगा जिसका चीजों की किम्मत से कोई रिश्ता नहीं है और सुरेश को कुछ इतना मिलेगा कि अगर किसी दिन उसने जोश में आकर एक कुल्फी खा ली तो उस दिन रोटी खाने की हैसियत न रहेगी।”^७ इससे स्पष्ट है कि सामान्य मनुष्य श्रम करके भी अपने दैनंदिन आवश्यकताओं को महंगाई के जमाने में पूर्ण नहीं कर सकता।

७.२.२.२ निवास, मजदूरों का आर्थिक शोषण

गाँवों से शहरों की ओर लोग आकर जैसे रोजगार के लिए संघर्ष करते हैं वैसे ही उन्हें आवास के लिए संघर्ष करना पड़ता है। ‘मकान’ उपन्यास के बारीन हलदार के शब्दों में - “पर जो सचमुच ही नाली में पड़ा है उसके लिए कौन क्या कर रहा है। सिर्फ शहर के चारों ओर किसानों के खेत छिन रहे हैं और रईसों के बंगले बन रहे हैं। पर देहात से आनेवाले मजदूरों को, ठेला खींचना वालों, रिक्शा ड्राइवरों को कौन मकान दे रहा है।”^८ ऐसी हालत में शहरों के फुटपाथ या उड़ाडान पूलों के नीचे की रिक्त जगह ही उनका सहारा बनती है।

मजदूरों का सिर्फ सामाजिक शोषण ही नहीं होता, बल्कि आर्थिक शोषण भी होता है। ‘पहला पड़ाव’ उपन्यास का उदाहरण द्रष्टव्य है - “जसोदा के आदमी को यहाँ आने के लिए उन्होंने पाँच सौ रुपिया दिया था। कुछ दे भी चुका था। उस पर बारह सौ निकाले। हम बूढ़े-ठिहरे दो जने। हम पर पंद्रह सौ निकले।”^९ इससे स्पष्ट होता है कि यहाँ मजदूरों को पेशगी देकर ठेकेदार लाते हैं और उनसे दुगुनी रकम वसूल करके धन इकट्ठा करते हैं।

७.२.२.३ परिवार में स्त्री एवं व्यवहार में सतर्कता

स्वतंत्रता के बाद नारी जीवन का काफी विकास हुआ है। आज नारी का एक अलग अस्तित्व है। वह पुरुष के साथ कंधे से कंधा देकर सभी प्रकार के कार्य कुशलता से कर रही है। उसकी परिवार में महत्वपूर्ण अनेक

भूमिकाएँ हैं। श्रीलाल शुक्ल जी के उपन्यासों में सत्या, रूबी, चाँद, जरीना, नीला, जूली, श्यामा, सिम्मी, जयश्री, सुन्दरी, जसोदा, सावित्री आदि स्त्री पात्रों की भूमिका अन्यान्य कारणों से प्रस्तुत की है। ‘पहला पड़ाव’ उपन्यास में संतोष के बड़े भाई जब घर लौटते थे तो “उनका पहला काम यह है कि जो दिन में कमाया है उसे प्रिय पत्नी के हाथ में सौंप दो। महीने-भर बाद जो तनखाह मिलती है उसका पचास फीसदी बाप के हाथ में रखते हैं, पाँच फीसदी माँ के हाथ में।”^{१०} इससे स्पष्ट है कि पति-पत्नी सम्बन्ध दृढ़ बनते हैं। वह जो भी रकम बचती है उसे पत्नी के हाथ सौंप देते हैं। दूसरी कुछ स्त्रियाँ परिवार चलाने के लिए अन्यान्य प्रकार के व्यवसाय करती हैं। जैसे ‘सीमाएँ टूटती हैं’ उपन्यास में ‘जूली’ नामक स्त्री आर्थिक मजबूरी के कारण विमल की वासना की शिकार होती है। ‘जूली’ शादी-शुदा है लेकिन वे दोनों “अच्छी मैत्री के बीच की एक स्थिति में मिलते रहे, जिसकी नींव में एक-दूसरे के शरीरों का आकर्षण था।”^{११} स्पष्ट है कि विमल जूली का एक ग्राहक था, जो उसे रुपये देता था। ‘जूली’ को रूपयों से मतलब था। इस तरह स्त्री जीवन के अन्यान्य उदाहरण उपन्यासों में दृष्टव्य है जिनका पूर्व विवेचन में उल्लेख प्रस्तुत किया गया है।

वर्तमान समय में हर वस्तु में मिलावट है। धोखेबाजी है, भ्रष्टाचार, झूठ, आतंक बढ़ गया है। ‘पहला पड़ाव’ उपन्यास का उदाहरण द्रष्टव्य हैं - “अपने यहाँ बाजार में सौदा-सुलफ करना कोई मामूली काम है। सीधे सादे आदमी को नौ-साल का छोकरा तक बकरा बनाकर खंभे से बांध सकता है। दस पैसे की धनिया तक खरीदो तो कोई तुम्हारे हाथ में सड़ी पत्तियों का गुच्छा पकड़ाकर चलता बनेगा। कुछ बोलो तो गाली-गलौज, छुरेबाजी तक की नौबत। राजनीतिशास्त्र में पढ़ा है कि स्वतंत्रता की कीमत अनवरत सतर्कता है। वही बात खरीदारी पर भी लागू है।”^{१२} इस तरह शहरों में खरीदारी करते समय सतर्कता की आवश्यकता होती है। व्यवहार इतना विकृत हो गया है कि कोई किसी को उल्लु बना सकता है।

७.२.३ राजनीतिक परिवेश

भारतीय लोकतंत्र में राजनीति जनाधारित है, जिसका जनाधार जितना बलवान होता है, वह उतना ही प्रतिष्ठित और असरदार नेता माना जाता है। भारत के अधिकांश लोग गाँवों में ही रहते हैं। इसलिए राजनीति की उठापटक और जोड़-तोड़ वहीं भी असरदार दिखाई देती है। २६ जनवरी, १९५० को भारत ने अपना संविधान लागू कर अपने को सार्वभौम गणतंत्र के रूप में प्रतिष्ठित किया। उसके बाद लोगों ने परिवर्तन का सपना देखा था। जनता की आँखों में प्रतीक्षा थी और पेट में भूख। जनता को स्वाधीनता से कुछ आकाक्षाएँ थी। इस लम्बी प्रतीक्षा के बाद भी जनता को रोटी, कपड़ा और मकान हासिल नहीं हुआ। इस भारतीय राजनीति ने आम जनता के सपनों को भंग कर दिया।

भारतीय राष्ट्रवाद की पृष्ठभूमि के लेखक डॉ.ए.आर. देसाई ने सन् १९४२ में कहा था कि भारत में नवजागृत निम्न वर्ग के लोगों में संगठनात्मक शक्ति और राजनीतिक चेतना का अभाव है। इसी कारण भविष्य में भारतीय राष्ट्रवादी आन्दोलन पर पूँजीपतियों का दबदबा रहेगा और वही हुआ। स्वातंत्र्योत्तर काल में देश की बागडोर पूँजीपतियों के हाथ चली गयी है। अमीर लोग देश के शासक बन बैठे हैं। उनकी कथनी और करनी में अंतर है। स्वप्न भंग की स्थिति ने जनता की राजनीतिक चेतना प्रतिकूल रूप में विकसित हुई है। राजनीतिक क्षेत्र में मूल्यों का पतन होने लगा और दिन-ब-दिन स्वार्थपरक प्रवृत्ति बढ़ती गयी, प्रशासन में भ्रष्टाचार और घूसखोरी उसके अंग बने। राजनीति की बेशुमार दरारें बढ़ती गयी। ऐसी स्थिति में शिक्षा उद्देश्यहीन होकर नई चेतना को कुंठित और प्रतिगामी बनाने में सहायक सिद्ध हुई है।

श्री जगदिश नारायण श्रीवास्तव के अनुसार - “पिछले बयालीस वर्षों में भारतीय राजनीति में खोट आती गयी है तो इसलिए कि भारतीय जनता में अभी तक अपने नागरीक होने का दायित्व-बोध नहीं जनमा है। वह कुटुम्ब, जाति, कबीले, धर्म, सम्प्रदाय आदि के परिवेश से निकलकर नागरिकता के नये अस्तित्व-बोध को आत्मसात ही नहीं कर पायी। इसलिए

हमारी राजनीति की अपरिपक्वता, उसकी विसंगतियाँ, समाज की अपरिपक्वताएँ और विसंगतियाँ बनी हुई हैं।^{१३} स्पष्ट है कि स्वाधीनता के बाद भी भारत में लोकतंत्र का विकास कहीं दिखाई नहीं देता। जिसका मूल कारण राजनीतिक और जनता में विद्यमान दायित्वहीन भावना है।

स्वतंत्रता के दीर्घकालोपरांत उपलब्धियों के स्थान पर लूटमार, डाकाजनी, आगजनी, गोलीकांड, रिश्वतखोरी, बेईमानी और मिलावट आदि का वर्चस्व हो गया है। राजनीति में धृणा, द्वेष, हिंसा बढ़ती जा रही है और शांति, विवेक, धैर्य, सत्य, संभाषण, सहानुभूति, सहिष्णुता और सहयोग की मनोवृत्ति का अभाव बढ़ता जा रहा है।

उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल का बचपन और शिक्षादीक्षा का काल स्वातंत्र्य पूर्व का है। सन् १९२६ से १९२८ तक। फिर भी उनके उपन्यासों में स्वातंत्र्य संघर्ष का चित्रण नहीं है। संभवतः वे उस परिवेश से जुड़े नहीं थे। उनका प्रथम उपन्यास 'सूनी घाटी का सूरज' सन् १९५७ ई. में प्रकाशित है। इस उपन्यास का परिवेश भी स्वातंत्र्योत्तर काल का है। उन्होंने स्वाधीनता के बाद जो देखा, अनुभव किया, उस परिवेश ने ही उन्हें स्वातंत्र्योत्तर भारत का यथार्थ प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने राजनीति का चित्रण 'सूनी घाटी का सूरज', 'रागदरबारी', 'आदमी का जहर', 'पहला पड़ाव', 'मकान', 'बिस्त्रामपुर का संत' आदि उपन्यासों में किया है।

आधुनिक काल में हिन्दी में राजनीतिक चेतना अनेक उपन्यासों में व्यक्त हुई है। उनमें श्रीलाल शुक्ल जी का स्थान गौरवपूर्ण है। उन्होंने राजनीतिक पतन का एवं उसके कारणों का यथार्थ प्रस्तुत करने के लिए कभी-कभी व्यंग्य का भी सहारा लिया है। उनके व्यंग्य के माध्यम से भारतीय लोकतांत्रिक स्वप्नों की शोकगाथा अभिव्यक्त हुई है।

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में राजनीतिक परिवेश ऊपर उल्लेखित विशेषताओं एवं गुणों-अवगुणों को लेकर उपस्थित हुआ है।

राजनीतिक परिवेश चित्रण पाठक को आत्ममंथन के लिए तथा सोचने के लिए मजबूर कर देता है। राजनीतिक परिवेश निम्न रूपों में प्रस्तुत हैं -

७.२.३.१ राजनीति के क्षेत्र में पूँजीपतियों का वर्चस्व एवं धोखाघड़ी

पूँजीपति वर्ग हमेशा शासन के साथ रहा है। अंग्रेजों के जमाने में वह अंग्रेजों के लिए श्रद्धा दिखाता था। स्वाधीनता के बाद यह वर्ग राजनीति में जीत हासिल करके सत्ताधारी बन गया है। इस वर्ग की असलियत बताते हुए 'रागदरबारी' उपन्यास में कहा है कि "पहले भी वे जनता की सेजा जज की इजलास में जूरी और असेसर बनकर दीवानी के मुकदमों में जायदादों के सिपुर्ददार होकर और गाँव के जमींदारों में लम्बरदार के रूप में कार्य करते थे। अब वे कोऑपरेटिव यूनियन मैनेजिंग डाइरेक्टर और कॉलेज के मैनेजर थे। वास्तव में वे इन पदों पर काम नहीं करना चाहते थे क्योंकि उन्हें पदों का लालच न था। पर उस क्षेत्र में जिम्मेदारी के इन कामों को निभानेवाला कोई आदमी ही न था और वहाँ जितने नवयुवक थे, वे पूरे देश के नवयुवकों की तरह निकम्मे थे, इसलिए उन्हें बुढ़ापे में इन पदों को संभालना पड़ा था।"^{१४} स्पष्ट है कि स्वाधीनता के बाद जमींदार या पूँजीपति वर्ग का ही वर्चस्व शासन व्यवस्था, न्याय व्यवस्था तथा सरकार में रहा है।

पूँजीपति वर्ग ने पूरी सत्ता हथियाने के लिए स्वाधीनता के बाद यह नाटक खेला कि दो भाई अलग-अलग पार्टियों में सम्मिलित हो गये। वे परस्पर के विरोधी होने का दिखावा करके भीतर से एक दूसरे की सहायता करके जनता को ठगते हुए सारे लाभ प्राप्त कर रहे हैं। 'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास में कुँवर जयंतिप्रसाद कांग्रेसी हैं तो उनके बड़े भाई समाजवादी थे। वे कांग्रेसी सरकार के समय जेल में थे। इधर छोटे भाई "भूदान आंदोलन शुरू होने पर, कुँवर जयंतिप्रसाद सिंह ने बड़े भाई के जेल-प्रवास के दौरान ग्रामदान की घोषणा की। राजनीतिक खेल में यह एक शानदार छक्का था। इसका सर्वोदयी कार्यकर्ताओं में ही नहीं, सरकारी तंत्र में भी वाजिव असर हुआ। उनकी साख बढ़ी, साथ ही खपत भी।"^{१५} इस घटना से कुँवर जयंतिप्रसाद को

यह राजनीतिक लाभ हुआ कि उसे संयुक्त राष्ट्र के प्रतिनिधि-मंडल में जाने का निमंत्रण मिला।

राजनीति में स्वार्थ और सत्ता की हवस चरम सीमा तक होती है। सत्ता और अधिकार प्राप्त करने के लिए राजनीतिक नेता धोखा और विश्वासघात करने में हिचकिचाते नहीं हैं। इसका पर्दाफाश श्रीलाल शुक्ल ने इस प्रकार किया है - “देखो दादा, यह पोलिटिक्स है। इसमें बड़ा-बड़ा कमीनापन चलता है। यह तो कुछ भी नहीं हुआ। पिताजी जिस रास्ते हैं उसमें इससे भी आगे कुछ करना पड़ता है। दुश्मन को जैसे ही हो, चित करना चाहिए। यह न चित कर पायेंगे तो खुद चित हो जायेंगे और फिर बैठे चूरन की पुड़ियाँ बांधा करेंगे और कोई टका को भी नहीं पूछेगा।”^{१६} ‘रागदरबारी’ उपन्यास के इस परिच्छेद में भारतीय राजनीति के घटिया स्तर की असलियत व्यक्त की है।

७.२.३.२ अवसरवाद, भोगवाद, जातिवाद, वंश एवं शिक्षा संस्थाओं में राजनीति

राजनीतिक लोग सत्ता का लाभ उठाकर सुविधाएँ भोगते हैं। ‘मकान’ उपन्यास में “नेता का लड़का जनवरी के पहले हफ्ते में अमेरिका जा रहा है और उसके पहले दिसम्बर के आखिरी हफ्ते में उसकी शादी हो रही है, नेता की लड़की को मेडिकल कॉलेज में प्रवेश नहीं मिला था, पर हाईकोर्ट में एक याचिका दायर करके उसने सात अन्य उम्मीदारों में प्रवेश पर रोक लगवा दी है, नेता की बीवी को दम से कुछ राहत मिली है।”^{१७} इस तरह ‘मकान’ उपन्यास में नेता पुत्तन बाबू पार्टी का, सत्ता का, पूरा-पूरा लाभ उठाता है। जनता के हित में कारवाई करने का दिखावा करते हुए उसमें नेतागण ही लाभ प्राप्त करते हैं। उनके सारे प्रयास अवसरवादी हैं।

‘पहला पड़ाव’ उपन्यास में वकील परमात्मा जी इंदिरा गांधी के नूरे चश्मे के अपने चुनाव क्षेत्र जाने के दौरान सड़क पर फाटक बनवाते हैं। तो इंजीनियर विश्व हिन्दू परिषद और इंका दोनों को चंदा देते हैं। लेकिन उपचुनाव में परमात्मा जी को पार्टी का टिकट नहीं मिला। वह “टिकट एक

ऐसी देवी जी को दे दिया गया जो दिल्ली की किसी पर्यटक एजेंसी में जनसम्पर्क मैनेजर थीं। वे अब राज्यमंत्री बनने जा रही हैं।”^{१८} इस तरह कुछ पाने के लिए कुछ राजनीति में खोना पड़ता है। कभी-कभी प्रतियोगिता-स्पर्धा के कारण छोड़ना भी पड़ता है।

स्वतंत्रता के बाद भौतिकतावादी दृष्टिकोण के कारण भौतिक सुख-सुविधा, ऐश्वर्य और सम्पत्ति को व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य मान लिया गया और त्याग के स्थान पर ‘भोग’ एक मूल्य के रूप में स्थापित हो गया है। राजनीतिक नेता सत्ता पाकर यही करते हैं। ‘रागदरबारी’ में “आज भी यशस्वी नेता यही करते हैं। भोग करते हैं, फिर उसका त्याग करते हैं फिर त्याग द्वारा भोग करते हैं।”^{१९} इस उपन्यास में वैद्य जी यूनियन का त्यागपत्र देकर अपने बड़े लड़के बट्टी पहलवान को कोआपरेटिव यूनियन का मैनेजर नियुक्त करते हैं। इससे स्पष्ट है कि त्याग भी अपनों के लिए किया जाता है, समाज के लिए नहीं।

भारतीय राजनीति में बहुसंख्यक जाति वाले उम्मीदवार को चुनाव का टिकट दिया जाता है। उस क्षेत्र में मतदाताओं की जातिगत जानकारी ली जाती है। ‘बिस्रामपुर का संत’ उपन्यास में नरेश सिंह का भतीजा “रियासत के संसदीय चुनाव क्षेत्र से उपचुनाव लड़ने जा रहा था। वह सत्ताधारी पार्टी का उम्मीदवार था। मतदाताओं में नरेश सिंह की जाति वालों की ही अधिकता थी।”^{२०}

यहाँ नरेश सिंह की मौत की सहानुभूति का लाभ उठाना चाहते थे। ऐसे ही लोग राजनीति में प्रतिष्ठा पाते हैं।

वंश-परम्परा किसी परिवार में यदि रहे तो वे अस्सी साल की उम्र में भी गवर्नर बन जाते हैं। जैसे - ‘बिस्रामपुर का संत’ उपन्यास में “इंडिया इंटरनेशनल सेन्टर में लंच खाते-खाते कोई कूदकर कहीं राजदूत बन जाता है और कोई युवा मुंह से जोशीले जुम्ले और थूँक बहाते हुए अचानक किसी युवा कांग्रेस या युवा जनता का अध्यक्ष नैतान हो जाता है।”^{२१} जितनी

राजनीतिक पहुँच है, उनको ही ये पद प्राप्त होते हैं। लोकतंत्र होते हुए भी भारत में राजनीतिक सत्ता-वंश परम्परा से प्राप्त होती है।

‘सूनी घाटी का सूरज’ उपन्यास में छात्र नेता सुरेन्द्र प्रताप कॉलेज की राजनीति का हाल रामदास को सुनवाता है और कहता है - “यदि ठाकुर साहब को प्रिंसिपल पद से हटाया जाये तो हम लोग हड़ताल कर दें। मैनेजर के घर तक जुलूस निकलें, उस साले की अर्थी जलाएँ होने वाले प्रिंसिपल के घर पर धरना दें। उससे प्रतिज्ञा करायें कि वह प्रिंसिपल का पद नहीं लेगा।”^{२२} कॉलेज में आन्दोलन होकर डेढ़ महीना बन्द रहा। मैनेजर और उनकी पार्टी ने पद त्याग किया और ठाकुर अम्बिकेशसिंह फिर से प्रिंसिपल नियुक्त हुए। इससे शिक्षा संस्थाओं की राजनीति स्पष्ट होती है।

७.२.३.३ सिद्धान्तों का मजाक, लालची पत्रकार, गरीबी एवं भूदान आंदोलन की विफलता

स्वाधीनता आंदोलन में गांधीवादी विचारधारा का जो प्रभाव था, वह स्वाधीनता के बाद सिर्फ राजनीतिक स्वार्थ के लिए रह गया। गांधीजी का नाम लेकर खेती जाने जाली राजनीति में प्रत्यक्ष गांधी के सिद्धान्तों की हत्या हो रही है। ‘रागदरबारी’ उपन्यास में गांधी चबूतरे के प्रसंग के माध्यम से लेखक कहते हैं कि “गांधी जैसा कि कुछ लोगों को आज भी याद होगा, भारतवर्ष में ही पैदा हुए थे और उनके अस्थिकलश के साथ ही उनके सिद्धान्तों को संगम में बहा देने के बाद यह तय किया गया था कि गांधी की याद में सिर्फ पक्की इमारतें बनायी जायेंगी और उसी हल्ले में शिवपालगंज में यह चबूतरा बन गया था।”^{२३} लेकिन बाद में चबूतरे पर मनुष्य तथा कुत्ते धूप खाया करते थे और धूप खाते-खाते उसके कोने पर पेशाब भी कर देते थे। गांधीजी के प्रति न किसी के मन में श्रद्धा थी, न वे सिद्धान्तों का अनुसरण करना चाहते थे। उन्होंने अपने स्वार्थ एवं कुटिलता को ढँकने के लिए गांधी को दिखावे का साधन बनाया, इस्तेमाल किया। महात्मा गांधी के रूप में भारतीय राजनीति में जो पाखंड चल रहा हैं, उसका पर्दाफास करते हुए उपन्यासकार शुक्ल जी ने ऐसे पाखंडियों पर कठोर आघात किये हैं।

राजनीति में नेताओं को शौहरत तभी मिलती है जब वे पत्रकारों को खुश रखते हैं। ‘बिस्रामपुर का संत’ उपन्यास में जयंति प्रसाद “कभी गर्वनर की हैसियत से अपनी दिनचर्या की कुछ पंक्तियाँ स्थानीय अखबार में छप जाने पर उन्होंने वरिष्ठ जनसंपर्क अधिकारी को स्विस् चॉकलेट का एक डिब्बा भेंट किया था। आज सारे राष्ट्रीय अखबार उनके त्याग और आत्मनिर्वासन की महागाथा अपनी ओर से छाप रहे थे।”^{२४} स्पष्ट है कि कुछ पाकर ही खबरें अखबारों में प्रकाशित की जाती हैं।

‘पहला पड़ाव’ उपन्यास में संतोष कुमार मजदूरों की समस्या को लेकर यूनियन का गठन करता है। वह उसमें अवसरवादी लाल बाबू, वकील परमात्मा जी जैसे स्वार्थी नेताओं को सम्मिलित करता है। इन नेताओं के रूप में राजनीतिक माफिया ऐसा षड्यंत्र रचते हैं जिससे मजदूर यूनियन टूट जाती है क्योंकि “इन इकन्नी-दुबन्नीवाली यूनियनों से सिर्फ तुम्हारे जैसे टुकाची नेताओं का भला चाहे हो जाए, मजदूरों का भला नहीं होना है। निर्माण-निगम की यूनियन में ही तुम लोगों को मिल जाना चाहिए।”^{२५} इससे स्पष्ट होता है कि संतोष कुमार राजनीतिक लोगों के सामने हार जाता है। यूनियन श्रीवास्तव की यूनियन में सम्मिलित कर देता है।

उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल जी ने भूदान आंदोलन का जिक्र ‘सूनी घाटी का सूरज’, ‘रागदरबारी’ और ‘बिस्रामपुर का संत’ आदि उपन्यासों में किया है। इस आंदोलन में विनोबा भावे से प्रेरणा लेकर जो कार्यकर्ता सक्रिय थे। उनमें जो आस्था विश्वास था, उसे वे आगे निभा नहीं पाए। वे स्वार्थ सिद्धि की दृष्टि से अवसर का लाभ उठाने लगे। परिणामतः दायित्वपूर्ण नयी पीढ़ी का निर्माण नहीं कर सके। तीस पैंतीस सालों में यह आंदोलन दिशाहीन एवं विफल हो गया। उसके अनेक राजनीतिक कारण भी थे। ‘बिस्रामपुर का संत’ उपन्यास में लेखक भूदान आन्दोलन का यथार्थ स्पष्ट करते हुए उसकी विफलता के कारणों का विस्तृत विवरण देते हैं - “देश में चारों ओर आज क्या हो रहा है ? कुछ लोग पिछले पैंतीस साल से सारी व्यवस्था को क्रान्ति से, हिंसा से, आतंकवाद से बदलने की कोशिश कर रहे हैं। पर

उसका नतीजा क्या है ? हिंसा ने सिर्फ हिंसा को बढ़ाया है। मूल व्यवस्था ज्यों की त्यों है। उधर सरकार के पास हर सामाजिक विकृति का सिर्फ एक इलाज है ! कानून।”^{२६} स्पष्ट है कि राजनीतिक पतन, दूरदृष्टि का अभाव, विवेकहीनता, कुशल-नेतृत्व का अभाव, एकांगिता आदि कारणों से देश में अनेक समस्याएँ निर्माण हुई हैं।

७.२.४ प्राकृतिक परिवेश

साहित्य में प्रकृति का चित्रण अनेक प्रकारों से किया जाता है - आलम्बन रूप में, उद्दीपन रूप में, मानवीकरण के रूप में, प्रतीक रूप में, अन्योक्ति रूप में आदि।

उपन्यासों में प्रकृति के विभिन्न रूपों और उपादानों को प्रस्तुत किया जाता है। वर्षा, नदी, पर्वत, खेत, बगीचे, संध्या, सुबह, चाँदनी, रात, विभिन्न ऋतुएँ तथा ताल-तलैया आदि का चित्रण उपरोक्त रूपों में उपन्यासकार आवश्यकतानुसार करता है। वह प्रकृति के मनोरम और भीषण दोनों रूपों को दिखाता है। उपन्यासकार कभी किसी स्थिति विशेष को अधिक स्पष्ट करने के लिए प्राकृतिक स्थिति या बाह्य दृश्यों को विधान करते हैं। उपन्यासों में मानवीय रोगों और संवेदना से संबद्ध जीव और प्रकृति का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध दिखाना प्रकृति-चित्रण का उद्देश्य होता है। इसमें प्रकृति को सजीव रूप में उपस्थित किया जाता है। प्रकृति को कभी प्रतीकों के माध्यम से भी प्रस्तुत किया जाता है। जैसे - ‘निराशा’ के लिए ‘अंधकार’ का, ‘दुःख’ के लिए ‘रात्रि’ का, ‘सुख’ के लिए ‘दिन’ का प्रयोग किया जाता है।

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में प्राकृतिक परिवेश निम्नांकित रूपों में दिखाय देता है।

७.२.४.१ सहायक प्रकृति-चित्रण

उपन्यासकार उपन्यास में अपने प्रतिपाद्य को अधिक प्रभावी ढंग से व्यक्त करने के लिए प्रकृति-चित्रण करता है। श्रीलाल शुक्ल ‘अज्ञातवास’ उपन्यास में रजनीकांत की बेशुमार धन-दौलत को प्रस्तुत करने के लिए प्रकृति के उपमानों में वर्णन करते हैं - “एक मचलती हुई आवारा

शाम । पागल हवाएँ । ऊँचे-ऊँचे पेड़ों की मजबूरी में बंधी, क्षितिज को पल्लवों से छूने के लिए चारों ओर उड़ती बेसब्र हहनियाँ ।”^{२७}

इस प्रकृति-चित्रण से रजनीकांत की आवारागर्दी का तथा सुख-सुविधा का नशा प्रतिपादित हुआ है ।

श्रीलाल शुक्ल जी का उपन्यास ‘पहला पड़ाव’ में भी प्रधान पात्र संतोषकुमार की बेकारी का कारण जो उदासीनता तथा निकम्मापन है, उसे इस प्रकार चित्रित करते हैं - “बाग बगीचा, आम-जामुन, उमड़ती हुई घटा” आदि-आदि के बावजूद वह मामला नहीं बन पा रहा था जो ग्राम-गीतों और रस भरी ग्राम-कथाओं की इमारत में लगाया जाता है क्योंकि धरती में ऊसर फूट रहा था, वनस्पतियों को पीढ़ियों का निकम्मापन चर चुका था और भारत-माता सचमुच ही मिट्टी की प्रतिमा उदासिन बन गयी थी ।”^{२८} इस चित्रण से संतोष कुमार की उदासी तथा भारतीय युवा पीढ़ी की बेकारी के निकम्मेपन को प्रतिपादित किया गया है ।

श्रीलाल शुक्ल जी ने अपने सभी उपन्यासों में पात्रों की मानसिकता को दिखाने के लिए प्रकृति-चित्रण किया है । उनके ‘सीमाएँ टूटती हैं’ उपन्यास में जब चाँद को उसके भाई तारानाथ तथा राजनाथ विमल के साथ जो सम्बन्ध तथा वह बंगलौर जाने का हठ कर रही थी । चाँद का व्यवहार देखकर दोनों भाई समझने लगते हैं कि “आसमान पर बादलों की पर्तों पर पर्तें जमी थीं और रूक रूककर बूँदें पड़ रही थीं । अंधेरा इस तरह फैल गया था जैसे राजनाथ के बंगले को कुछ अदृश्य छापामारों ने घेर लिया हो । कुर्सियाँ लोन से हटाकर बरामदे में डाल दी गयी थी ।”^{२९} अतः तारानाथ सोचता है कि अब चाँद अपने व्यवहार से नहीं बदलेगी । उसको मौसम की तरह समझना चाहिए । लेखक इस चित्रण के माध्यम से दो भाईयों के बीच चाँद की बाधा को स्पष्ट करते हैं ।

इसी तरह ‘पहला पड़ाव’ उपन्यास में संतोष जब शहर से अपने गाँव जाता है तब ‘अभी सात-आठ दिन में ही आसमान बादलों से ठक जाएगा, वे पेड़ असाढ़ के पहले दौंगरे में भीग रहे होंगे, तब मेरी भी जिंदगी का

मौसम बदलेगा, तपन के छोटे-छोटे धब्बे भले ही रह जाएँ, चारों ओर से बँधा हुआ दमधोटू उमस का यह धेरा जरूर टूटेगा।”^{३०} उपन्यास का प्रधान पात्र संतोष कुमार को भविष्य के प्रति अगाध विश्वास है कि आगे जरूर ऐसी कोई घटना घटित होगी जो उसके जीवन में एक नया आधार, सहारा होगी। वह बदलते मौसम के माध्यम से अपने जीवन का भी मौसम बदलेगा यह आत्मविश्वास रखता था।

‘मकान’ उपन्यास में नारायण सिम्मी की चिट्ठी पाकर चिंतित होता है कि “जाड़े की क्षीण कोहरेवाली रात घिर आयी है। चिड़ियाँ तक पेड़ों पर अपने पंख समेटकर चुपचाप सो गयी हैं पर मेरा मन अभी भी किंगफिशर की तरह अंतरिक्ष में एक ही जगह टिका हुआ अपने डैने हिलाता है और बार-बार गोता लगाकर नीचे पानी में चोंच मारता है। सिम्मी की दुश्चिन्ता नीचे झील की तरह फैली है।”^{३१} इस तरह नारायण रात के समय सिम्मी के बारे में चिन्तित दिखाया है।

लेखक श्रीलाल शुक्ल जी के अन्य उपन्यास ‘बिस्रामपुर का संत’ में महामहिम राज्यपाल कुँवर साहब अस्सी साल बाद निवृत्त हुए थे। उनकी इच्छा अब राजदूत बनने की थी। “दरअसल देख वे सड़क को भी नहीं रहे थे। सिर्फ उनकी आँखें सड़क पर थीं और आँखों में वाशिंगटन का एक जीवन्त सपना था।”^{३२} इस तरह कुँवर साहब को भविष्य की चिन्ता है।

७.२.४.२ संकेतात्मक एवं सजीव प्रकृति-चित्रण

इस चित्रण द्वारा उपन्यासकार पाठक के सामने सुन्दर दृश्य उपस्थित करके एक अलग संकेत देता है। श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास ‘सूनी घाटी का सूरज’ में प्रधान पात्र रामदास पढ़ाई के लिए गाँव से कानपुर अजनबी औद्योगिक शहर में जाता है तब “जुलाई का महीना था और बूँद-बाँदी हो रही थी। सवेरे सात बजे से ही हजारों की संख्या में जाते हुए मिल के मजदूरों और गंगा-स्नान के प्रेमियों की अपार भीड़ में मुझे अकस्मात न जाने कैसा भय-सा लगा। लगा कि मैं एक नये किन्तु अज्ञात जीवन में प्रवेश कर रहा हूँ।”^{३३} इस प्रकृति-चित्रण से स्पष्ट होता है कि रामदास एक देहाती लड़का कानपुर आकर

अंग्रेजी स्कूल में पढ़ेगा। यहाँ उसके लिए सब अपरिचित हैं। ऐसे एक अज्ञात जीवन में वह प्रवेश कर रहा है। इसका संकेत दिया है।

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास ‘सीमाएँ टूटती हैं’ में विमल-सलुजा की उम्र सैंतालीस की है। जुली के साथ घूमने जाता है, तब “चाँदनी धुँद से भरी हुई थी और इधर-छितरे हुए इमली के पुराने पेड़ों पर उसने एक अंधेरी धूसरता थोप दी थी। एक ओर पेड़ों के आगे एक कॉलेज की उन्नीसवीं सदी की इमारत मटमैले समुद्र में किसी द्वीप में टकराए हुए दानवाकार जहाज-जैसी अचल खड़ी थी।”^{३४} यहाँ बताया है कि विमल के साथ तीस वर्षीय जूली घूमने जाती है। उनके विवाह बाह्य सम्बन्ध का धुंध अंधेरा इन शब्दों के द्वारा सूचित किया है। विमल एक विधुर कामासक्त व्यापारी था। उन दोनों का सम्बन्ध का संकेत इस चित्रण से स्पष्ट है।

उपन्यास में आगामी घटनाओं या परिस्थितियों का विश्लेषण करने के लिए उपन्यासकार विषयवस्तु में निहित पूर्व घटनाओं की सहायता लेता है। श्रीलाल शुक्ल जी ने अपने ‘सूनी घाटी का सूरज’ उपन्यास में प्रधान पात्र रामदास की जीवन समस्या प्रस्तुत करने के लिए इसी प्रकार प्रकृति-चित्रण किया है। रामदास के जीवन में जो संकट उग्र रूप लेकर सामने आते हैं, उसकी पूर्व सूचना जैसे लेखक यहाँ देता है - “न जाने कितने साँप, बिच्छु, बिषखोर, खनखजूरे, चमगादड़, लोमड़ी और सारस इस कुहासापूर्ण ठंडी रात में अपने अस्तित्व का परिचय दे रहे हैं।”^{३५} इस तरह रामदास के जीवन में अनगिनत संकट आते रहते हैं। वह इन संकटों से संघर्ष करते हुए जीवन के लिए प्रेरणा लेता है। अर्थशास्त्र में एम.ए. करके उसे विश्वविद्यालय में किसी की सिफारिश न होने के कारण प्राध्यापक की नौकरी नहीं मिलती।

श्रीलाल शुक्ल जी ने अपने अन्य उपन्यास ‘सीमाएँ टूटती हैं’ में दुर्गादास के माध्यम से धर्म और अपराध वृत्ति को प्रस्तुत किया है। उपन्यास का प्रारम्भ ही सुप्रीम कोर्ट की सुनवाई के माध्यम से होता है। सुप्रीम कोर्ट ने यह फैसला दिया था कि फाँसी की सजा घटकर आजीवन कारावास ही रह जाती है। दुर्गादास के परिवार को विमल समझाता है कि हम और कोशिश

करेंगे। उसकी पृष्ठभूमि इस प्रकृति-चित्रण से स्पष्ट है - “गंगा के उस पार कोई फैक्टरी होगी, उसके कई ब्लब अंधेरे में एक छलना की तरह जल रहे थे। बरामदे की रोशनी बुझते ही वे उन्हें अपनी और खींचने लगे। अंदर के कमरे से रोशनी की एक पतली बछ्छी बरामदे की पूरी चौड़ाई को छेदने लगी। फिर भी एक संतोषप्रद अंधेरा उन्हें घेरे रहा।”^{३६} स्पष्ट है कि दुर्गादास के परिवार को और भी आशा है कि आजीवन कारावास की सजा से दुर्गादास रिहा हो जायेंगे।

उपन्यासकार विषयवस्तु में सजीवता और विश्व-सनीयता निर्माण करने के लिए किसी विशिष्ट स्थान का चित्रण करता है। श्रीलाल शुक्ल जी यथार्थवादी उपन्यासकार है। उनके उपन्यासों में यह चित्रण अधिकतर दिखाय देता है। उनके ‘सीमाएँ टूटती हैं’ उपन्यास में तारानाथ अपने पिता दुर्गादास पर लगे अपराध से मुक्त होने के लिए अयोध्या जाकर प्रार्थना करता है। “जैसे मंदिरों में रोशनी हो गयी थी, पर ऐसी नहीं कि उसमें किसी उत्सव का अतिरेक हो। यह रोज की रोशनी थी जो नदी किनारे की धुंध ठंडी हवा और उदासीनता को और भी गाढ़ा कर देती थी।”^{३७} पिता जी जेल में होने के कारण तारानाथ की उदासीनता बढ़ जाती है, जिस परिवेश के माध्यम से प्रकट किया जाता है।

श्रीलाल शुक्ल के दूसरे उपन्यास ‘मकान’ में जब भी नारायण को मकान एलाट किया जाता है। वह मकान देखने ऐस्पानगर जाता है। जैसे - “सड़क लगभग सूनी थी। हमारे बायीं ओर शहर की इमारतों के पीछे सूर्य डूब रहा था और उसकी किरणों और लाल-पीले बादलों ने इमारतों के बीच छूटे हुए आसमान को घेर लिया था। हमारे आगे सड़क बराबर ऊँची होती जा रही थी और दोनों ओर की ऊबड़-खाबड़ जमीन पर पेड़ों के झुरमुट और नये बने या अधबने मकानों की कतारें थी।”^{३८} उपन्यास में महानगरों में मकान की समस्या चित्रित है। मकान मिल जाने पर शहर निवासी को सारा परिवेश सुखद, आश्वस्त करने वाला प्रतीत होता है। इस प्रकार परिवेश मानव मन के भावों को अधिक सजीव रूप में साकार करने का उत्तम माध्यम है।

७.२.४.३ मानवीकरण, प्रतीकात्मक एवं व्यंग्य रूप में प्रकृति-चित्रण

मानवीकरण के सम्बन्ध में गणपतिचन्द्र गुप्त कहते हैं -
“जहाँ प्रकृति को सजीव रूप में उपस्थित करते हुए उसे मानवी रूप प्रदान कर दिया जाता है, उसे ही मानवीकरण रूप कहते हैं।”^{३६}

श्रीलाल शुक्ल जी ने प्रकृति का सजीव रूप उपन्यासों चित्रित किया है। उनके ‘सूनी घाटी का सूरज’ उपन्यास में मजदूरों की स्थिति प्रधान पात्र रामदास के माध्यम से प्रस्तुत है कि “पश्चिमी क्षितिज के पास बहुत घने काले बादल इकट्ठे हो गये थे। पहाड़ीयों के पीछे छिपते कहीं फूट रही थीं। लगता था कि वृक्षों के पीछे पहाड़ों की दूसरी ओर काले मेघों के गहन आवरण को ये ज्वालाएँ जला डालेंगी। बादलों की वह कालिमा रक्तिम किरणें, छितरी हुई पहाड़ियों, फैलती हुई छायाएँ, मैं चुपचाप सब कुछ देखता रहा।”^{४०} यहाँ रामदास सोचता है कि अंधेरा हो रहा है। सूरज की रक्तिम किरणें कितने भयानक रूप धारण कर चुके हैं। जैसे - वह वृक्षों, मेघों को जला डालेगी। दूसरी ओर मजदूर लोगों का शोषण ठेकेदार करते हैं, उस स्थिति को दर्शाने के लिए यहाँ प्रकृति का मानवीकरण किया गया है।

‘सीमाएँ टूटती हैं’ उपन्यास में हर शाम होटलों में जो भीड़ बढ़ने लगती है। उसका चित्रण इस प्रकार है - “मौसम के आखिरी फूल, पिटुनिया, फ्लाक्स और ऐस्टर, जिद्दी बच्चों की तरह जो शाम हो जाने पर भी मेला छोड़कर घर नहीं लौटना चाहते - मार्च के अंतिम दिनों की गरमी झेलकर भी क्यारियों में खिल-खिलाते रहे थे। इस समय वे रात के जादू से स्थिर हो गये। वे लम्बी-चौड़ी लोन उन क्यारियों के साथ इस समय एक बेलबूटेदार चादर की तरह बिछी हुई थी जिस पर वेटरों और गिलासों की मदद से डिनर के पहले का नाटक खेला जा रहा था।”^{४१} इस तरह बड़े-बड़े शहरों में हर शाम सम्पन्न, उच्चभ्रू बस्तियों में खुशहाल चित्रण करते हुए उनकी जिन्दगी किस तरह नाटकीय है, इसे स्पष्ट किया है।

साहित्य के क्षेत्र में प्रतीक ऐसे शब्द-चिन्ह या वस्तु को कहते हैं, जिसके माध्यम से किसी अन्य वस्तु का बोध होता है। प्रतीक की

परिभाषा गुप्त महोदय के अनुसार - “यह एक संदर्भ के यथार्थ को उसके अनुरूप दूसरे सन्दर्भ के यथार्थ के रूप में प्रस्तुत करता है।”^{४२}

श्रीलाल शुक्ल जी के उपन्यासों में प्रकृति का प्रतीक रूप में चित्रण कई जगहों पर हुआ है। ‘अज्ञातवास’ उपन्यास में रजनीकांत के जीवन में अकेलापन, निराशा एवं उससे उत्पन्न पीड़ा है। उसे अंधेरा, काल रंग, जंगल, धने झुरमुट के प्रतीकों द्वारा व्यक्त किया है- “कभी-कभी जान पड़ता है, चारों ओर से फँस गया हूँ। सामने उजाला था। उसे छोड़कर जहाँ आ गया हूँ, वहाँ अंधेरा है, चारों ओर पेड़ों के घने झुरमुट हैं जो राह रोकते हैं और अब सोचने की जगह पहले घेर चुका था, वे जंगल उस पर भी हमलावर हो रहे हैं।”^{४३} रजनीकांत पहले सुख-सम्पन्न जीवन जी रहा था, पर अचानक उसके जीवन में परिवर्तन आता है। वह विधुर है। उसे अकेलापन सताता है। उसकी मानसिकता को यहाँ प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है।

उपन्यास ‘पहला पड़ाव’ में अमीर और गरीब वर्ग को प्रतीकात्मक प्रकृति-चित्रण से इस प्रकार दिखाया है - “पर पूँजीवादी समाज बड़ा चालाक है। वह अंधेरे की गिरफ्त से पहले ही दूर निकल गया है। आज दिवाली की रात है। रईसों के बंगले रंग-बिरंगी रोशनी में झलमला रहे हैं। अंधेरा उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता और इधर यह गरीब मजदूर, बेचारा कल्लू अस्पताल में पड़ा दम तोड़ रहा होता है। उसी रात वह दम तोड़ देता है।”^{४४} स्पष्ट है कि रात का अंधेरा किसी के लिए खुशी लाता है, तो गरीबों के लिए वह अंधेरा, काल का संकटग्रस्त अंधेरा बन जाता है।

डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त के अनुसार - “किसी विचार को प्रत्यक्ष रूप में व्यक्त न करके प्रकृति के क्रिया कलापों के माध्यम से ध्वनित करते हैं, उसे व्यंग्योक्ति कहते हैं।”^{४५} व्यंग्यकार अपने परिवेश से प्रेरित होता है और साहित्य के माध्यम से जनता में जागृति उत्पन्न करने का प्रयास करता है। श्रीलाल शुक्ल जी ने अपने उपन्यासों में व्यंग्य का बहुत प्रयोग किया है। उनके ‘रागदरबारी’ उपन्यास में प्रकृति-चित्रण के माध्यम से बुद्धिजीवियों पर व्यंग्य किया है - “वहाँ एक नीम का लम्बा-चौड़ा पेड़ था जो बहुत से

बुद्धिजीवियों की तरह दूर-दूर तक अपने हाथ-पाँव फैलाये रहने पर भी तने में खोखला था।”^{४६} यहाँ नीम के पेड़ के माध्यम से बुद्धिजीवियों पर व्यंग्य किया है। बुद्धिजीवियों को जानकारी बहुत होती है लेकिन उसका उपयोग करने में वे असफल होते हैं। न्याय और समानता के सामने वे खोखला हो जाते हैं।

उपन्यास ‘बिस्रामपुर का संत’ में सामंती व्यवस्था पर व्यंग्य रास्ता और गलियारे के माध्यम से किया है - “गलियारा सड़क की सतह से नीचे था। ढाक, अडूसा और कुश-कास की झाड़ियों से घिरा हुआ। सड़क राजा साहब की थी, सभी जानते थे। उस पर उनके परिवार के लोग, नाते, रिश्तेवाले, रियासत के कर्मचारी, सरकारी अमला, सम्मानित मेहमान और इलाके के कुछ खास लोग ही आ-जा सकते थे। यह गलियारा किसानों, मजदूरों और रिआया के लिए था।”^{४७}

इस प्रकृति-चित्रण से ग्रामीण जमींदारी व्यवस्था पर व्यंग्य किया है।

७.२.५ ग्रामीण परिवेश

उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल जी का आरंभिक जीवन गाँव में ही बीता है। इसलिए वे गाँवों की समस्याओं से भलीभाँती परिचित हैं उनका उपन्यास ‘सूनी घाटी का सूरज’ ग्रामीण तथा शहरी परिवेश की विसंगतियों और विद्रूपताओं को अंकित करता है। स्वाधीनता के बाद भारतीय गाँवों में काफी परिवर्तन हुए हैं। शुक्लजी के उपन्यास ग्रामीण परिवेश को लेकर अपनी व्याप्ति में यथार्थ और जीवन्त है -

७.२.५.१ शोषक सामंत वर्ग एवं गाँवों का पिछड़ापन

गाँवों में किसान की अशिक्षा और निर्धनता की जड़ में शोषकों के षड्यंत्र हैं। गाँव से शहर तक बिखरे ये शोषक, स्वार्थी हैं परन्तु फिर भी एक बात सहमत हैं कि किसान ही इनका शिकार है। इसमें जमींदार, साहूकार, ठेकेदार, व्यापारी, सरकारी अधिकारी आदि द्वारा ग्रामीण किसान गरीब मजदूर वर्ग का अनेक प्रकार से शोषण होता है। इसमें कुछ सामंत अनेक प्रकार के अत्याचार-अनाचार करते थे। उसका वर्णन ‘रागदरबारी’ उपन्यास में

इस तरह है - “एक जमाना था कि किसी भी बाँभन-ठाकुर के निकलने पर वहाँ के लोग अपने दरवाजों पर उठकर खड़े हो जाते थे, हुक्कों को जल्दी से जमीन पर रख दिया जाता था, चिलमें फेंक दी जाती थीं, मर्द हाथ जोड़कर ‘पायलागी महाराज’ का नारा लगाने लगते थे, औरतें बच्चों को गली से हाथ पकड़कर खींच लेती थी और कभी-कभी घबराहट में उनकी पीठ पर घूँसे भी बरसाने लगती थीं और महाराज चारो ओर आशीर्वाद लुटाते हुए और इस बात की पड़ताल करते हुए कि पिछले चार महीनों में किसकी लड़की पहले के मुकाबले जवान दिखने और कौन लड़की ससुराल से वापस आ गयी, त्रेता युग की तरह वातावरण पर सवारी गाँठते हुए निकल जाते थे।”^{४८} स्पष्ट है कि सामंत उच्चता को दिखाते हुए भोली-भाली जनता का, लड़कियों का आसानी से शोषण करते थे। आज भी शोषण हो रहा है, सिर्फ उसका तरीका बदला है क्योंकि “शिकार सदैव वही रहता, शिकारी ही बदलते। इन्ही शिकारियों में जमींदार, महाजन आते। सादे कागज पर अंगूठा लगाने के लिए बाह्य करने वाले असह्यता की स्थिति आते। कभी भी अपनी स्थिति का बोध न होने देने वाली अविधा आती। पत्थर जैसी छाती को पीसकर, समस्त पुरुषार्थ को आँसूओं में बहा देने वाली निराशा आती। सब तरह से जीवन को जकड़कर केवल पथराई आँखों से सब कुछ देखते रहने वाली जड़ता आती। शिकार वही था, शिकार अनेक थे।”^{४९} स्पष्ट है कि सामंत वर्ग द्वारा गरीब, असहाय, अशिक्षित किसान, मजदूरों का शोषण, उनका अज्ञान, समस्या, निराशा का लाभ उठाकर हर समय होता रहा है। गरीबी के कारण मजबूर होकर यह उत्पीड़ित वर्ग अपने-आप शिकार बन जाता है।

गाँव अनेक दृष्टियों से पिछड़े हुए हैं। शिक्षा के साथ-साथ गाँवों में शहर की तुलना में स्वास्थ्य के बारे में सामान्य सुविधा भी मुहिया नहीं है। ‘राग दरबारी’ में “अस्पताल में अगर कोई डॉक्टर हुआ भी तो पानी की बोतल पकड़ाकर कहेगा कि लो भाई, राम का नाम लेकर पी जाओ। राम का नाम तो लेंगे ही, क्योंकि उनके पास देने की दवा ही नहीं होगी। होगी भी तो चुराकर बेचने के लिए पहले ही निकाल कर रख ली गयी होगी। तभी तो कहा

है कि शहर में हर दिक्कत के आगे एक राह है और देहात में राह के आगे एक दिक्कत है।”^{५०} इस असुविधा के कारण कोई अपने बलबूते पर शहर जाये तो “उसे सीधे शहर के मेडिकल कालेज के अस्पताल में ले आते हैं। उस मौके पर परिवहन का जाना-माना साधन ताँगा होता है जिस पर उसे लादकर दो घंटे में अस्पताल तक पहुँचा देते हैं, वहाँ ज्यादातर इमरजेंसी वार्ड की देहरी पर घंटे-दो-घंटे गुमसुम पड़ा रहता है और फिर अस्पताल के बाहर कतारों में लगी हुई लाश की गाड़ियों में से किसी एक को चुनकर उसे पहले गाँव वापस लाया जाता है फिर गंगा घाट यात्रा कराई जाती है।”^{५१} इस तरह गाँवों में स्वास्थ्य सुविधा पाना कठिन है, लेकिन मरना आसान है।

७.२.५.२. गाँवों में अशिक्षा एवं शिक्षा की दिशाहीनता

देश में शहरों की तुलना गाँवों में साक्षरता का प्रमाण कम है। अशिक्षा के कारण गाँवों में अज्ञानी लोगों को अनेक प्रकार से धोखा दिया जाता है। ‘सूनी घाटी का सूरज’ उपन्यास में स्पष्ट है कि “यहाँ अशिक्षा और दरिद्रता के क्रूर आतंक में मानव-शरीर का अब भी दासों जैसा व्यापार होता है। रोगों के संक्रामक आघातों और प्राकृतिक विपत्तियों को झलने की, सिवाय भाग्य के और कोई औषधि नहीं है।”^{५२} स्पष्ट है कि सभी समस्याओं की जड़ अशिक्षा है। स्वाधीनता के बाद भी साक्षरता की मात्रा जनसंख्या के अनुपात में नहीं बढ़ी। आज भी ग्रामीण लोग कागज पर अंगूठा लगाते हैं। ‘राग दरबारी’ उपन्यास में स्पष्ट है “दस्तखत कौन करता है ? किसी ने हमारी सात पीढ़ी में भी दस्तखत नहीं किया कि हमीं करेंगे ? देख लो पाँच सौ कागज रखे हैं। हर एक में मैंने अंगूठे का निशान लगाया है।”^{५३} इससे लगता है कि ग्रामीण लोग अपनी अशिक्षा की पुरानी परम्परा को निभा रहे हैं। इससे धोखा, लूट की संभावना अधिक है।

शिक्षा प्रणाली किसी भी राष्ट्र और समाज के निर्माण का आधारभूत तत्त्व होती है। दुर्भाग्य से स्वाधीनता के बाद भी शिक्षा प्रणाली की अपराधिक उपेक्षा होती रही है। इसी कारण आज हमारी संपूर्ण शैक्षणिक व्यवस्था अराजकता और दिशाहीनता का शिकार हो गयी है। भारत में गाँवों में

कुछ जगह शिक्षा संस्थाओं का निर्माण इसलिए हुआ है कि “किसी स्थानीय जन नायक की प्रेरणा से शिक्षा-प्रचार के लिए और वास्तव में उसके लिए विधानसभा या लोकसभा के चुनावों की जमीन तैयार करने के उद्देश्य से खोले जाते थे और उनका मुख्य कार्य मास्टर्स और सरकारी अनुदानों का शोषण करना था।”^{५४} स्पष्ट है कि शिक्षा का प्रचार-प्रसार जननायकों को लाभ पहुँचाने के लिए हुआ। ऐसे स्कूल-कोलेजों से शिक्षा पाई हुई पीढ़ी कह सकती है कि “हम शांति निकेतन से भी आगे हैं, हम असली भारतीय विद्यार्थी हैं, हम नहीं जानते कि बिजली क्या है, नल का पानी क्या है...।”^{५५} इस तरह शिक्षा से मूलभूत ज्ञान अपेक्षित है वह भी नहीं मिल पाता। ऐसे ग्रामीण युवक जब “किसी डिग्री कॉलेज या विश्वविद्यालय में जाते हैं तो अपने शहरी मित्रों के मुकाबले उनकी जानकारी और अध्ययन का दायरा बहुत सीमित होता है।”^{५६} स्पष्ट है कि गाँवों में शिक्षा के बारे में इतना ध्यान नहीं दिया जाता, जितना शहरों में। इसके लिए गाँवों में शैक्षणिक वातावरण निर्माण करने की आवश्यकता है, नहीं तो शिक्षा व्यवस्था में अराजकता और दिशाहीनता बढ़ने की संभावना और अधिक है।

देश में सभी समस्याओं के निर्माण होने का एक कारण जनसंख्या वृद्धि है। दिनो दिन बढ़ती जन संख्या रोकने के लिए सरकार ने परिवार नियोजन योजना कार्यान्वित की है लेकिन उसमें भी भ्रष्टाचार हुआ, प्रत्यक्ष परिवार नियोजन का हुआ और नकली रेकोर्ड बनाये गये। “फर्जी नसबन्दी की आमदनी का अपना तंत्रशास्त्र है। नसबन्दी कराने वालों को हमारे यहाँ कुछ रूपया तंदुरस्ती बढ़ाने के लिए दिया जाता है, कुछ रूपया उसका भी मिलता है जो किसी को नसबन्दी के लिए फाँस-फूँस कर लाता है यानी प्रेरित करता है और कुछ आपरेशन करने वाले डॉक्टर को मिलता है। यह सारा खेल आबादी को नियंत्रित करने और उसके द्वारा देश की खुशहाली बढ़ाने के नाम पर होता है।”^{५७} यह योजना प्रारम्भ होकर भी जनसंख्या काबू में नहीं आयी, इसका एक कारण इस योजना की असफलता है।

७.२.५.३ गाँवों में स्त्री जीवन की दासता, अंधविश्वास, दहेज एवं ऊँचनीच का भेद

गाँवों में स्त्री जीवन की दासता का वर्णन शुक्लजी ने अनेक उपन्यासों में किया है। 'सूनी घाटी का सूरज' उपन्यास का उदाहरण द्रष्टव्य है -
“सासों के डर से चुराकर वे घी-दूध व शक्कर खा सकती हैं। पति से बचाकर घर का अनाज बेच सकती हैं। घर की चहार दिवारे में बंद रहकर चौबीसों घंटे गंदे-गंदे लड़कों को खिलाने में, खाना पकाने और बर्तन मलने में, अनाज की लूट-पीस में सारा दिन बिताने के बाद अपनी ऊब और घुटन मिटाने का उनका यही साधन है। इससे पैसा मिलता है, स्वास्थ्यवर्धक प्रसन्नता आती है।”^{५५}
इससे ग्रामीण स्त्री जीवन की दासता स्पष्ट होती है। कहीं-कहीं चोरी-छिपे सुख पाने का प्रयत्न भी करती है।

अंधविश्वास देहातों में अधिक रहता है। देहाती लोग अशिक्षित, अज्ञानी होने के कारण भूत-पिशाच, शकुन-अपशुकन, मंत्र-तंत्र, ग्रहयोग, देवी-देवता, मन्त्रों, लीलाएँ आदि कतिपय बातों पर विश्वास रखते हैं। श्रीलाल शुक्ल जी ने 'सूनी घाटी का सूरज' उपन्यास में इसी तरह अमजदअली रामदास को बताता है कि “इन जिन्नात की न पूछो। कहने को तो यह मुसलमान हैं, पर ये तुम्हें हिन्दू भूतों से बढ़कर भयानक हैं। तुम्हारे यहाँ तो भूत पटकता है, प्रेत खाने को दौड़ता है, अगिया-वैताल बदन झुलसाता है, चुडैल पास लेटकर आदमी का खून चूस लेती है, बरमराक्षस पीपल का पेड़ सिर पर गिरा देता है, पर लेता क्या है ? ज्यादा से ज्यादा साल छह महीने बुखार आ जाता है। पर ये जिन्नात व खबीस सबके चाचा होते हैं। खबीस के एक नयना व एक एक आंत होती है। नाखून बड़े-बड़े होते हैं। जिस पर सवार होती है, उनके जिस्म में दिन-रात नाखून गड़े रहते हैं। उसकी छाती में खबीस के तार जैसे बाल चुभा करते हैं। दर्द और डर के मारे इंसान चीखा करता है और दस पन्द्रह दिन में वह भूखा ही मर जाता है। बरमराक्षस लग जाये, पर खबीस से किसी का पाला न पड़े। एक बार तो एक खबीस मुझे ही रास्ते में मिल गया।”^{५६} इस तरह स्कूल की पढ़ाई के दौरान ही बच्चे भूत, जिन्नात, खबीस

की बातें करने लगते हैं। इस प्रकार की चीज-विचित्र, भ्रामक कल्पनाएँ अभी भी ग्रामीण जीवन में मौजूद हैं।

हमारे देश में दहेज एक कुप्रथा है। आज भी दहेज के बिना शादी नहीं होती है। ‘रागदरबारी’ उपन्यास में बेला के पिता गयादीन - “जब दामाद खरीदने निकले हैं तो अच्छी कीमत भी देने को तैयार हैं। उस पर शादी बिना किसी दिक्कत के तय हो गयी, सिर्फ लड़के की कीमत के बारे में बात पक्की नहीं हो पायी।”^{६०} दहेज के प्रति सबकी राय एक है कि लड़का अपना हो तो दहेज लेना ही चाहिए। आज शिक्षित नौकरी-पेशा युवक भी दहेज की अधिक अपेक्षा रखता है। आज “देश के औसत नौजवानों की तरह जो प्रेम अपने साथ पढ़ने वाली लड़कियों से और ब्याह अपने बाप के द्वारा दहेज की सीढ़ी से उतारकर लायी गयी लड़की से करता है।”^{६१} इससे स्पष्ट है कि शादी-ब्याह में प्रेम से अधिक दहेज को महत्व दिया जाता है। इस कुप्रथा को शिक्षित माता-पिता भी बढ़ावा देते हैं।

गाँवों में शहरों की तुलना में जातिगत ऊँच नीच भेद अधिक दिखाय देता है। ‘सूनी घाटी का सूरज’ उपन्यास का उदाहरण दृष्टव्य है “अरे चमरवा ने मेरे ऊपर गुठली थूँक दी। उसके दाँत तोड़ दूँगा। बाँभन और ठाकुरों के लड़के हरीराम को पकड़ लेते हैं। वह चमार का लड़का था।”^{६२} स्कूलों में भी बच्चे उसी संस्कार के अनुरूप वर्तन करते हैं, यह स्पष्ट होता है।

७.२.५.४ किसानों की दुर्दशा एवं दारिद्र्य

ग्रामीण किसान मूलतः अशिक्षित व अज्ञानी रहते हैं। इस कारण उनका अनेक प्रकार से शोषण होता है। ‘अज्ञातवास’ उपन्यास में “सबसे डरना। अपने से, ऊँची जाति वालों से, ऊँचे वर्ग वालों से, महाजनों से, वैद्यों से, थाने से, तहसील से, भूत-प्रेत से, महामारी से, भाग्य से, भगवान से डरना। जिससे न डरना, उसके लिए डर बनकर रहना। कदम-कदम पर झगड़े और मुकदमों की बातें। नहर के पानी के झगड़े। बागों से फल और लकड़ी लेने के झगड़े। खेतों की मेड़ के लिए होने वाली फौजदारियाँ। अपनी जमीन पर जानवारों के विकास को लेकर होने वाले हत्याकांड।”^{६३} यह यथार्थ है ग्रामीण

भारतीय किसान का। इसे लेखक ने अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। किसानों, मजदूरों के इन संघर्षों के कारण उनका विकास नहीं हो पाता बल्कि अधोगति होती है और यह एक कारण भी है किसान से मजदूर बनने का।

आचार्य विनोबा भावे जी ने भूदान आंदोलन के माध्यम से भूमि (खेती) का समान वितरण करके सामाजिक विकास चाहा था। उन्होंने कहा था कि जैसे हवा और घूप एक की नहीं, सबकी है। वैसे ही जमीन भी। लेकिन इस भूदान में जमींदारों ने एक-एक, दो-दो गाँवों की बंजर जमीन दान करके उसका राजनीतिक सामाजिक लाभ उठाया है। वे ही इस आन्दोलन के केन्द्र में आ गये। 'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास में "जिन जमींदारों ने अपने किसानों के अंगूठे लगवाकर यह भूमि भूदान में दी थी, वहीं कई सालों से सरकारी फार्म के अध्यक्ष बने हुए हैं। इसके बाद कहने को क्या रह जाता है?"^{६४} इसमें किसी ने गबन किया, किसी पर भी नहीं चला। योजना के अनुसार सरकारी सहायता का स्रोत आते-आते सूख जाता था। क्योंकि "हर एक मुख्यमंत्री इस मुर्दा घोड़े पर सरकारी अनुदान के कोड़े बरसाता रहा है। एक आता है और कुटीर उद्योग के नाम पर पाँच लाख का अनुदान घोषित कर जाता है। दूसरा दस्तकार प्रशिक्षण के नाम पर दस लाख। फिर तीसरा सामाजिक विकास के नाम पर बीस लाख। पर इन लाखों का क्या हो रहा है?"^{६५} इस आंदोलन में सहकारी फार्म के सुपरवाइजर, इंस्पेक्टर, संस्था के सचिव, अध्यक्ष, जिले के कृषि अधिकारी आदि सभी ने आर्थिक, सामाजिक लाभ उठाया है। भूदान आंदोलन ऐसे लोगों के कारण असफल रहा है।

७.२.६ शहरी परिवेश

शहरीकरण का सम्बन्ध केवल औद्योगीकरण से नहीं है। आधुनिक शहरों में सुविधा सम्पन्न साधनों को एक जगह केन्द्रित किया गया है। उसी प्रकार देहातों से लोगों को जीविकोपार्जन के लिए शहर खींच लाते हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल में शहरों की ओर लोगों का आकर्षण सभी दृष्टि से बढ़ा है। इसलिए शहरों में भीड़-ही-भीड़ नजर आती है। इन छोटे-बड़े शहरों का जीवन

बहुत तेज और संघर्षपूर्ण है। यहाँ गति ही जीवन है। रुकने का अर्थ पिछड़ापन है। इनमें आत्मीयता, आपसीपन, ढूँढना बेकार है। इसमें अपरिचय, अकेलेपन, खुदगर्जी, अनात्मीयता का बोध होता है। यहाँ के जीवन में प्रायः निकट के सम्बन्धों में तनाव और टूटन की स्थितियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। इन समस्याओं के साथ कुछ सामाजिक, सांस्कृतिक समस्याएँ भी जिनमें बेकारी, भुखमरी, बीमारी, गरीबी, असुरक्षा, हत्यारों और अपराधियों की सक्रियता, अकेलापन, आत्मघाती स्थितियाँ और सकीर्ण मनोवृत्ति आदि विसंगतियाँ दिखाई देती हैं। दूसरी ओर शहरों में जीवन-स्तर, रहन-सहन, आचरण, आज शहर शिक्षा, साहित्य, संस्कृति, कला, संचार साधनों और राजनीति आदि के केन्द्र बन गये हैं। शहरों में उद्योग और व्यापार का समुचित विकास भी दिखाई देता है।

श्रीलाल शुक्ल के सूनी घाटी का सूरज, अज्ञातवास, आदमी का जहर, सीमाएँ टूटती हैं, मकान, पहला पड़ाव, बिस्रामपुर का संत, आदि उपन्यासों में शहरी वातावरण दिखाई देता है। वह निम्नलिखित है -

७.२.६.१ सामंत वर्ग एवं सामाजिक असमानता

शहरी विकास के साथ पुराने भूस्वामी, जमींदार, साहुकार, महाजन आदि देहातों से शहरों में बस गये हैं। वे कल कारखानों के साथ बड़े-बड़े व्यापार भी कर रहे हैं। इन्हीं के साथ कुछ बड़े अफसर, ठेकेदार आदि में सामंत वर्ग के प्रतिनिधि हैं। यह सामंत शोषण की उसी परम्परा को निभाते हैं जो आर्थिकता पर आधारित है। शुक्ल जी के उपन्यास 'पहला पड़ाव' में परमात्मा जी गाँव की जमीन बेचकर शहर में आवास योजना चलाते हैं। वे कहते हैं कि "भाई हम लोग पुराने जमींदार हैं किसी को सताना नहीं चाहते, पर जब वह काम ही न कर पाएगी तो उसके यहाँ पड़े रहने से क्या फायदा। यहाँ उसके लिए कोई हल्का काम नहीं है?"^{६६} इस तरह एक पुरानी विधवा गर्भवती मजदूरीन को काम से निकाल देते हैं। इसी तरह मकान का काम को देखे बिना इंजीनियर के अनुसार - "वे मेहनत के नतीजे को देखे बिना मेहनत करने वाले सीधे-सीधे प्राणी थे। उनकी समझ में रोटी का मतलब गेहूँ से बनी और आग पर सिंकी एक टिक्की भर था, उसकी खूबसूरती और नफासत और

मुलायमियत आदि से उनका कोई सरोकार न था।”^{६७} स्पष्ट है कि सामंत वर्ग काम से मतलब रखता है। जो इनके यहाँ काम करेगा वह व्यक्ति कुछ उपयोग का हो तभी उसे काम पर रखेंगे। श्रम कर लेना ही इनका स्वार्थ है।

श्रीलाल शुक्ल जी ने सामाजिक असमानता को अनेक उपन्यासों में चित्रित किया है। ‘बिस्मामपुर का संत’ उपन्यास में राजभवन के माध्यम से उदाहरण दृष्टव्य है - “वहाँ कुछ दिन पहले राज्यपाल विरोधियों ने खबर फैलायी कि अगर कोई दलित राजभवन के सोफे पर बैठ जाये या कोई पर्दा छू ले तो राज्यपाल उसका कपड़ा बदलवा डालते हैं।”^{६८} इस तरह महामहिम राज्यपाल कुँवर जयंतिप्रसाद सवर्ण होने के कारण भूतपूर्व राज्यपाल को सामान्य समझते हैं। इससे सामाजिक असमानता की अभिव्यक्ति स्पष्ट होती है।

७.२.६.२ अपराध, कलाकारों का शोषण एवं भीड़

शहरों के सामाजिक जीवन में राजनीतिक प्रभाव बढ़ रहा है। शहरों में अन्यान्य कारणों से अपराध भी बढ़ रहे हैं। ‘पहला पड़ाव’ उपन्यास में “जो आदमी आज तक मेरी निगाह में अदना सा गुंडा था जिसका काम ठेकेदारी के अलावा सार्वजनिक पार्कों से लोहे की रेलिंग की चोरी कराना, सरकारी गादामों में सीमेंट और लोहे की सरिया तिड़ी करना और पहले एक मैटाडोर की गाड़ी में, बाद में एक हरे ट्रैक्टर में शहर का भ्रमण करते मजबूत लोगों के आगे हैं है और कमजोरों पर ‘खों-खों’ करता था, आज वीरगति पाते-पाते शहर की जानीमानी हस्ती बन चुका था।”^{६९} स्पष्ट है शहरों में अपराध करने वाले लोगों को राजनीतिक आश्रय प्राप्त है। उससे वे कोई भी कृत्य कर सकते हैं।

शहरों में कला के विकास के साथ कलाकारों का शोषण भी होता है। ‘आदमी का जहर’ उपन्यास में मलिना नामक लड़की की “हैसियत बहुत मामूली थी। पिता किसी दफ्तर में क्लर्क करते थे। पर मलिना की कला के कारण उसका परिवार अचानक प्रसिद्ध हो गया था। लखनऊ के दर्जनों रईसजादे मलिना को अपने जाल में फँसाने की कोशिश में थे। पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अलावा उसका कोई भी सामाजिक जीवन नहीं था।”^{७०} लेकिन

मलिना का अपहरण करके अनाचार के बाद उसकी हत्या की गयी थी। इस तरह सामान्य मनुष्य का जीवन शहरों में असुरक्षित रहता है।

भीड़ शहर के वातावरण का प्रमुख अंग है। भीड़ अव्यवस्था का प्रतीक है। इसमें मनुष्य अजनबीपन, अकेलेपन और व्यर्थता-बोध का शिकार हो जाता है। आज भारतीय व्यक्ति भीड़ में फालतू होने के बोध को तीव्रता के साथ महसूस कर रहा है। 'मकान' उपन्यास में नारायण इसी तरह अनुभव करता है - “दस बजे तक यह सड़क ट्रक-मोटर-बस-तांगा-रिक्शा-साइकिल-ठेला-पैदल आदि से खचाखच भर जाती है और इतनी लम्बी चौड़ी होते हुए भी गलियों से बदतर हो जाती है। सड़क पर पड़े हुए कूड़े के ढेर और पशुओं के सचल दल प्रत्येक यात्री की गति को दुर्गति में बदल देते हैं।”^{७१} इस भीड़ भरे वातावरण में हर व्यक्ति अकेला है। नारायण भीड़ में फँसा हुआ है। वह अपने पूरे सही या गलत अस्तित्व के साथ फालतू हो गया है।

७.२.७ परिवेश चित्रण की महत्ता

लेखक जिस वातावरण में रहकर अपनापन पाता है, उस वातावरण की विषयवस्तु और पात्रों के चरित्र के निर्माण द्वारा स्वाभाविक अभिव्यक्ति करना वातावरण का साहित्य में महत्वपूर्ण प्रयोग है।

साहित्य रचना में वातावरण चित्रण बहुविध रूपों में पाया जाता है। परिवेश चित्रण धरातल के रूप में किया जाता है, कहीं पर वह दो घटनाओं को जोड़ने वाली श्रृंखला में काम करता है। वातावरण चित्रण द्वारा पात्रों की मानसिकता को उजागर किया जाता है, कहीं पर परिवेश चित्रण कथा का संवाहक बन जाता है। वातावरण चित्रण द्वारा साहित्यकार यथार्थ को अधिक सशक्त रूप में प्रकट करता है। संक्षेप में विषय वस्तु और उसमें निहित स्पष्टीकरण को प्रभावी तथा सजीव बनाने वाला परिवेश चित्रण ही अभिव्यक्ति का अंग बन जाता है।

बाबू श्रीलाल शुक्लजी ने अपने उपन्यासों के परिवेश को उपस्थित करने में यथार्थ की मर्यादाओं को पार करते हुए परिवेश चित्रण किया है। परिवेश के वर्णन-विवेचन में यथार्थ से विसंगत बातें महत्तापूर्ण प्रयोग से

बाधा उत्पन्न करती हैं। अतः उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल जी ने सावधानी से परिवेश चित्रण का प्रयोग करते हुए उसे यथार्थ का अंग बनाया है।

बाबू श्रीलाल शुक्ल जी के उपन्यासों के परिवेश चित्रण पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने उपन्यास में परिवेश की मुनासिबत को स्थापित किया है। उपन्यास के विवेचन में वस्तु और पात्रों के साथ-साथ परिवेश का महत्त्व स्वीकार करते हुए परिवेश चित्रण के द्वारा उपन्यास का कथ्य-विवेचन और उपन्यास के पात्र या चरित्र-चित्रण को उपन्यासकार ने सही आधार देते हुए प्रस्तुत किया है। वातावरण श्रीलाल शुक्ल के औपन्यासिक अभिव्यक्ति की एक प्रेरणा रही है। उन्होंने स्वाधीनता के बाद की ग्रामीण और शहरी सामाजिक स्थिति, औद्योगीकरण की दुर्बलताएँ, आर्थिक अन्याय, धार्मिक स्थिति, शासन की अव्यवस्था, शिक्षा एवं शिक्षित वर्ग, न्याय-व्यवस्था, राजनीतिक स्थिति, पुलिस व्यवस्था आदि समस्याओं को परिवेश के द्वारा उपस्थित किया है। उन्होंने व्यक्ति के मन को और परिवेशगत यथार्थता को संयुक्त रूप में उपस्थित किया है।

स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण परिवेश में लोगों को सरकारी प्रशासन ने कितना गुमराह किया है इसका यथार्थ चित्रण इस प्रकार है - “उन दिनों गाँव में लेक्चर का मुख्य विषय खेती था। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि पहले कुछ और था। वास्तव में पिछले कई सालों से गाँव वालों को फुसलाकर बताया जा रहा था कि भारत-वर्ष एक खेतिहर देश है। गाँव वाले इस बात का विरोध नहीं करते थे, पर प्रत्येक वक्ता शुरू से यह मानकर चलता था कि गाँव वाले इस बात का विरोध करेंगे। इसलिए वे एक के बाद दूसरा तर्क ढूँढ़कर लाते थे और यह साबित करने में लगे रहते थे कि..., तुमको अच्छी खेती करनी चाहिए, अधिक अन्न उपजाना चाहिए।”^{७२} इस तरह निष्क्रिय प्रशासन का बड़बोलापन यहाँ व्यक्त होता है। जिसके माध्यम से स्वतंत्रता के बाद के राज्य शासन का पाखंड प्रकट हुआ है। किसानों को अपनी गरीबी के साथ-साथ व्यवस्था की हमदर्दी शून्य डाँट-फटकार भी जेलनी पड़ी है।

उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल के 'सूनी घाटी का सूरज', अज्ञातवास रागदरबारी, पहला पड़ाव, बिस्रामपुर का संत, आदि उपन्यासों में ग्रामीण वातावरण में समाजवादी तत्त्वों की तलाश की है। उन्होंने ग्रामीण विद्रूपता को व्यंग्यात्मक रूप में प्रस्तुत करके समाज के सामने सच्चाई व्यक्त की है। वे ग्रामीणों के बोध का यथार्थ परिवेश के द्वारा उपस्थित करते हैं। उन्होंने ग्रामीण समाज में फैली अव्यवस्था, दिशाहीनता, दारिद्र्य, खोखलापन, असहायता, शोषण का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है। जिससे विशेष प्रकार की सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था का सहज परिणाम है, उसे स्वाभाविकता से प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यासों में भ्रष्ट प्रशासनिक व्यवस्था का विरोध है। 'रागदरबारी' उपन्यास में वैद्य जी द्वारा संचालित व्यवस्था जब असह्य हो जाती है, तब उनका लड़का रूपन तथा भांजा रंगनाथ उस व्यवस्था से पलायन करते हैं। इससे स्पष्ट है कि उनके उपन्यासों के प्रधान पात्र व्यवस्था से भाग खड़े होते हैं क्योंकि बहुत प्रयासों के बाद भी व्यवस्था अपरिवर्तनशील ही बनी रहती है। इन-गिने व्यक्ति उसे बदल नहीं पाते, न उसे झेल सकते हैं। उनके सामने पलायन के सिवा और दूसरा कोई रास्ता नहीं बचता। रामदास, रंगनाथ, विमल, नारायण, संतोषकुमार आदि पात्रों के द्वारा इस तथ्य को उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है। पात्र एवं परिवेश के संघर्ष के माध्यम से उपन्यासों में महत्तापूर्ण चित्रण है।

स्वतंत्रता के बाद आर्थिक विसंगतियों के कारण देश में चोर-बाजारी, घूसखोरी, भ्रष्टाचार, क्षुद्र स्वार्थ और संकीर्णता का बोलबाला रहा है। 'पहला पड़ाव' उपन्यास से स्पष्ट है कि इंजीनियर को भ्रष्टाचार के कारण मुअत्तल किया जाता है, पर "आदत से वे काम करने के अभिशप्त हैं। तभी वे तीन भट्ठे चला रहे हैं; एक ट्रांसपोर्ट एजेन्सी बनाकर ट्रकें और टैक्सियाँ चलवा रहे हैं, बड़े-बड़े ठेके ले रहे हैं, चार-चार मंजिले वाले बाजार और दफ्तरों की इमारतें बनवा रहे हैं, अब एक सिनेमा हाउस-बनाने की योजना भी तैयार हो रही है।"^{७३} स्पष्ट है कि ग्रामीण परिवेश के साथ शहरी परिवेश का

यथार्थ उपस्थित है। उपभोक्ता प्रवृत्ति की वृद्धि भौतिक और उसके द्वारा शोषण इस परिवेश की उत्पत्ति है।

इस तरह श्रीलाल शुक्ल जी ने अपने उपन्यासों में ग्रामीण एवं शहरी वातावरण का यथार्थ उपस्थित किया है। श्रीलाल शुक्ल जी के उपन्यासों में परिवेश की विशेषताएँ उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल जी ने परिवेश के माध्यम से आम आदमी के प्रति सहानुभूति दिखाई है। उन्होंने मौजूदा अर्थतंत्र, धार्मिक रूढ़ियाँ, शिक्षा, राजनीति आदि में आम आदमी को उसके हक से कैसे वंचित रखते हैं, इसका यथार्थ चित्रण किया है।

(१) 'सूनी घाटी का सूरज' उपन्यास में - संकेतात्मकता के सहायक प्रकृति चित्रण, घटनाओं की पृष्ठभूमि के लिए सहायक प्रकृति-चित्रण, मानवीकरण रूप में सहायक प्रकृति चित्रण आदि।

(२) सूनी घाटी का सूरज उपन्यास में - राजनीतिक क्षेत्र में नेताओं की अवसरवादिता, भाई-भतीजावाद, शिक्षा संस्थाओं में राजनीति आदि।

(३) सूनी घाटी का सूरज उपन्यास में - गाँवों की गरीबी असहायता, शोषण, अंधविश्वास, पिछड़ापन, सामंतवादी प्रवृत्ति, संघर्षशीलता, शहर की गंदी बस्तियाँ जीवन संघर्ष आदि।

(४) सूनी घाटी का सूरज उपन्यास में - आर्थिक परिवेश के रूप में, आर्थिक शोषण, गरीबी आदि का चित्रण है।

(५) अज्ञातवास उपन्यास में -स्पष्टीकरण की अभिव्यक्ति के लिए सहायक प्रकृति-चित्रण प्रतीकात्मकता को दर्शाने के लिए प्रकृति-चित्रण आदि।

(६) अज्ञातवास में - सामाजिक परिवेश के रूप में ग्रामीण जीवन की विडम्बना, शोषण, आतंक, पारस्परिक वैमनस्य, शहरी सभ्यता के बनावटी व आरोपित रूप, ग्रामीण और शहरी परिवेश का द्वन्द्व आदि।

(७) अज्ञातवास में - आर्थिक परिवेश के रूप में आर्थिक शोषण प्रस्तुत है।

(८) रागदरबारी उपन्यास में - प्रतीकात्मकता को दर्शाने के लिए सहायक प्रकृति-चित्रण, व्यंग्य रूप में सहायक प्रकृति-चित्रण, कथ्य स्पष्ट करने के लिए सहायक प्रकृति-चित्रण, संकेतात्मकता के लिए सहायक प्रकृति-चित्रण आदि।

(९) रागदरबारी में - गांधी सिद्धान्तों का मखौल, अवसरवादिता का स्वार्थ, राजनीति की एकांगिता, ढोंग, घोखाघड़ी त्याग के दिखावे में भोगवाद, जातिवाद, वंश परम्परा, सत्ता लोलुपता आदि।

(१०) रागदरबारी में - सामाजिक परिवेश को देखे तो भारतीय समाज की मूल्यहीनता मानवीय व्यवहारों का एवं चारित्रिक अधःपतन, जर्जर व्यवस्था, भारतीय समाज का क्रूर शोषक यथार्थ, शासन तंत्र की कमजोरियाँ आदि।

(११) रागदरबारी उपन्यास में - आर्थिक परिवेश में गरीबी, महंगाई आदि।

(१२) आदमी का जहर उपन्यास में - पृष्ठभूमि के लिए सहायक प्रकृति-चित्रण, कथ्य को विश्वसनीय बनाने के लिए प्रकृति-चित्रण।

(१३) आदमी का जहर उपन्यास में - राजनीतिक परिवेश को देखे तो राजनीति का यथार्थ, घोखाघड़ी, अवसरवादिता आदि।

(१४) आदमी का जहर में - सामाजिक परिवेश को देखे तो शहरी जीवन का यथार्थ, सामाजिक स्थिति का यथार्थ पत्रकारिता का यथार्थ, व्यभिचारी जीवन, पुलिस व्यवस्था, अपराध वृत्ति।

(१५) आदमी का जहर में - आर्थिक परिवेश को देखे तो लालची पत्रकारिता, मजबूरी, गरीबी आदि।

(१६) सीमाएँ टूटती हैं में - प्राकृतिक परिवेश में के रूप में पात्रों की मानसिकता को प्रभावी बनाने के लिए प्रकृति-चित्रण प्रस्तुत है।

(१७) सीमाएँ टूटती हैं में - सामाजिक परिवेश को देखे तो शहरी उच्च-मध्यमवर्गीय परिवारों की विसंगतियाँ, विद्रुपताएँ, नारी जीवन की विसंगतियाँ, भोग-लिप्सा से बनते-बिगड़ते सम्बन्धों का यथार्थ, रोमान जीवन दृष्टि आदि ।

(१८) मकान उपन्यास में - राजनीतिक परिवेश में राजनीति में दावपेंच, स्वार्थ आदि ।

(१९) पहला पड़ाव में - राजनीति परिवेश में राजनीति में दावपेंच, घोखाघड़ी, अवसरवादिता, पूँजीपतियों का वर्चस्व आदि ।

(२०) बिस्रामपुर का संत उपन्यास में - राजनीतिक परिवेश को देखे तो व्यभिचारी राजनीति, स्वार्थी पूँजीपतियों का वर्चस्व, भूस्वामियों की राजनीतिक मानसिकता, भूदान आंदोलन की राजनीति आदि ।

(२१) मकान में - सामाजिक परिवेश को देखे तो शहरी मध्यमवर्गीय जीवन का यथार्थ, कलाकारों का शोषण, सरकारी दफ्तरों का यथार्थ, बढ़ती जनसंख्या के कारण उत्पन्न आवास समस्या, गंदी बस्तियाँ, हत्याकांड आदि ।

(२२) पहला पड़ाव उपन्यास में - सामाजिक परिवेश को देखे तो लूट तंत्र का यथार्थ, शहरी आवास योजना का खोखलापन, ग्रामीण जीवन का यथार्थ, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी आदि ।

(२३) बिस्रामपुर का संत उपन्यास में - सामाजिक परिवेश को देखे तो ग्रामीण किसानों - मजदूरों का शोषण, भूदान आंदोलन का यथार्थ, अफसरशाही, सरकारी अव्यवस्था आदि ।

(२४) मकान तथा बिस्रामपुर का संत उपन्यासों में - आर्थिक परिवेश को देखे तो महंगाई, आर्थिक शोषण, गरीबी, लालची पत्रकारिता आदि ।

● संदर्भ सूची ●

- (१) डॉ. लक्ष्मीसागर वाष्णेय : द्वितीय महायुद्धोत्तर : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. ३८
- (२) डॉ. आदित्य प्रसाद : औपन्यासिक : समीक्षा और समीक्षाएँ, पृ. ०४
- (३) डॉ. संसारचन्द्र : संक्षिप्त बिहारी, पृ. १३
- (४) डॉ. रामदरश मिश्र : हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रि, पृ. १३२
- (५) श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृ. ११
- (६) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. १६६
- (७) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. १२१
- (८) श्रीलाल शुक्ल : मकान, पृ. ४७
- (९) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. २१६
- (१०) वही, पृ. २२३
- (११) श्रीलाल शुक्ल : सीमाएँ टूटती हैं, पृ. २६
- (१२) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. २३
- (१३) डॉ. जगदीशनारायण श्रीवास्तव : उपन्यास की शर्त, पृ. २६१
- (१४) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. २६
- (१५) श्रीलाल शुक्ल : बिस्रामपुर का संत, पृ. ८५
- (१६) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. १४५
- (१७) श्रीलाल शुक्ल : मकान, पृ. ६२
- (१८) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. १६
- (१९) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. २८५
- (२०) श्रीलाल शुक्ल : बिस्रामपुर का संत, पृ. १६०
- (२१) वही, पृ. १५६
- (२२) श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृ. ८६
- (२३) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. १००

- (२४) श्रीलाल शुक्ल : बिस्रामपुर का संत, पृ. ६०
- (२५) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. २१८
- (२६) श्रीलाल शुक्ल : बिस्रामपुर का संत, पृ. १६४
- (२७) श्रीलाल शुक्ल : अज्ञातवास, पृ. १५
- (२८) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. ११३
- (२९) श्रीलाल शुक्ल : सीमाएँ टूटती हैं, पृ. ११३
- (३०) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. १००
- (३१) श्रीलाल शुक्ल : मकान, पृ. १६८
- (३२) श्रीलाल शुक्ल : बिस्रामपुर का संत, पृ. ६४-६५
- (३३) श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृ. ६०
- (३४) श्रीलाल शुक्ल : सीमाएँ टूटती हैं, पृ. १४२
- (३५) श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृ. ४२
- (३६) श्रीलाल शुक्ल : सीमाएँ टूटती हैं, पृ. २१
- (३७) वही, पृ. ४५
- (३८) श्रीलाल शुक्ल : मकान, पृ. २०३
- (३९) सं. डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त : हिन्दी भाषा एवं साहित्य विश्वकोश, पृ. ४०१
- (४०) श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृ. ५६
- (४१) श्रीलाल शुक्ल : सीमाएँ टूटती हैं, पृ. २६
- (४२) डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त : हि. भाषा एवं सा. विश्वकोश, पृ. ४२
- (४३) श्रीलाल शुक्ल : अज्ञातवास, पृ. १२
- (४४) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. २०१
- (४५) डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त : हिन्दी भाषा एवं सा. विश्वकोश, पृ. ४०१
- (४६) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. १६८
- (४७) श्रीलाल शुक्ल : बिस्रामपुर का संत, पृ. १२३
- (४८) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. २५६
- (४९) श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृ. ५६

- (५०) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. २६३
- (५१) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. १५२
- (५२) श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृ. ५६-५७
- (५३) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. २२१
- (५४) वही, पृ. २३२-२३३
- (५५) वही, पृ. १६
- (५६) श्रीलाल शुक्ल : बिस्रामपुर का संत, पृ. १७३
- (५७) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. ५७
- (५८) श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृ. २८
- (५९) वही, पृ. ३४
- (६०) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. २६४
- (६१) वही, पृ. २६८
- (६२) श्रीलाल शुक्ल : सूनी घाटी का सूरज, पृ. २१
- (६३) श्रीलाल शुक्ल : अज्ञातवास, पृ. २१
- (६४) श्रीलाल शुक्ल : बिस्रामपुर का संत, पृ. ३५
- (६५) वही, पृ. ३६
- (६६) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. ६७
- (६७) वही, पृ. २६
- (६८) श्रीलाल शुक्ल : बिस्रामपुर का संत, पृ. ६७
- (६९) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. २२६
- (७०) श्रीलाल शुक्ल : आदमी का जहर, पृ. ११८
- (७१) श्रीलाल शुक्ल : मकान, पृ. ०६
- (७२) श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. ६०
- (७३) श्रीलाल शुक्ल : पहला पड़ाव, पृ. ३५

✽ उपसंहार

बाबू श्रीलाल शुक्ल स्वातंत्र्योत्तर काल में प्रतिभाशाली सर्जक हैं। उनके साहित्य में स्वतंत्र भारत का यथार्थ सूक्ष्मता, जिम्मेदारी एवं चिन्तन के साथ उपस्थित हुआ है। उपन्यास साहित्य में उनका महत्व सराहनीय है।

बाबू श्रीलाल शुक्ल सन् १९५३ ई. से लेकर आज तक साहित्य रचना के साथ बंधे हुए हैं। उनका साहित्य विसंगतियों के बीच नयी मानवीय नैतिकता की खोज का अविरत प्रयत्न है। उन्हें अपने जीवन के प्रारम्भिक संघर्षों ने आम आदमी का पक्षधर बनाया है। उनका अध्ययन संकीर्णताओं का अतिक्रमण करता है। उनमें आजादी के बाद के छटपटाते समाज को चित्रित करने की शक्ति है। वे प्रेमचन्द के बाद सही अर्थों में समाजदृष्टा साहित्यकारों की कतार में आते हैं। भारत के जनसाधारण के जीवन में सदैव दुख-दर्द मौजूद हैं। इस यातना-पीड़ा का निवारण छोटे-मोटे तत्कालिक संघर्षों से नहीं होता है, इसके लिए सामाजिक दृष्टिकोण एवं सोच में बुनियादी परिवर्तन अनिवार्य है। इसीलिए वे वास्तविकता का चित्रण नहीं, लेकिन सत्यता का विवेचन चाहते हैं।

उपन्यासकार एवं साहित्यकार श्रीलाल शुक्लजी ने 'सूनी घाटी का सूरज' से लेकर 'बिस्रामपुर का संत' तक उपन्यासों के विवेचन से जिस उपन्यास-कला का सृजन किया है, वह हिन्दी उपन्यास साहित्य में उनकी विशेष, मौलिक देन है। एक ओर उन्होंने यथार्थवादी उपन्यासों की रचना की है तो दूसरी ओर उपन्यासों को कला के द्वारा समय एवं समाज की सशक्त पहचान बनाया है। उनके प्रत्येक उपन्यास में अलग से महान लेखकीय संघर्ष है। उपन्यासों में कथ्य के साथ कला भी नयी है। उनमें कला वैविध्य के प्रति विशेष आग्रह है। उन्होंने अपने कथा लेखन में व्यंग्य का विविध रूपों में प्रयोग किया है। व्यंग्य के माध्यम से उन्होंने यथार्थ को केन्द्रीय एवं संप्रेषणीय बनाया है। व्यंग्यकार लेखक के मन में एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था की अलग अवधारणा

होती है। वह समाज की विकृतियों और विसंगतियों को पहचानता है, उसे मिटाने में सक्रिय होकर उन्हें वह अपना गोल बनाता है।

श्रीलाल शुक्ल के 'सूनी घाटी का सूरज' उपन्यास की एक स्वतंत्र सत्ता और अलग जगह है। उसकी विषय वस्तु का आरंभ पात्रों की चारित्रिक प्रवृत्तियों तथा जीवन संघर्षों से हुआ है। उपन्यास में कथा के साथ सभी उपकथाएँ सूत्रबद्ध हैं। उपन्यास का प्रधानपात्र रामदास के माध्यम से उपन्यास की कथा को दो पात्रों के साथ संयोजित करके उन्होंने उपन्यास को नवीनता दी है। पात्रों की मनोवैज्ञानिक स्थितियों को विशद करके लेखक ने विषय को आगे बढ़ाया है। विषयवस्तु को समापन की ओर उन्मुख करके लेखक ने विषयवस्तु को विकसित किया है। विषयवस्तु को समापन की ओर उन्मुख करने के लिए पात्रों के मानस-परिवर्तन की विधि उनके प्रत्येक उपन्यास में देखने को मिलती है।

'अज्ञातवास' उपन्यास में प्रधान पात्र रजनीकांत की की कोमलतम अनुभूतियों को आधार बनाकर प्रकृतिचित्रण के द्वारा विषयवस्तु का आरम्भ किया है। रजनीकांत के वर्तमान और अतीत से विषयवस्तु को विकसित करके उपन्यास का समापन उसके पश्चाताप से किया है।

'राग दरबारी' उपन्यास की विषयवस्तु का प्रारम्भ प्रधान पात्र रंगनाथ के शहर से प्रस्थान से है। रंगनाथ शहर से गाँव आता है। गाँव के प्रति उसकी आदर्श धारणाएँ प्रत्यक्ष अनुभव से बदलती हैं। उपन्यास में रंगनाथ गाँव की विविध घटनाओं का प्रत्यक्षदर्शी है। उसका गाँव से ऊबकर शहर की ओर पलायन विषयवस्तु का समापन है। उपन्यास में एक शोध-छात्र के माध्यम से स्वातंत्र्योत्तर गाँव के बदलते परिवेश, मूल्य धारणाएँ, राजनीतिक प्रभाव, शोषण के नये तरीकों को सजगता से प्रस्तुत किया गया है। लेखक शोषण की कार्य-मीमांसा करते हुए यथार्थ का मूल्यांकन करता है। उससे उपन्यास साकार होता है। यह शैल्पिक ढंग लेखक का विशिष्ट प्रयोग है। 'आदमी का जहर' उपन्यास की विषयवस्तु का आरंभ शहर में एक होटल में दो पात्रों के माध्यम से

हुआ है। उसके जीवन में घटित घटनाओं के माध्यम से विषयवस्तु विकसित है। उपन्यास का समापन शहरी गतिविधियों से किया है।

‘सीमाएँ टूटती हैं’ उपन्यास की विषयवस्तु के आरम्भ में दिल्ली के सुप्रीम कोर्ट का परिवेश चित्रित है। धर्म, प्रेम और अपराध के माध्यम से उपन्यास की विषयवस्तु विकसित है। सम्बन्धों की सीमाएँ टूटने के संकेतों से इस उपन्यास का समापन किया है।

‘मकान’ उपन्यास की विषयवस्तु का प्रारम्भ प्रधानपात्र नारायण से हुआ है। वह शहरी जीवन का अभ्यस्त है। विषयवस्तु का विकास नारायण की दैनंदिन जीवन की घटनाओं से किया है। नारायण की हत्या से उपन्यास का समापन हुआ। ‘पहला पड़ाव’ उपन्यास की विषयवस्तु का आरम्भ शहर में स्थित मजदूर-दम्पति के वार्तालाप से हुआ है। विषयवस्तु का विकास आवास योजना और उसमें सम्बन्धित शोषित और शोषक वर्ग के संघर्ष द्वारा किया है। उपन्यास के समापन में संघर्ष की असफलता प्रकट है जो यथार्थ की सच्चाई है। बिस्रामपुर का संत उपन्यास का प्रारम्भ महामहिम राज्यपाल कुँवर जयन्तिप्रसाद सिंह के सपने के द्वारा करके विषयवस्तु का विकास उनके वर्तमान तथा अतीत की घटनाओं के माध्यम से किया है। जिसमें भूदान आंदोलन का यथार्थ साकार है। उपन्यास की विषयवस्तु का समापन प्रधानपात्र की आत्महत्या से हुआ है। यह आत्महत्या मूल्यों के प्रति लेखकीय आस्था को निर्देशित करती है। स्वार्थी, लालची, पाखंडी, धूर्त, राजनीतिज्ञ का आत्मघात उनके दुर्गुणों की पराजय को अभिव्यक्त करता है। इस तरह इन सभी उपन्यासों के विषयवस्तु में वेविध्य दृष्टिगोचर है।

कथावस्तु के साथ चरित्र-चरिण में विशिष्टता दिखाई देती है। शुक्लजी ने अपने सभी उपन्यासों में पात्रों का चयन तथा नामकरण, आर्थिक एवं चरित्रगत विशेषताओं के आधार पर किया है। पात्रों के चरित्र का विकास व्यंग्यात्मक तथा प्रतीकात्मक शैलियों में हुआ है।

श्रीलाल शुक्लजी के उपन्यासों में देशकाल या वातावरण अनूठा है। उनके उपन्यासों में अनेक परिवेशों का चित्रण है। ‘सूनी धाटी का सूरज’ अज्ञातवास,

रागदरबारी, बिस्रामपुर का संत में ग्रामीण एवं शहरी परिवेश की विविधता है। 'सूनी घाटी का सूरज' उपन्यास में ग्रामीण तथा शहरी परिवेश का यथार्थ पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत है। 'अज्ञातवास' उपन्यास में ग्रामीण और शहरी परिवेश का द्वन्द्व है। 'रागदरबारी' उपन्यास में ग्रामीण परिवेश व्यंग्य को तीक्ष्णता देता है। 'पहला पड़ाव' में ग्रामीण किसान जीवन का यथार्थ है, तो 'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास में भूदान आन्दोलन तथा भूस्वामी सामंतों के शोषण का यथार्थ और उसमें शोषित किसान, मजदूरों की समस्याओं का चित्रण है।

'आदमी का जहर' उपन्यास में समाज-राजनीति तथा पत्रकारिता का यथार्थ चित्रित है। 'सीमाएँ टूटती हैं' उपन्यास में शहरी मध्यमवर्ग का यथार्थ है। 'मकान' उपन्यास में एक मध्यमवर्गीय व्यक्ति के माध्यम से शहरी गतिविधियों का तथा 'पहला पड़ाव' उपन्यास में शहर में स्थित उत्पीड़ित तथा उत्पीड़क वर्ग का शोषणाधारित सम्बन्ध उपस्थित है।

इस प्रकार श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में ग्रामीण तथा शहरी परिवेश के यथार्थ का खुला चित्र हैं तथा वे लेखक के प्रतिपाद्य के संवादक हैं। इन उपन्यासों में परिवेश व्यक्ति के चरित्र का निर्माण, संबंधों का मुख्य आधार, पारस्परिक व्यवहारों की पृष्ठभूमि बनकर प्रस्तुत है।

श्रीलाल शुक्लजी ने परिवेशगत विविधता के साथ भाषा-शिल्प में औपन्यासिक प्रतिमा एवं कौशल का परिवेश दिया है। उनके उपन्यासों में वातावरण तथा समाज के अनुरूप भाषा प्रयुक्त है। सभी उपन्यासों में मुहावरे लोकोक्तियाँ, सूक्तियाँ तथा अलंकारों के साथ व्यंग्य का सटीक प्रयोग हुआ है। उन्होंने पात्र की जाति, शिक्षा, धर्म, वर्गस्तर, परिवेश आदि के अनुरूप सभी उपन्यासों में विविधता के साथ भाषा का चयन करके हिन्दी भाषा को नया रूप, नया मुहावरा प्रदान किया है। उन्होंने परिनिष्ठित हिन्दी के साथ अंग्रेजी, अरबी, फारसी, अवधी आदि भाषाओं के शब्दों का औचित्यपूर्ण प्रयोग किया है।

श्रीलाल शुक्लजी का प्रत्येक उपन्यास उनके पूर्ववर्ती उपन्यासों से भिन्न विशिष्ट है। यह विशिष्टता कथ्य और कला दोनों स्तरों पर है। उनके सारे उपन्यास कला की दृष्टि से असाधारण हैं।

श्रीलाल शुक्लजी ने भारतीय स्वातंत्र्योत्तर संस्कृति और विकास के श्वेत श्याम पक्षों का उद्घाटन विषयवस्तु की संरचना तथा कथावस्तु के बहुविध अंगों से किया है। उनकी प्रतिभा में आजादी के बाद छटपटाते समाज को चित्रित करने की शक्ति है। उनके प्रत्येक उपन्यास की वस्तु संरचना शोषक और शोषित की अलग-अलग मनोभूमि पर निर्मित है। 'सूनी घाटी का सूरज' उपन्यास में प्रधान पात्र रामदास के द्वारा प्रतिभाशाली, ग्रामीण तथा गरीब युवक के संघर्ष, मोह और आस्था का मार्मिक चित्रण है।

'अज्ञातवास' उपन्यास में कुलीन समाज के खोखलेपन, भावनात्मक हिंसा और पतन का आख्यान है। इसमें रजनीकांत का पश्चाताप पिकनिक प्रसंग मार्मिक है।

'रागदरबारी' उपन्यास में आजादी के बाद के विकृत लोकतंत्र को शिवपालगंज की पंचायत, कोलेज का प्रबन्ध तंत्र, कोर्पापरेटिव सोसायटी में गबन आदि की घटनाओं को विद्वृप्ता और भयानकता के साथ व्यंग्य द्वारा संयोजित किया है। इसमें साहित्य, संस्कृति, ज्ञान अथवा विज्ञान, राजनीति, कुटनीति, राष्ट्रीय-अंतराष्ट्रीय कुछ भी नहीं छूटा है। समकालीन परिस्थितियों में व्यंग्य से राजनीति, धर्म, शिक्षा, समाज, अदालत, चोरी-डकैती, थानेदारी और प्रेम आदि प्रसंगों द्वारा देश का चरित्र उभरता है।

'आदमी का जहर' उपन्यास की विषयवस्तु में समाज और राजनीति के कतिपय पक्षों का साक्षात्कार है।

'सीमाएँ टूटती हैं' का विषय धर्म, प्रेम और अपराध द्वारा मनुष्य की तर्कातीत वृत्तियों का, संबंध टूटने के संकेतों का उद्घाटन है।

'मकान' उपन्यास की कथा अर्न्तवस्तु और संरचना दोनों दृष्टियों से जटिल है। मकान की अविराम खोज वारिन दा का आंदोलन, नगर निगम अफसर की चालबाजियाँ तथा संगीत की जिन्दगी की बेसुरी स्थितियों के बीच

मौत के माध्यम से शरीर को चीथड़ों में बदल देने की भयावह स्थितियों के साथ एक मकान जिसे व्यक्ति घर के रूप में पाना चाहता है और स्वयं के शरीर, प्रतिभा तथा व्यक्तित्व के महल को उसकी खोज में समाप्त करता है।

‘पहला पड़ाव’ उपन्यास की कथावस्तु शोषण पर आधारित है। इसमें गाँव की पुरवैया शहर के कांकरिट वाले जंगलो में खो गयी है। उसमें युवा पीढ़ी के भविष्य का संकेत है। वह कहाँ, कैसे अटक पड़ा है। इस तथ्य का तथा शोषण, अपराध तत्र का विस्तार धन कमाने की चालबाजियाँ, हत्या और लूट का सामाजिक स्तर पर सूक्ष्म दृष्टि से उद्घाटन है।

‘बिस्रामपुर का संत’ में एक सामाजिक अभियान की विफलता रेखांकित करने वाला एक ऐसा महाख्यान है, जिसकी जड़े अन्ततः समाज में हैं। जमींदारी प्रथा के सामाजिक-राजनीतिक पक्ष को अभिव्यक्त करते हुए चारित्रिक विघटन की सम्पूर्ण मानसिकता को उजागर किया है। इसमें सर्वोदय कथा के साथ कुँवर जयन्तिप्रसाद के अहं की हत्या महत्वपूर्ण तथ्य है। यह उपन्यास जमींदारी की जमीन बचाने की धूर्तता, आन्दोलनकारियों की असफलता, गाँव की जमीन का हास्यास्पद बँटवारा, जमीन वालों की दयनीय स्थिति आदि का जीवंत दस्तावेज है।

सभी उपन्यासों में उपन्यासकार ने पात्रों के माध्यम से सामाजिक चरित्रों को उद्घाटित किया है। श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में प्रतिभा, ईमान, परिश्रम, सच्चरित्रता, देशप्रेम आदि को बाहर धकेल दिया गया है और भ्रष्ट अवसरवादी, धूर्त राजनीतिज्ञ लोगों की बन आयी है, इस यथार्थ को केन्द्रीयता प्राप्त हुई है।

लेखक ने असद् पात्रों की रचना करके स्वतंत्रता, जनतंत्र, न्यायपालिका, विकास, शिक्षा, पंचायतराज, सहकारिता तथा अन्य जनतांत्रिक संस्थाओं में निहित स्वार्थ एवं सत्ता के माध्यम से जनता के शोषण को यथार्थ स्थितियों के द्वारा अंकित किया है। उनके माध्यम से लेखक इस सच्चाई को व्यक्त करते हैं कि आम आदमी के विकास के सभी साधन अवांछनीय तत्वों के हाथ की कठपुतली बनकर रह गये हैं।

स्वतंत्रता के बाद जनतांत्रिक संस्थाएँ एवं विकास योजनाएँ व्यक्तिगत हित साधन के लिए अपहृत कर ली गयी हैं। यह रंगनाथ, रामदास, संतोष, जयंतिप्रसाद आदि उपन्यास के प्रधान पात्र इस व्यवस्था से पलायन के लिए मजबूर क्यों होते हैं इसे दिखाया है। सभी औपन्यासिक विषयवस्तुओं में लेखक की निगाह प्रधान और सहायक सभी चरित्रों पर समरस रही है। उनके उपन्यासों के कुछ चरित्र रचनात्मक उपलब्धि के रूप में याद किये जायेंगे।

श्रीलाल शुक्ल अपने परिवेश के प्रति जागरूक है। श्रीलाल शुक्ल की ग्रामीण और शहरी परिवेश के प्रति गहरी पकड़ है। वर्तमान में शहर में हर दिक्कत के आगे राह है और देहात में हर राह के आगे एक समस्या है का बहुत सूक्ष्म और प्रामाणिक चित्रण इस उपन्यासों में है। समकालीन प्राकृतिक, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के माध्यम से यथार्थ का अनेक विसंगतियों द्वारा औचित्यपूर्ण चित्रण शुक्लजी ने किया है।

श्रीलाल शुक्ल के पास वर्णन की, चित्र-चित्रण की अद्भूत क्षमता है और विलक्षण भाषा संवेदना है। शुक्लजी ने विभिन्न भाषाओं के शब्द भंडार का महत्तापूर्ण प्रयोग किया है। विषयवस्तु, परिवेश और पात्रों के अनुरूप व्यंग्य प्रतीकों का आधिक्य उनके उपन्यासों में द्रष्टव्य है। भाषा का सौन्दर्य अलंकारो, मुहावरों, लोकोक्तियों और सूक्तियों से आविष्कृत हुआ है। भाषा को व्यंग्य संकेत, किस्सागोई, डायरी, पत्र, बिम्ब, प्रतीक आदि वैविध्य के द्वारा प्रस्तुत किया है। सभी उपन्यासों के प्रतीक शैली-शीर्षक सार्थक और प्रतीकात्मक है। लेखक ने उपन्यासों के माध्यम से वर्तमान समाज की मानसिकता को प्रतिपाद्यगत विविधता से उपस्थित किया है।

श्रीलाल शुक्लजी ने उपन्यासों में राजनीतिक अधःपतन का यथार्थ वर्णन किया है। उन्होंने भारत जैसे तथाकथित सामंती और विकसनशील देश में जनमंत्र को निहित स्वार्थों की तरह लूटतंत्र में बदला जा रहा है, इसे सूनी घाटी का सूरज, रागदरबारी, आदमी का जहर, पहला पड़ाव, मकान, बिसामपुर का संत आदि उपन्यासों के द्वारा व्यक्त किया है। उनके उपन्यासों में शोषक तंत्र का यथार्थ, प्रभुत्ववादी सामंती व्यवस्था, प्रतिष्ठित वर्ग के अपराध तंत्र का

यथार्थ, संस्थाओं के भ्रष्टाचार पूर्ण व्यवहार का यथार्थ, संघर्षशीलता का सीधा विमर्श, जीवन सापेक्ष यथार्थ, वर्तमान शिक्षा प्रणाली की त्रुटियाँ एवं दोष, बेरोजगारी की समस्या, नैतिक मूल्यों का अधःपतन, लघु मानव की प्रतिष्ठा, ग्रामीण परिवर्तन का तथा सामाजिक समानता का संकेत हैं।

अंत में देखा जाय तो उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल को समझना वास्तव में अपने देश, समाज और उसके भीतरी पर्यावरण के रूप में विचार शक्तियों को समझना है। अपने समय की सघन पढ़ताल करते हुए उपन्यास अपना समय और संसार हमारे सामने उद्घाटित करते हैं। इतना सब कुछ व्यक्त करने पर भी उनकी रचानात्मक बेचैनी यह है कि बहुत कुछ कहने से रह गया है। उसे अभिव्यक्त होने एवं अनुभव करने के लिए उनके आगामी उपन्यासों की प्रतीक्षा हिन्दी उपन्यास साहित्य कर रहा है।

वर्णानुक्रमिक संदर्भ ग्रंथ सूची
अन्य संदर्भ ग्रंथ / सहायक ग्रंथ सूची

क्रम	ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशन	प्रकाशन वर्ष
१	अनुपम साहित्यिक निबन्ध	डॉ.नरेन्द्र शर्मा	बोहरा प्रकाशन, जयपुर	२००१
२	अगली शताब्दी का शहर	श्रीलाल शुक्ल	किताबघर - दिल्ली	१९९६
३	अज्ञेय कुछ रंग, कुछ राग	श्रीलाल शुक्ल	प्रभात प्रकाशन दिल्ली	१९९९
४	आधुनिक हिन्दी उपन्यास	डॉ.नरेन्द्र मोहन	इंडिया लिमिटेड, दिल्ली	१९७४
५	आधुनिक हिन्दी गद्य-शैली का विकास	डॉ.श्याम शर्मा	ग्रन्थम् रामबाग, कानपुर	१९७१
६	आलोचना का परिप्रेक्ष्य	सं.रोहिताश्व	विद्या प्रकाशन, कानपुर	२००४
७	आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ.विजयपाल सिंह	जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	२००२
८	आज का हिन्दी उपन्यास	इन्द्रनाथ मदान	जवाहर पुस्तकालय, मथुरा	१९६६
९	आठवें दशक के हिन्दी उपन्यास	डॉ.रामविनोद सिंह	अनुपम प्रकाशन, पटना	२००१
१०	औपन्यासिक : समीक्षा और समीक्षाएँ	डॉ.आदित्य प्रसाद	अनुभव प्रकाशन, कानपुर	१९८१
११	इस उम्र में	श्रीलाल शुक्ल	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	२००४

१२	उपन्यास समीक्षा के नये प्रतिमान	डॉ.दंगज झाल्दे	वाणी प्रकाशन, दिल्ली	१९८७
१३	उपन्यास स्वरूप संरचना तथा शिल्प	शांति स्वरूप गुप्त	अलंकार प्रकाशन, दिल्ली	१९८२
१४	उपन्यास स्वरूप	डॉ.शशिभूषण सिंहल	आधुनिक प्रकाशन, दिल्ली	२००३
१५	उपन्यास शिल्पी अज्ञेय	डॉ.देवकृष्ण मौर्य	शैलजा प्रकाशन	२००६
१६	उपन्यास की शर्त	डॉ.जगदिश नारायण श्रीवास्तव	किताबघर, दिल्ली	१९९३
१७	काव्यशास्त्र	डॉ.यतीन्द्र तिवारी	सरस्वती प्रकाशन, कानपुर	१९९२
१८	कुछ जमीन पर, कुछ हवा में	श्रीलाल शुक्ल	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	१९९०
१९	नागार्जुन का उपन्यास साहित्य समसामयिक संदर्भ	डॉ.सुरेन्द्र कुमार यादव	वाणी प्रकाशन, दिल्ली	२००१
२०	द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ. वाष्णीय लक्ष्मीसागर	राजपाल एंड सन्स, दिल्ली	१९८२
२१	पाश्चात्य काव्यशास्त्र	देवेन्द्रनाथ शर्मा	सरस्वती प्रकाशन, कानपुर	१९९२
२२	पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त	डॉ.शांति स्वरूप गुप्त	अशोक प्रकाशन, दिल्ली	१९६४
२३	पाश्चात्य साहित्य विवेचन	डॉ.जैन निर्मला	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली	१९८०
२४	पाश्चात्य काव्यशास्त्र	डॉ.कृष्णदेव शर्मा	विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा	१९७१

२५	प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्पविधान	डॉ. कमल किशोर गोयनका	सरस्वती प्रेस, दिल्ली	१९७४
२६	प्रेमचंद के उपन्यासों में चित्रित समस्याएँ	डॉ. एम. विमला	जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	२००३
२७	प्रेमचंद के विचार	सं. कान्तीप्रसाद शर्मा	अनमोल साहित्य, दिल्ली	२००६
२८	भारतीय काव्यशास्त्र सिद्धान्त	एम. एल. शर्मा	प्रेमशील प्रकाशन, दिल्ली	१९७१
२९	भारतीय काव्यशास्त्र एवं पाश्चात्य साहित्य चिन्तन	डॉ. सभापति मिश्र	जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	२००७
३०	भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धान्त	डॉ. मकखनलाल शर्मा	प्रेमशील प्रकाशन, दिल्ली	१९७१
३१	भारतीय साहित्य	सं. डॉ. नगेन्द्र	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली	१९६८
३२	भारतीय स्वातंत्रता संग्राम और हिन्दी उपन्यास	रमेशचन्द्र गुप्ता	आधुनिक प्रकाशन दिल्ली	१९६४
३३	मानक हिन्दी संरचना एवं प्रयोग	डॉ. रामप्रकाश	सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली	२०००
३४	मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ	श्रीलाल शुक्ल	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	१९७१
३५	यह घर मेरा नहीं	श्रीलाल शुक्ल	किताबघर-दिल्ली	१९६४
३६	यशपाल के उपन्यास	चमनलाल	प्रकाशन संस्थान, दिल्ली	२००२
३७	यहाँ से वहाँ	श्रीलाल शुक्ल	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	१९६१

३८	रागदरबारी का शैली वैज्ञानिक अध्ययन	राधा दीक्षित	साहित्य भंडार, इलाहाबाद	१९९४
३९	व्यंग्यात्मक उपन्यास तथा रागदरबारी	डॉ.कल्ला नंदलाल	अमित प्रकाशन, जोधपुर	१९९०
४०	व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई	डॉ.भरत पटेल	चिन्तन प्रकाशन, कानपुर	२००७
४१	व्यावहारिक शैली विज्ञान	डॉ.भोलानाथ तिवारी	शब्दाकार प्रकाशन, दिल्ली	१९८५
४२	विश्व भाषा एवं हिन्दी के साहित्यकार	डॉ.बापूराव देसाई	विकास प्रकाशन, कानपुर	२००८
४३	श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों का शिल्पविधान	डॉ.पी.वी.कोटमे	चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर	२००४
४४	श्रीलाल शुक्ल की दुनिया	सं.अखिलेश	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	२०००
४५	श्रीलाल शुक्ल संचयिता	डॉ.नामवर सिंह	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	२००८
४६	समीक्षा सिद्धान्त	डॉ.कृष्णदेव शर्मा	विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा	२००८
४७	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास	डॉ.कान्ती वर्मा	रामचन्द्र प्रकाशन, दिल्ली	१९६६
४८	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास	डॉ.बेचन	सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली	१९७१
४९	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य निबन्ध एवं निबंधकार	डॉ.बापूराव देसाई	चिन्तन प्रकाशन, कानपुर	२००१
५०	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ.बापूराव देसाई	विकास प्रकाशन, कानपुर	२०००

५१	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष्य में	डॉ.उमेश प्रसाद सिंह	अग्रवाल प्रकाशन, वाराणसी	१९८८
५२	संक्षिप्त बिहारी	डॉ.संसार चन्द्र	रामचन्द्र एंड कम्पनी, दिल्ली	१९६१
५३	साहित्य लोचन	डॉ.श्याम सुन्दरदास	इंडियन प्रेस प्रकाशन, प्रयाग	१९९३
५४	साहित्य निबन्ध	डॉ.गणपतिचन्द्र गुप्त	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	१९९९
५५	साहित्य विवेचन	सुमन, मल्लिक	आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली	१९८८
५६	साहित्यशास्त्र भारतीय और पाश्चात्य	डॉ.गुप्त डॉ.बंजारा	पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद	२००४
५७	साहित्यिक निबन्ध	डॉ.राजनाथ शर्मा	विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा	१९८१
५८	साहित्य समीक्षा के सिद्धान्त	डॉ.गोविन्द त्रिगुणायत	भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली	१९५१
५९	साहित्य सहचर	डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी	लोकभारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद	१९९४
६०	साहित्य समीक्षा	मुद्रा राक्षस	नेशनल पब्लिशिंग, दिल्ली	१९६३
६१	समीक्षाशास्त्र	डॉ.दशरथ ओझा	राजपाल एंड सन्स, दिल्ली	१९७०
६२	संदर्भ और समीक्षा	डॉ.अवध शास्त्री	नमन प्रकाशन, दिल्ली	२००२

६३	साहित्यिक निबन्ध	डॉ.त्रिभुवन सिंह	हिन्दी	१९७०
६४	सुरक्षा और अन्य कहानियाँ	श्रीलाल शुक्ल	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	२००८
६५	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य	डॉ.नामदेव उतकर	चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर	२००२
६६	हिन्दी साहित्य समीक्षा	डॉ.रामनिवास गुप्ता	आधुनिक प्रकाशन, दिल्ली	२००१
६७	हिन्दी साहित्य शास्त्र	नन्दकिशोर	वाणी प्रकाशन, दिल्ली	२००३
६८	हिन्दी साहित्य शास्त्र की भूमिका	डॉ. कृष्ण वल्लभ जोशी	वसुमती प्रकाशन, इलाहाबाद	१९७३
६९	हिन्दी उपन्यास की शिल्प विधि का विकास	डॉ.कृष्णनाग	लोकचेतना प्रकाशन, जबलपुर	१९६२
७०	हिन्दी उपन्यास कला	डॉ.प्रताप नारायण टंडन	सरस्वती प्रकाशन, कानपुर	२००३
७१	हिन्दी के आँचलिक उपन्यास की शिल्पविधि	डॉ.जवाहर सिंह	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	२००१
७२	हिन्दी साहित्य आलोचना एवं अनुसंधान	डॉ.विजय चन्द्र	चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर	२००१
७३	हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास	डॉ.मफत पटेल	हिन्दी साहित्य परिषद, अहमदाबाद	१९६३
७४	हिन्दी उपन्यास सिद्धान्त और समीक्षा	डॉ.मक्खनलाल शर्मा	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली	१९७०

७५	हिन्दी साहित्य का इतिहास	सं.डॉ.नगेन्द्र	मयुर पेपर बैक्स, नौएडा	२०००
७६	हिन्दी-गुजराती उपन्यासों में गाँधीवाद	डॉ.नवीन कलार्थी	ज्ञान प्रकाशन, कानपुर	२००३
७७	हिन्दी उपन्यासों का वर्गीकृत अध्ययन	डॉ.अमरप्रसाद जायसवाल	साहित्य निलय, कानपुर	१९९४
७८	हिन्दी साहित्य का इतिहास	गोपालराय	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	२००५
७९	हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास	डॉ.प्रतापनारायण टंडन	कल्पकार प्रकाशन, लखनऊ	
८०	हिन्दी उपन्यास साहित्य का उद्भव और विकास	डॉ.लक्ष्मीकान्त सिंहा	ग्रंथभारती प्रकाशन, कानपुर	१९३५
८१	हिन्दी उपन्यास का ऐतिहासिक अध्ययन	डॉ.शिवनारायण श्रीवास्तव	सरस्वती मंदिर, वाराणसी	१९७१
८२	हिन्दी उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास	डॉ.प्रतापनारायण टंडन	विवेक प्रकाशन, लखनऊ	१९६७
८३	हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रि	डॉ.रामदरश मिश्र	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	१९६८
८४	हिन्दी उपन्यास	महेन्द्र चतुर्वेदी	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	१९७२
८५	हिन्दी उपन्यास परम्परा और प्रेमचन्द्र	शिवकुमार मिश्र	चिन्तन प्रकाशन, कानपुर	१९७१
८६	हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास	डॉ.सुरेश सिन्हा	ग्रन्थभारती, कानपुर	२००१

८७	हिन्दी उपन्यास की विकासयात्रा	डॉ.ब्रह्मस्वरूप शर्मा	मनु प्रकाशन, दिल्ली	२०००
८८	हिन्दी के आँचलिक उपन्यास	मृत्युंजय उपाध्याय	चित्रलेखा, इलाहाबाद	१९८१
८९	हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण	डॉ.महेन्द्र चतुर्वेदी	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	१९६२
९०	हिन्दी के प्रमुख व्यंग्यकार	डॉ.स्मिता चिपलूणकर	अलका प्रकाशन, कानपुर	२००१
९१	हिन्दी-उर्दू उपन्यास	डॉ.एम.ए.जुबैरी	अनंग प्रकाशन, कानपुर	२००३
९२	हिन्दी की हास्य-व्यंग्य विद्या का स्वरूप और विकास	डॉ.इन्द्रनाथ मदान	जवाहर पुस्तकालय, मथुरा	१९७८
९३	हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य	डॉ.बालेन्दु शेखर तिवारी	अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर	१९७८
९४	हरिशंकर परसाई के व्यंग्यो में वर्गचेतना	आभा भट्ट	जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	१९९४
९५	हिन्दी उपन्यास	डॉ.सुषमा धवन	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	१९६९
९६	हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ	लक्ष्मीसागर वाष्णेय	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली	१९७०

✳ अंग्रेजी संदर्भ ग्रंथ :

- (१) The Twentieth Century, Joseph Warren, New York,
Copyright-1960

✳ संस्कृत संदर्भ ग्रंथ :

- (१) मनुस्मृति, मुंक् गणेश मिरजकर, चित्रशाला प्रेस, पुणे-१८४६
(२) भारतीय दर्शन, आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा मंदिर, वाराणसी-
२००१
(३) साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, चौखम्बा विद्याभवन-वाराणसी-२०४६

✳ पत्र-पत्रिकाएँ :

- (१) तद्भव, मार्च-१९६६
(२) हास्य, व्यंग्य भारती; (त्रैमासिक पत्रिका) मार्च-२००७
(३) धर्मयुग, जुन-१९७२
(४) हंस, जनवरी-२००१
(५) उत्तरप्रदेश, जनवरी-१९६६
(६) समाचार पत्र, नवभारत टाइम्स, मुंबई, २० मार्च-२००१
(७) सारिका, २२ जुन-१९७२
(८) धर्मयुग, ६ नवम्बर-१९७२
(९) आलोचना, अक्टूबर-१९५४
(१०) आजकल, दिल्ली, जनवरी-२००१
(११) सम्बोधन, अप्रैल/जून-२०००
(१२) हिन्दी अनुशीलन, जनवरी/अप्रैल-१९६७
(१३) साक्षात्कार, नवम्बर-१९६८
(१४) सर्वनाम, अगस्त-१९७८
(१५) संचेतना, मार्च-२००१

✽ शब्द कोश :

- (१) हिन्दी भाषा एवं साहित्य विश्वकोश, सं.डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त एटलांटिक पब्लिशर्स, १९९५
- (२) हिन्दी साहित्य कोश, सं. धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमंडल वाराणसी- १९९३
- (३) हिन्दी विश्वकोश, सं. नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी-१९६४
- (४) बृहत हिन्दी कोश, सं.कालिका प्रसाद, ज्ञानमंडल लिमिटेड वाराणसी- १९९२
- (५) आदर्श हिन्दी शब्दकोश, आर.सी.पाठक, भार्गव बुक डिपो वाराणसी १९८९

